

18



मानसरोग विज्ञान

ले०:—— डा० बालकृष्ण
कुमार जी पाठक



मानस-रोग-विज्ञान

(प्रथम खंड)

पहला अध्याय

विषय-निरूपण

मानसिक व्याधियाँ और उनकी चिकित्सा इस पुस्तकका प्रधान विषय है। आयुर्वेदीय साहित्यमें मानस-रोग-विषयक जो जानकारी यत्र-तत्र प्राप्त है, उसीका संग्रह इसमें किया गया है।

आयुर्वेदका मुख्य उद्देश्य स्वास्थ्य की रक्षा और व्याधियोंको शान्त करना है। इसी उद्देश्यको लक्ष्यमें रखकर इसकी मुख्य संहिताओं और संग्रह-ग्रन्थोंका निर्माण हुआ है। रोगोंके वर्गीकरण में मानस-व्याधिको भी विशिष्ट स्थान दिया गया है। परन्तु शारीरिक एवं आगन्तुक व्याधियोंका जितना वर्णन मिलता है उतना मानसिक व्याधियोंका नहीं मिलता। मानस-रोगाधिकार बहुत ही संक्षिप्त है, तथापि सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय तो मालूम होगा कि भूत-विद्या नामसे प्रसिद्ध आयुर्वेदके एक अंशमें आधुनिक दृष्टिसे बहुत ही महत्त्वकी बातें उपलब्ध होती हैं।

आजकल जो लोग कुछ अर्ध-शिक्षित किंवा अशिक्षित वैद्योंको देखकर ही आयुर्वेदके बारेमें अपना मन्तव्य बना लेते हैं, वे आयुर्वेदके प्रति घोर अन्याय करते हैं। उन्हें यह नहीं भूलना चाहिये कि आयुर्वेदको उपवेदोंमें स्थान दिया गया था। यह बात आर्य्य जनताकी आयुर्वेदके प्रति सम्मान-वृत्तिकी द्योतक है।

आधुनिक विज्ञान (Science) कई शाखाओंमें विभक्त हो गया है। ये शाखायें भी एक-दूसरेपर अवलम्बित रहती हैं। आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र (Medicine) भी पदार्थ-विज्ञान (Physics), रसायन-शास्त्र (Chemistry), प्राणी-शास्त्र (Biology) आदि विज्ञानकी शाखाओंके साथ गहरा सम्बन्ध रखता है। साथ ही प्रत्यक्ष और अनुमान इन दोनोंको प्रमाण मानकर अपनी ज्ञानराशि अभिवृद्धि करता जा रहा है। इसी प्रकार यदि हम आयुर्वेदके सुदीर्घ इतिहासपर दृष्टिपात करें तो मालूम होगा कि आयुर्वेदने भी अपने समयके दर्शनके साथ गहरा सम्पर्क स्थापित किया था।

ईसासे पूर्व आठवीं शताब्दीसे उत्तरोत्तर ईसाकी छठी या सातवीं शताब्दी तकके १४००से १५०० वर्षोंमें आयुर्वेदके निश्चित स्वरूप धारण करते हुए साहित्यने समकालीन नव-उद्घाटित दार्शनिक तथ्योंकी उपेक्षा नहीं की। सांख्य और योग, न्याय और वैशेषिक, एवंउस समयके उल्लेखनीय दार्शनिक प्रश्नोंने आयुर्वेदके संहिताकारों तथा संस्कर्त्ताओंको पर्याप्त प्रभावित किया। आयुर्वेदके अनेक मौलिक सिद्धान्त उस कालमें प्रचलित पदार्थवाद,

सृष्ट्युत्पत्तिवाद तथा मानस-शास्त्र-विषयक विचारोंके आधारपर रचे गये हैं। आयुर्वेदीय संहिता-प्रणेताओंके आस-पासके वातावरणमें सत्त्य क्या है ? "यत् क्रिया कारि तत् सत्" या अन्य कोई ? इस प्रश्नकी चर्चा हुआ करती थी। विभिन्न दार्शनिकोंने प्रमितिको ग्रहण करनेमें साधनभूत आठ प्रमाण—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अभाव, संभव, और ऐतिह्य निर्धारित किये थे[१]। आयुर्वेदने भी अपने विषयकी चर्चाके लिये प्रत्यक्ष, अनुमान, आप्तोपदेश, और युक्ति आदि प्रमाणोंको स्वीकार किया था[२]। युक्तिपर सविशेष भार दिया गया है क्योंकि आयुर्वेदका सम्बन्ध चिकित्स्य पुरुषके साथ है, जिसमें उसके शरीर और मन दोनोंका समावेश होता है[३]।

जिस प्रकार शारीरिक रोगोंकी चिकित्साके लिये शरीरके अंगों और उपांगोंकी रचना और उनके व्यापारोंका ज्ञान आवश्यक है। उसी प्रकार मानस-रोगोंके अभ्यासके पूर्व मनके स्वरूप एवं उसके व्यापारोंका ज्ञान भी आवश्यक है। प्रकृतिस्थ शरीरके व्यापारोंके ज्ञान (Physciology) के बिना विकृत शरीरके व्यापार समझमें आ ही नहीं सकते। उसी प्रकार प्रकृतिस्थ किंवा अमल सत्त्वके व्यापारोंके ज्ञानके बिना विकृत मानसके व्यापार कदापि नहीं समझे जा सकते। इसलिये आगे आनेवाले अध्यायोंमें मनका स्वरूप, उसके व्यापार, इन्द्रियाँ और उनके उपघातके परिणाम-स्वरूप पैदा होनेवाली क्षतियोंका वर्णन किया गया है। साथ ही मन और इन्द्रियोंके

व्यापारोंके वाहक 'नाड़ी-तन्त्र' (Nervous system) का भी संक्षिप्त वर्णन किया गया है। यह सब जान लेनेसे मानसिक विकृतियोंका अनुशीलन सरल हो जायगा।

आजकल नाड़ीतन्त्र तथा उसकी सूक्ष्म रचनाका एवं उसके व्यापारोंपर अप्रत्यक्षतया प्रभाव डालनेवाली निःस्रोत-ग्रन्थियोंका (Ductless glands), जितना अन्वेषण हुआ है उतना प्राचीनकालमें नहीं हुआ था। तथापि मानस-प्रक्रियाओं अथवा मानसिक व्यापारोंके विषयमें हमारे दर्शनोंने पुष्कल विचार किया है। आयुर्वेदने उन विचारोंका उपयोग अपने सिद्धान्तोंके निर्माणमें किया है। आगे आनेवाले अध्यायोंमें इन दार्शनिक वचनोंका मैंने यथोचित उपयोग किया है। इनके उपयोग करनेमें मैंने प्राचीन आचार्योंकी ही पद्धतिका अनुसरण किया है[४]। मैंने उनके तन्त्रोंका खण्डन नहीं किया, किन्तु आधुनिक वैज्ञानिक अन्वेषणोंका यथाशक्ति उपयोग करते हुए उनका परिष्कार मात्र किया है। उदाहरणतः मानसिक व्यापार और त्रिदोषका पारस्परिक सम्बन्ध आयुर्वेदका एक मौलिक सिद्धान्त है। इतर दर्शनोंका यह विषय नहीं है। उस सिद्धान्तको यथाशक्ति समझानेका मैंने यत्न किया है। इसी प्रकार मानसिक एवं शारीरिक दोषोंको प्रकुपित करनेमें प्रज्ञापराधका महत्त्व एवं विविध औषधोंमें सत्त्वावजय या मनोनिग्रहकी आवश्यकताको भी समझाया है।

हमारी आधुनिक संस्कृतिके एक प्रवाहका मूल पश्चिममें है, यह

ध्रुव सत्य है। इसका कोई विरोध नहीं कर सकता। यातायातके साधनोंके बढ़नेसे भौगोलिक अन्तर कम हो गया है, जिसके फलस्वरूप हमारी आधुनिक शिक्षा हमको अपनी आर्य-संस्कृतिसे और भी विमुख करती जा रही है।

मानस-शास्त्र (Psychology) जैसे गहन विषयके सम्बन्धमें हमारे यहां प्राचीनोंने भी कुछ विचार किया है, इस बातको हमारे आधुनिक सुशिक्षित लोग भी नहीं मानते। योगवासिष्ठ या पातञ्जलि-योग-सूत्र जैसे ग्रन्थोंकी कई बातोंको वे लोग साधुओं और वैरागियोंकी सारहीन बातें मानते हैं। किन्तु भारतीय जनताके सौभाग्यसे "साइकोलाजिकल रिसर्च-सोसाइटी" (Psychological Research Society) द्वारा किये जानेवाले संशोधनोंने एवं हठयोगके विशेषज्ञों द्वारा जनताके समक्ष दिखाये गये प्रयोगोंने आधुनिक मानस-शास्त्रके अनेक सिद्धान्तोंकी नींव हिला दी है। किन्तु यह चर्चा यहाँ अप्रासंगिक है।

यहाँ एक सामान्य भ्रान्तिकी ओर मैं विचारशील पाठकोंका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। 'मन' शब्दका अर्थ समझनेमें कई लेखक एवं पाठक भूल करते हैं। हमारे तत्त्वज्ञानके आस्तिक दर्शन (Systems of Philosophy) आत्मवादी हैं और मनको वे स्थिर आत्माका करण-साधन-रूप मानते हैं; दूसरी ओर पाश्चात्य मानस-शास्त्रज्ञ पुरुष (Personality) के चैतन्यांश को मन (Psyche) के नामसे पुकारते हैं। हमारे दार्शनिक

साहित्यमें इसी कारण आत्माकी अपेक्षा मनका स्थान गौण है और मानस-शास्त्रकी चर्चाका आत्मज्ञानकी चर्चामें अन्तर्भाव हो जाता है। परन्तु आजकल पश्चिममें स्थिति भिन्न है। वहाँ मानस शास्त्र आत्मवादी तत्त्वज्ञान (Philosphy) से अलग होकर अपने स्वतन्त्र रास्तेपर जा रहा है और कुछ एकको छोड़कर अधिकांश मानसशास्त्री प्राचीन बौद्धोंकी तरह स्थिर आत्माको नहीं मानते। उनके मतानुसार मनका अर्थ मनोवृत्तियोंका समूह है। इस समूहकी सहायतासे ही वे हमारे सब शारीरिक एवं मानसिक व्यापारोंकी व्याख्या करते हैं। संक्षेपमें—शरीरमें पाये जाने-वाले जड़ पदार्थोंके गुण-धर्मोंसे विरुद्ध गुणधर्म वाला जो चैतन्य है वह उनके मतानुसार मन है। मनके धर्मों (Mental Functions) के विषयमें वहाँ भी विभिन्न मत हैं। अर्थात् जिस प्रकार हमारे तत्त्वज्ञानमें विभिन्न दर्शन हैं उसी प्रकार उनके यहाँ भी मन और उसके व्यापारोंको समझानेवाले भिन्न-भिन्न मानस-शास्त्रके दर्शन (Schools of Psychology) हैं। इस देशमें भी वैसे मत थे। कुछ लोग मनको, कुछ लोग इन्द्रियोंको और कुछ तो क्षणिक विज्ञानको ही आत्मा मानते थे, जिनका यथार्थ वर्णन भगवान शंकराचार्यने किया है[५]।

मनके विषयमें पूर्व और पश्चिमके दृष्टिकोणोंमें इस भिन्नताको ध्यानमें रखे बिना मानसशास्त्रकी चर्चा यथार्थ रूपमें नहीं हो सकती। इसी प्रकारका दूसरा मतभेद मानसशास्त्रके अनुशीलन की पद्धतिके विषयमें है। हमारे देशमें मन एवं मानसिक

व्यापारोंका अनुशीलन मुख्यतया आन्तर-निरीक्षण-पद्धति (Introspective Method) द्वारा और अल्पांशमें अवलोकन (Observation) पद्धति द्वारा हुआ है। प्राचीन महर्षियोंने स्वयं जागृत-अवस्थामें, स्वप्नावस्थामें, निद्रावस्थामें या तुरीयावस्थामें जिन-जिन मानस-प्रक्रियाओंका अनुभव किया उसके आधारपर उन्होंने अपने मन्तव्य बनाये हैं। जड़, मूढ़ अथवा विकृत मानससे पीड़ित मनुष्योंके मनके मानसिक व्यापारोंके अवलोकनको उनके वर्णनमें गौण स्थान प्राप्त हुआ है। इसके विपरीत पश्चिममें आन्तर निरीक्षण-पद्धतिका बहुत ही कम उपयोग होता है। वहाँ विकृत मानसका, बाल-मानसका और इतर प्राणियोंके मानसका अनुशीलन मुख्यतया अवलोकन-पद्धति द्वारा होता है। इस प्रकार पद्धतियोंमें भेद होनेसे लोगोंके मन्तव्योंमें भी थोड़ा-बहुत भेद दृष्टिगोचर होता है, जिसका हम आगे उल्लेख करेंगे।

पश्चिममें पहले मानसशास्त्रका अभ्यास चिकित्सा-शास्त्रके पाठ्यक्रममें नहीं था। लेकिन अब वह अनिवार्य हो गया है, कारण, मानसशास्त्रके अभ्यासके बिना मानस-रोगोंका उपचार नहीं हो सकता। आजकल मानस-रोग-चिकित्सा (Psychiatry) को भी विशिष्ट स्थान मिलता जा रहा है। इसलिये चिकित्सा-शास्त्रके पढ़नेवालोंको अब मानस-शास्त्र एवं मानसिक रोगोंकी विशिष्ट चिकित्सा पद्धतिका जानना भी आवश्यक हो गया है।

हमारे आयुर्वेद-साहित्यमें, मानस-व्यापारों तथा मानस-

विकृतियोंका जो सूत्रात्मक वर्णन है, आधुनिक समयके सहज-सुलभ मानस-शास्त्र तथा मानस-रोग चिकित्साके वर्णनोंका यदि उसमें, और समावेश कर दिया जाय तो इससे लाभ ही होगा। परन्तु शर्त इतनी ही है कि यह समन्वय पक्षपातसे रहित होना चाहिये, क्योंकि बिना इसके तत्त्व दुष्प्राप्य हो जाता है[६]।

"पराधिकारेषु न विस्तरोक्तिः"— प्राचीन आयुर्वेदाचार्योंके इस नियमके अनुसार इस पुस्तकमें शारीरिक रोगों (Organic disorders) के विषयमें विस्तृत वर्णन नहीं किया है। क्योंकि पाठक इन रोगोंको अच्छी तरह जानते हैं।

इस ग्रंथके प्रधान विषयका इतना निरूपण करनेके बाद अब मैं इसके प्रयोजनके विषयमें भी कुछ कहूंगा। आधुनिक कालमें मानसिक रोगोंका प्रमाण प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है और इनकी चिकित्सामें अनेक मौलिक परिवर्तन हुए हैं। इन सबको लक्ष्यमें रखते हुए आयुर्वेदके भूतविद्या या भूततन्त्र नामसे प्रसिद्ध अंगका अब पुनः-संस्करण करना आवश्यक जान पड़ता है। उसको अब मानस-चिकित्सा-तन्त्रके नामसे प्रसिद्ध किया जाय तो अधिक अच्छा होगा। वर्त्तमानकाल इस परिवर्तनकी माँग कर रहा है, ऐसा मैं समझता हूं।

यदि हम शारीरिक रोगोंकी दृष्टिसे थोड़ा विचार करें तो मालूम होगा कि जिसका शरीर सर्वथा नीरोग हो ऐसे मनुष्य समाजमें बहुत कम दिखाई देते हैं। किसीको आमाशयका रोग, तो किसीको आँखका रोग, किसीको वृक्ककी व्याधि, तो किसीको

नाककी व्याधि—इस प्रकार प्रत्येक मनुष्यमें कोई न कोई रोग दृष्टिगोचर हो रहा है।

यही स्थिति मानसिक रोगोंके विषयमें भी है। आधुनिक अनुसन्धानोंने यह सिद्ध किया है कि मानसिक स्वास्थ्य (सर्वथा नीरोग मन) भी समाजमें बहुत कम मनुष्योंमें पाया जाता है। दूसरे शब्दोंमें, जिस प्रकार समाजका अधिक भाग न्यूनाधिक मात्रामें भयंकर शारीरिक रोगोंसे पीड़ित है उसी प्रकार न्यूनाधिक मात्रामें वह भयङ्कर मानसिक रोगोंसे भी पीड़ित होता जा रहा है। अन्तर केवल इतना ही है कि शारीरिक रोगोंके विषयमें हम लोगोंने अधिक ज्ञान प्राप्त किया है, इसलिये उनको शीघ्र पहचान लेते हैं, जब कि मानसिक रोगोंके विषयमें हमारा ज्ञान कम होनेसे हम उन्हें शीघ्र नहीं पहचान पाते। जब मानसिक रोग भयङ्कर रूप पकड़ लेता है तभी हम उसको पागलपनके नामसे पुकारने लगते हैं।

इसके अतिरिक्त शारीरिक रोगोंकी अपेक्षा मानसिक रोग बहुत भयङ्कर हैं। व्यक्ति और समाज दोनोंको इनके बुरे परिणाम भोगनेके लिये बाध्य होना पड़ता है। उनकी चिकित्सा के परिणाम भी जितने अच्छे होने चाहिए उतने अच्छे अभी नहीं होते। "शत्रु और रोगको शुरूसे ही दबाना चाहिये" यह कहावत शारीरिक रोगोंकी अपेक्षा मानसिक रोगोंके लिये अधिक युक्ति-संगत है; क्योंकि एक बार जड़ जमा लेनेपर मानसिक रोग अथक परिश्रमसे भी अच्छा नहीं होता और रोगी एवं उसके सारे

कुटुम्बको नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। हमारे देशमें अतिशय दरिद्रता तथा अन्य कारणोंसे शारीरिक रोगोंके लिये भी पर्याप्त मात्रामें चिकित्सक किंवा चिकित्सालय नह : ऐसी अवस्थामें मानसिक गोंकी चिकित्साके लिये व्यवस्थित योजनाकी तो आशा ही कैसे रख सकते हैं ? वस्तुस्थिति यह है कि कुटुम्बमें यदि एक आदमी भी मानसिक रोगका शिकार हो गया तो उसके लिये विशिष्ट चिकित्सालयोंकी पर्याप्त संख्याके अभावके कारण, कुटुम्बियोंके शिरपर ही उसकी सुश्रूषाका भार आ पड़ता है। यदि मानसिक व्याधियाँ प्रारम्भिक अवस्थामें ही हों तो उनकी चिकित्सा घरमें भी हो सकती है। लेकिन जब वे भयङ्कर स्वरूप धारण कर लेती हैं, तब कुटुम्बीजन उनकी देख-भाल नहीं रख सकते और उस रोगीके लिये आवश्यक समुचित वातावरण भी घरमें नहीं होता। इसके अतिरिक्त मानसिक रोगोंका शरीरपर और शारीरिक रोगोंका मनपर कैसा बुरा प्रभाव होता है यह बात अनेक शताब्दियोंसे सुविदित है। इसलिये रोग-विनिश्चयमें वैद्यकी जिम्मेदारी भी बढ़ जाती है।

मानस-रोगके विशेषज्ञोंके मतानुसार हमारा वर्तमान जीवन ऐसा अशान्तिमय हो गया है कि यह जीवन-संग्राम विविध मानसिक रोगोंको जन्म देता है। जिस प्रकार शरीर कमजोर होने पर विविध प्रकारके रोगजनक जीवाणुओं (Pathogenic Germs) का शिकार बन जाता है, उसी प्रकार मन भी कम-जोर होनेपर, सांसारिक, आर्थिक या राजनैतिक परिवर्तनोंके

परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले विचारचक्रोंका (Thought Complexes) ग्रास बन जाता है और उन्माद तथा विषाद जैसे रोगोंका जन्म होता है। वर्त्तमान युग अधिकाधिक यान्त्रिक होता जा रहा है और "जिस प्रकार यन्त्र काम देते हैं, उसी प्रकार मनुष्योंको भी काम करना चाहिये" इस प्रकारकी धारणा जाने या अनजाने घर करती जा रही है। संयम एवं संतोष क्वचित ही दिखाई देता है। अथवा यों कह सकते हैं कि संयमी एवं संतोषी-जीवनयुक्त मनुष्यका मूक उपहास ही होता है। इससे भी अधिक शोचनीय दशा तो यह है कि 'इन्द्रियोंको संतुष्ट करना ही जीवनका ध्येय है और इन्द्रियोंका निग्रह मानसिक व्याधियोंका उत्पादक है', इस प्रकारके अर्द्ध-सत्य को सिद्ध करनेमें उद्यत लेखक एवं उपदेशक-वर्गकी कमी नहीं है। जनसंख्याके अनुपातमें हमारे देशमें मानसिक रोगोंका परिमाण कम है, यद्यपि अब वह बढ़ रहा है : इसका अर्थ यही है कि मानसिक स्वास्थ्य संरक्षणके लिये अपने पूर्वजोंके बताये हुए मार्गोंको अभीतक हम सर्वथा भूल नहीं गये हैं। यद्यपि पाश्चात्य दृष्टिमें तो हम अभीतक जंगली ही हैं और पूर्णतया नहीं सुधरे हैं क्योंकि जीवनके ध्येयके बारेमें उनके विचारोंको अभी तक हमने अङ्गीकार नहीं किया है!

मानसिक रोगोंकी चिकित्सामें कठिनाई तो है ही, इसके साथ-साथ इसका एक दूसरा लक्षण भी समस्त मनुष्य-जातिके लिये भयावह है: वह यह है कि मानसिक दौर्बल्य एवं

मानसिक व्याधियाँ वंश-परम्परामें भीउतर आती हैं। यह क्यों और कैसे होता है, इसका अभी तक पता नहीं लगा है। फिर भी चिकित्सकों और रोगीके सम्बन्धियोंको इस बातका समान रूपमें ध्यान रखना चाहिये। शारीरिक रोगोंमें परम्परामें उतरने वाले रोग बहुत कम हैं लेकिन मानसिक रोगोंमें परम्परामें न उतरनेवाले बहुत कम हैं। यह कथन कई प्रकारसे सत्य सिद्ध हो चुका है, इसलिये कुटुम्बियों, चिकित्सकों, समाजशास्त्रियों एव शिक्षकोंके लिये यह ध्यानमें रखने योग्य बात है।

यह सौभाग्यकी बात है कि अब मानस-रोगोंके अभ्यास और उनकी चिकित्साके मूलको सुदृढ़ करनेकी ओर विशेष यान दिया जा रहा है और इस कार्यके पीछे उत्साही विद्वान नथक परिश्रम कर रहे हैं। इसके फलस्वरूप चिकित्सा-पद्धतिमें थोड़े परिवर्तन भी हुए हैं और प्राचीन कालके अभिमन्त्रित जल एवं तावीज अब नवीन स्वरूपमें दिखाई पड़ रहे हैं।

चिकित्सकोंको एक और भी बात ख्यालमें रखनी चाहिये। यदि रोग-निदानमें भूल हो जाय तो चिकित्साका फल अच्छा नहीं होता। उदाहरणके तौरपर निद्रानाश (Onsomnia), अतिसार (Diarrhoea) आदि रोग मानसिक कारणोंसे भी हो सकते हैं और शारीरिक कारणोंसे भी उनका होना संभव है। ऐसी परिस्थितिमें यदि रोगका कारण न देखा जाय तो चिकित्साका परिश्रम न केवल व्यर्थ होगा अपितु रोगीको अयोग्य चिकित्साके फलस्वरूप विशेष हानि होगी और वैद्यकी अप्रतिष्ठा होगी सो अलग।

प्रथमाध्याय

प्रमाण-संग्रह

(१) अर्थवति च प्रमाणे प्रमाता प्रमेयंप्रमितिरित्यर्थवन्ति भवन्ति। कस्मात्। अन्यतमा पायेऽर्थस्यानुपपत्तेः। तत्र यस्येप्सा-जिहासाप्रयुक्तस्य प्रवृत्तिः स प्रमाता। स येनार्थं प्रमिणोति तत्प्रमा-णम्। योऽर्थः प्रमीयते तत् प्रमेयम्। यदथ विज्ञानं सा प्रमितिः।

न्याय भाष्य १-१-१-१

(२) द्विविधमेव खलु सर्वं सच्चासच्च, तस्य चतुर्विधा परीक्षा-आप्तोपदेशः प्रत्यक्षमनुमानं युक्तिश्चेति ॥ च० सू० अ० ११-१७

(३) अस्मिंस्तु शास्त्रे पञ्चमहाभूत शरीरिसमवायः पुरुष इत्युच्यते। तस्मिन् क्रिया ॥ सु० सू० अ० १-२१

खादयश्चेतनाषष्ठा धातवः पुरुषः स्मृतः।
चेतना धातुरप्येकः स्मृतः पुरुष संज्ञकः ॥ च० शा० अ० १-१४

(४) तस्मात् सतामत्र न दूषितानि मतानि तान्येव तु शोधितानि।
पूर्वं प्रतिष्ठा पित योजनासु मूलप्रतिष्ठा फलमामनन्ति ॥

(नाट्यशास्त्र विवृति–अभिनवगुप्ताचार्य)

(५) देह मात्रं चैतन्य विशिष्टमात्मेति प्राकृता जना लौकायति-काश्च प्रतिपन्नाः। इन्द्रियाण्येव चेतनान्यात्मेत्यपरे। मन इत्यन्ये। विज्ञान मात्रं क्षणिकमित्येके। शून्यमित्यपरे। अस्ति देहादि व्यति रिक्तः संसारी कर्ता भोक्तेत्यपरे। भोक्तैव केवलं न कर्तेत्येके। अस्ति तद्व्यतिरिक्त ईश्वरः सर्वज्ञः सर्वशक्ति रिति केचित् आत्मा स भोक्तुरित्यपरे ॥ ब्रह्मसूत्र--शां० भा० १-१-१

(६) तथर्षीणां विवदता मुवाचेदं पुनर्वसुः।
मैवं वोचत तत्त्वं हि दुष्प्रापं पक्षसंश्रयात् ॥

(च० सू० अ० २५-२६)

(७) See India Philosophy Vol. II P. 778-9

दूसरा अध्याय

आत्मवाद और भौतिकवाद

इस दृश्य जगतको दो विभागोंमें बांटा जा सकता है : सजीव सृष्टि और निर्जीव सृष्टि। इनमें निर्जीव सृष्टि अर्थात् जड़-पदार्थोंका अध्ययन पदार्थ-विज्ञान (Physics), रसायन-विद्या (Chemistry) आदिसे, और सजीव सृष्टिका जीव-विद्या (Biology) से होता है। विशेष अध्ययन करनेपर मालूम होगा कि प्रकृति (Nature) के ये दोनों विभाग परस्पर इस प्रकार ओतप्रोत हैं कि इनके बीच विभाजक रेखा कहाँ खींची जाय यह प्रश्न बहुत ही विकट हो गया है। यह कथन प्रारम्भ में किसीको स्वीकार नहीं होगा क्योंकि एक जड़ पत्थर और एक सजीव प्राणीके बीचके अन्तरको सब कोई आसानीसे समझ सकते हैं। फिर भी आजकलका वैज्ञानिक जगत इन दोनोंके विकास-क्रमको एक विचित्र सोपानकी भिन्न-भिन्न सीढ़ियाँ मानता है। यथा— पत्थर इस एक ही सोपानकी नीचेकी सीढ़ी और प्राणी ऊपरकी सीढ़ी है।

इस बातको समझनेके लिये वैज्ञानिकों और भौतिकवादियों (Materialist) के विचारोंका जरा विस्तारसे अध्ययन करें। जीव-विद्याके सिद्धान्त एवं हमारा प्रतिदिनका अनुभव स्पष्ट बताते हैं कि सजीव प्राणी और निर्जीव पदार्थोंके बीचमें खास अन्तर है। निर्जीव पदाथ सब मिलकर ९२ रसायनिक

तत्त्वों (Elements) से बने हैं। इन तत्त्वोंका अन्तिम संघटन विद्युन्मय (Electrical) है। अर्थात् इन तत्त्वोंके घटक परमाणु (Atoms) अत्यन्त सूक्ष्म अर्थात अतीन्द्रिय धन और ऋण विद्युद्ग्राही कणों (Protons & Electrons) से बने हुए हैं। इन कणोंकी विविध चेष्टाओंका स्पष्टीकरण किसी खास नियम द्वारा ही हो सकता है। ये नियम पदार्थ-विज्ञान और रसायन-विद्याने निर्धारित किया है। वैज्ञानिकोंके मतानुसार सम्पूर्ण जड़ जगत इन नियमोंके अधीन है। किन्तु प्रश्न यह रह जाता है कि सजीव पदार्थों (प्राणियों) के लिये ये नियम लागू होते हैं या नहीं ? इस प्रश्नके उत्तरमें दो पक्ष हो गये हैं। कट्टर भौतिकवादियोंका तो कहना है कि "सजीव शरीरके सम्पूर्ण व्यापारोंकी व्याख्या जड़ जगतमें प्रवर्तमान भौतिक-रसायन-विद्याके नियमों (Physico-Chemical Laws) द्वारा हो सकती । आज यदि हम इन सब व्यापारोंकी व्याख्या नहीं कर सकते, तो इसका कारण हमारी उन नियमोंसे अनभिज्ञता है। किन्तु एक समय ऐसा आयेगा कि जब प्राणी-शरीरको—अथवा यों कहें कि मनुष्य-शरीरको—हम एक अपने-आप चलता यन्त्र-रूप ((Automaton) सिद्ध कर सकेंगे। और जड़ एवं चेतन सृष्टिमें एक ही नियम चल रहे हैं, यह प्रमाणित कर सकेंगे।"

दूसरी ओर जीवविद्या-विशारद (Biologists) कहते हैं कि प्राणियोंके शरीरमें एक विलक्षण विशिष्टता देखनेमें आती है

जो जड़-पदार्थोंमें नहीं होती। जैसे एक सबसे छोटा प्राणी-एमीबा (Amoeba) को लें और सूक्ष्मदर्शकयन्त्रकी सहायता से उसके जीवन-व्यापारको देखें, तो ज्ञात होगा कि वह पानीमें इधर-उधर दौड़ता है। खाद्य-पदार्थोंको ग्रहण करता है और उनका पाचन करता है अपने प्रतिकूल और हानिकारक पदार्थोंसे वह दूर भागता है तथा सन्तानोत्पत्ति करता है। इस प्रकार कई व्यापार हमें दृष्टिगोचर होंगे।

संक्षेपमें सजीव प्राणियोंमें, आहार, परिभ्रमण, श्वासोच्छ्वास प्रजोत्पत्ति आदि व्यापार देखनेमें आते हैं। वे परिस्थिति (Environment) में होनेवाले परिवर्तनोंके अनुकूल बननेका प्रयास करते हैं, एवं उनके व्यापार सकारण (Purposive) मालूम होते हैं। दूसरे शब्दोंमें, उद्दीपनों (Stimuli) पर प्रतिक्रिया करना सजीव प्राणियोंका एक प्रधान लक्षण माना जाता है, चाहे ये उद्दीपन शरीरके बाहर हों या शरीरके भीतरसे हों। व्यापारोंकी सत्ताके अतिरिक्त वे उन व्यापारोंके परिणाम-स्वरूप प्राप्त किये अनुभवोंका भी उपयोग करते दिखाई देते हैं।

इन सब निरीक्षणोंके फलस्वरूप जीव-विद्याविशारदोंका कहना है कि प्राणी-शरीरमें जड़ पदार्थ रासायनिक तत्वके अतिरिक्त एक और भी तत्त्व है जो इनसे भिन्न गुण-धर्मवाला है। वह क्या है ? यह बतानेकी झंझटमें वे नहीं पड़ते। वह है अवश्य, इतना कहकर वे प्राणियोंके वर्णनके अध्ययनमें आगे बढ़ते हैं।

भौतिकवादी जीव-विद्याके इन निरीक्षणोंका विरोध नहीं करते। इन ठोस बातोंका विरोध किया ही कैसे जा सकता है? फिर भी वे अनेक तर्क उक्त व्यापारोंके स्पष्टीकरणके सिल-सिलेमें हमारे सामने रखते हैं। यथा—एक कल्पना है कि करोड़ों साल पहिले इस पृथ्वीपर किसी अन्य ग्रहसे एक विशेष प्रकारके प्राणी खिच आये। बादमें वातावरणकी अनुकूलता पानेपर इस प्राणी-सृष्टिका शनैः-शनैः विकास हुआ। दूसरी कल्पना यह है कि भूतकालमें एक समय पृथ्वीके स्तरमें और उसके चारों ओरके वायुमण्डलमें ऐसे भौतिक परिवर्तन (Physical changes) हुए कि जिनके परिणामस्वरूप जड़ पदार्थोंसे चेतनरस (Proto-plasm) उत्पन्न हुआ जो वनस्पति एवं प्राणी-सृष्टिका आदि-कारणरूप बना और इसके बाद सजीव सृष्टि अस्तित्वमें आई जिसके विकासक्रमको हम देख सकते हैं।

यहां यह स्मरण रखना चाहिये कि ये कल्पनाएँ सिर्फ कल्पना-मात्र ही हैं। उनको प्रयोगोंसे पुष्टि नहीं मिली है। दूसरे ग्रहोंसे आनेवाले सजीव प्राणियोंका अभीतक विज्ञानके इतिहास में जिक्र नहीं आया है। फिर किसी ग्रहसे सूक्ष्म प्राणी इस ग्रह (पृथ्वी) पर आये ऐसा मानने पर वह ग्रह कौन सा है? अथवा उस ग्रहपर रहने वाले प्राणी वहां अन्य किस ग्रहसे आये थे? इस प्रकारके अनेक प्रश्नोंकी परंपरा हमको अनवस्था-दोषकी ओर खींच ले जाती है। दूसरी कल्पनाके बारेमें नहीं बताया जा सका। इसके विपरीत जड़ पदार्थोंमें से सजीव प्राणियोंकी उत्पत्ति नहीं

होती ऐसा जन्तु शास्त्र (Bacteriology) गर्वपूर्वक कहता है। प्राचीनोंकी परिभाषामें कहा जाय तो "असत्"से "सत्" उत्पन्न नहीं हो सकता। फिर भी दलीलके लिये यह मान लिया जाय कि किसी समय जड़-द्रव्यमेसे चेतन-रस पैदा हुआ। उधर भौतिक-वादी सब शारीरिक एवं मानसिक व्यापारोंकी व्याख्या अन्य किसी अपार्थिव तत्त्वकी सहायताके बिना करनेके लिये तैयार हैं। उनके मतके अनुसार जिस प्रकार एक कोषी प्राणी (Unicellular organism) अपनी परिस्थितिके अनुकूल बननेके लिये प्रयत्नशील रहता है, और विविध प्रकारकी उत्तेजनाओं (Stimuli) का प्रतिकार करता है; उसी प्रकार करोड़ों सजीव कोषोंके मिलनेसे बना हुआ मानव शरीर (बहु कोषीय प्राणी) भिन्न-भिन्न उत्तेजनाओंके फलस्वरूप अपने शारीरिक व्यापार करता है। उसकी देहमें किसी अपार्थिव अंशकी कल्पना करनेकी आवश्यकता नहीं है। उसके मस्तिष्क (Brain) और उसके साथ सम्बन्धित नाड़ी सूत्रोंके व्यापारों द्वारा ही इसके विचारों, भावों और प्रवृत्तियोंकी व्याख्या की जा सकती है। मानव शरीरमें स्थित निःस्रोत-ग्रन्थियोंके स्राव उसके नाड़ीतन्त्रपर बहुत प्रभाव डालते हैं। जैसे—वृषण-ग्रन्थिका अन्तःस्राव (Testicular Hermony) शरीरमें प्रविष्ट किया जाय तो मनुष्य वृद्ध होनेपर भी कामुक हो जाता है। अधिवृक्क ग्रन्थि (Suprarenal Gland) का अन्तःस्राव प्रविष्ट करनेपर उसके हृदयकी धड़कन तेजीसे होने लगती है और

वह उत्तेजित हो जाता है। चाय, काफी, शराब जैसे नाड़ीतन्त्रके उत्तेजक पदार्थ उसकी विचारधाराको अधिक वेगवती बना देते हैं इत्यादि। जिसका मस्तिष्क अधिक कार्यक्षम होता है वह अधिक बुद्धिमान होता है। मनुष्योंके स्वभावमें जो परिवर्तन दिखाई देता है उसका कारण उनके शरीरकी निःस्रोत-ग्रन्थियोंके स्रावोंका परिमाण न्यूनाधिक होना है। क्रोध, शोक, मोह आदि मानसिक भावोंका स्पष्टीकरण भी वे इसी प्रकार करते हैं। मनुष्य-शरीरके मानसिक व्यापारोंकी व्याख्याके लिये आत्मा (Soul), मन (Mind), स्पिरिट (Spirit) आदिकी कल्पना भौतिकवादियोंके मतानुसार निरर्थक है।

आत्मवादी इन दलीलोंका उत्तर विज्ञानकी सहायतासे ही देते हैं। उन्नीसवीं शताब्दीकी अपेक्षा वर्तमान शताब्दीमें यह विवाद अधिक निश्चयात्मकस्वरूप ग्रहण कर रहा है। संक्षेपमें कहा जाय तो आजकल आत्मवादियोंका पक्ष बलवत्तर होता जा रहा है। अस्तु।

स्वयं शरीर व्यापारशास्त्रियोंका कहना है कि भौतिकवादी—जड़वादी—केवल यन्त्रवादका सहारा लेकर शरीरके समस्त व्यापारोंका स्पष्टीकरण नहीं कर सकते। उदाहरणतः अश्रु या स्वेदबिन्दुकी उत्पत्ति, पाचनक्रिया अथवा रुधिराभिसरण केवल यान्त्रिकवादकी सहायतासे नहीं समझाए जा सकते। इन व्यापारोंपर शरीरके अतिरिक्त मनका भी स्पष्ट प्रभाव होता है। आंखमें अश्रु-धूलिके कण गिरनेसे या धुआं जानेसे आते हैं, और

शोकके प्रसंगमें भी आते हैं। पहली दशामें बाहरकी घटनायें अश्रु प्रवाहको उत्पन्न करती हैं, दूसरी दशामें सिर्फ मानसिक भावनायें उसी प्रकारका परिणाम उपस्थित करती हैं। अर्थात् पार्थिव एवं अपार्थिव दोनो प्रकारकी घटनाओंका परिणाम एक ही अश्रुप्रवाह रूप होता है। यह उदाहरण भिन्न-भिन्न प्रकारकी घटनाओंसे होनेवाले एक परिणामका द्योतक है।

अब इसके विपरीत प्रकारका उदाहरण लें। एक ही घटनाका भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंपर पृथक्-पृथक् प्रभाव होता है। मांसके एक टुकड़ेको देखते ही शाकाहारीको घृणा होती है। और मांसाहारीके मुँहसे पानी आने लगता है। अकाल होनेपर गल्ला बेचनेवालोंके मुख प्रफुल्लित होते हैं जब कि हजारों गरीबोंके मुख उदासीन हो जाते हैं। नाटक अथवा सिनेमाके दृश्योंको देखते हुए भिन्न-भिन्न प्रेक्षकोंमें भिन्न-भिन्न प्रभाव होते हैं। घटना एक होते हुए भी परिणाममें यह विविधता क्यों? केवल यन्त्रवादसे ये प्रक्रियाएँ नहीं समझी जा सकतीं। जड़-वादियोंका कहना है कि यह वैविध्य मस्तिष्क और नाड़ीसूत्रोंकी विविध प्रकारकी व्यक्तिगत भावनाके कारण ही है। क्योंकि उनके मतमें मानसिक व्यापारोंके माने हैं नाड़ीकोषों (Neurons) के व्यापार। परन्तु यदि व्यक्तिगत भावनाको स्वीकार किया जाय तब तो यन्त्रवाद खण्डित हो जाता है, क्योंकि प्रत्येक रेलके एञ्जिनमें ऐसी व्यक्तिगत भावना नहीं दिखाई देती। अर्थात् सत्य यह है कि व्यक्तिगत प्रभावोंमें शरीर एवं मन दोनो भाग लेते हैं।

खुद पदार्थ विज्ञान (Physics) के क्षेत्रमें भी भौतिक रसायन के नियमोंका अभी पूरा-पूरा पालन होता दिखाई नहीं पड़ता। परमाणुओंकी आन्तरिक रचना और उनके गुणधर्मोंके विषयमें जो अनुसन्धान आजकल हो रहे हैं वे तो हमको यन्त्रवादकी अपेक्षा अज्ञेयवाद (Mysticism) की ओर ही अधिक खींचे ले जा रहे हैं ऐसा प्रतीत होता है।

मनोविज्ञान (Psychology) के क्षेत्रमें भी आजकल पारीक्षणात्मक पद्धति स्वीकृत की गई है, और मानसिक व्यापारोंको गणितशास्त्रके समीकरणों (Equations) के ढांचेमें बिठानेके प्रयत्न किये जा रहे हैं। मन यदि वास्तवमें जड़पदार्थोंका बना होगा तो ऐसे नियमोंमें फँसेगा, अन्यथा सबको चक्करमें डालकर अतीन्द्रिय ही बना रहेगा!

नेत्रेन्द्रियका व्यापार जड़वादियोंकी दलीलोंको काटनेमें बड़ा उपयोगी सिद्ध हो सकता है। बहुत कमको यह बात मालूम होगी कि हम जिन पदार्थोंको देखते हैं उनकी प्रतिमा आँखके भीतरके नेत्रवितान (Retina) पर उल्टी पड़ती है। यह प्रकाश-विद्या (Optics) का नियम है। फिर भी हम मनुष्यों को ऊपर पैर और नीचे सिर अथवा वृक्षोंको ऊर्ध्वमूल-अधःशाख नहीं देखते। इस परिवर्तनका कारण क्या है? जड़-वादी कहते हैं कि यह तो अनुभव (Experience) का परिणाम है। अब प्रश्न उठता है कि इस अनुभवका अर्थ क्या? और वह कहाँ रहता है? सचमुच मनके अस्तित्वका—किसी चैतन्य

तत्त्वका—स्वीकार किये विना नेत्रेन्द्रिय या अन्य किसी इन्द्रियके व्यापार नहीं समझे जा सकते। इतना ही नहीं, अनुभव, स्मृति, निद्रा आदि सब व्यापारोंका यही हाल है। हमलोग निःसन्देह कह सकते हैं कि आजकलके विज्ञानके विविध अनुसन्धान आत्मवाद किंवा चैतन्यवादको ही अधिक पुष्ट करते हैं।

जड़वादी प्रश्न करते हैं कि यदि मनको इतना अधिक प्राधान्य देना अभीष्ट हो तो फिर मस्तिष्कके व्यापारोंको ही मानसिक व्यापार माननेमें क्या आपत्ति है? क्लोरोफार्म सुँघाकर अथवा शरीरके किसी एक भागकी नाड़ियोंमें स्थानिक संज्ञा नाशक (Local Anaesthetics) औषध प्रविष्ट करके शस्त्रक्रिया की जाती है और रोगीको किसी प्रकारकी वेदनाका भी अनुभव नहीं होता। अर्थात् इन जड़ द्रव्योंकी सहायतासे मनका व्यापार (वेदनाका अनुभव) रोका जा सकता है। इसके अतिरिक्त मस्तिष्कके कुछ भागोंका ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंके साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध है (देखो परिशिष्ट)। इस सम्बन्धमें विक्षेप होनेपर मानसिक व्यापारोंपर अतिशय बुरा प्रभाव होता है, इसलिये मस्तिष्क व्यापारोंको ही मानसिक व्यापार मानना चाहिये।

इसके उत्तरमें चैतन्यवादी कहते हैं कि मस्तिष्क स्वयं मन नहीं है किन्तु मनका साधन है। क्योंकि मस्तिष्क और नाड़ीसूत्रोंके द्वारा ही मन अपने व्यापार कर सकता है। उपकरणहीन कर्त्ता अथवा साधन-रहित शिल्पी, अपना कार्य नहीं कर सकता, यह प्रमाण-शास्त्र (Logic) कहता है। इसलिये नाड़ी-तन्त्र

मनका साधन है। यह साधन जितना और जिस अंश तक अच्छा होता है उतना ही मनको अपने कार्य करनेमें सफलता मिलती है। उदाहरणतया—स्वच्छ हवा, उत्तम खाद्यपदार्थ, नियमित रुधिराभिसरण आदि नाड़ी-तन्त्रको कर्त्तव्यक्षम रखनेवाली परिस्थितियाँ मनको भी स्फूर्ति देनेवाली होती हैं। यदि मनको मस्तिष्कसे भिन्न न माना जाय, तो, जब हम एकाग्र चित्तसे किसी कार्यमें सलंग्न हों या अन्यमनस्क हों तब, आँख खुली होने पर भी सामनेकी वस्तुकों नहीं देख सकते या समीपमें रखी घड़ीकी आवाज भी नहीं सुन सकते, इस प्रतिदिनके अनुभवका स्पष्टीकरण कैसे हो? अतिशय शोक होनेपर आमाशयके रहते हुए भी भूख नहीं मालूम होती, इसका क्या कारण है? इसलिये इन्द्रियोंके या नाड़ीतन्त्रके व्यापार मानसिक प्रवृत्तिके द्योतक हैं, यही मानना अधिक संगत है।

आजकल चैतन्यके स्वीकारके बारे में अधिक विवाद नहीं है। परन्तु शरीरमें रहनेवाले इन दो विसंवादी तत्त्वोंके बीचका सम्बन्ध बड़ा विवादग्रस्त विषय हो गया है। जीव-विद्या-विशारद (Biologists), शरीर व्यापार शास्त्रज्ञ (Physiologists) वैज्ञानिक आधिभौतिकवादी(Scientific Metaphysicists) मानसशास्त्र-विशारद (Psychologists) तथा तत्त्वज्ञानी (Philosophers) इस विषयमें बहुत अधिक रस ले रहे हैं। ये सब अपने-अपने मन्तव्योंके अनुसार अपने मतको पुष्ट करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। यहाँ सबसे प्रधान प्रश्न यह है कि शरीर

और मनका सम्बन्ध कैसा माना जाय ? केवल जड़वाद या केवल चैतन्यवाद दृश्यसृष्टि एवं मानससृष्टिके सब व्यापारोंका समाधान नहीं कर सकते। यद्यपि, यह सारी सृष्टि मनोमय है, ऐसा माननेवाले वैज्ञानिक भी हैं।

इसके अतिरिक्त एक समान्तरवाद (Psychophysical prallelism) नामक विचार-प्रवाह भी है। उसका मन्तव्य है कि हमारे शरीरमें दो प्रवाह एक साथ बहते हैं, जो एक-दूसरेसे अन्तरपर और स्वतन्त्र बहा करते हैं। एक प्रवाह हमारे शारीरिक व्यापारोंका (जिसमें नाड़ीतंत्रके व्यापारोंका समावेश होता है) और दूसरा हमारे मानसिक व्यापारोंका है। इन दोनों प्रवाहोंके बीच परस्पर कोई कार्य-कारण-भाव-सम्बन्ध नहीं होता। ये दोनों प्रकारके व्यापार एक साथ उत्पन्न होनेसे इनमें हमको कार्य-कारण-भाव-सम्बन्ध दिखाई देता है।

इस मतके अनुसार शोकसे अश्रु नहीं उत्पन्न होते किन्तु शोक (मानसिक व्यापार) के साथ ही अश्रुपात (शारीरिक व्यापार) होता है, और दोनोंके बीच कार्य-कारण-भाव दिखाई देता है। समान्तरवादियोंके मतानुसार जड़ और चेतनके गुण-धर्मोंमें इतना महत्त्वपूर्ण अन्तर है कि इन दोनोंके बीच कार्य-कारण-संबंध (Law of Causation) माना ही नहीं जा सकता। इसके विरुद्ध यह तर्क उपस्थित किया गया है कि जड़ और चैतन्यके बीच का अन्तर प्रत्यक्ष-सिद्ध है फिर भी इन दोनोका उद्गम-स्थान कोई एक तीसरा ही तत्त्व है जिसका अभी तक विज्ञानको पता ही नहीं

लगा है जिससे ये दोनो पदार्थ उत्पन्न हुए हैं। दोनोके उत्पत्तिस्थान एक होनेके कारण, इनके विकसित स्वरूपमें पूर्णपार्थक्यता दीखनेपर भी, इन दोनोके बीच पृथक्‌र क्रियाएँ होती हैं। दूसरे शब्दोंमें कहा जाय तो मन और जड़ सृष्टिका अन्तिममूल एक है इसलिये दोनोका एक-दूसरेपर प्रभाव (Psychophysical Interaction) होता है, यह हमारा नित्यका अनुभव है। इस प्रकारके अन्तर-क्रियावादको माननेवाले कई तत्त्वज्ञानी हैं। हमारे देशके तत्त्व-ज्ञानका इतिहास भी इस बातका समर्थक है।

एक ही फलित स्त्री-बीज (Fertilised ovum) से उत्पन्न हुए युग्म बालकों (Identical Twins) के मानसिक व्यापारोंका अध्ययन यह बताता है कि मनुष्य-शरीरमें मनके अतिरिक्त कोई अन्य तत्त्व भी है। एक ही माता-पिताके, एक ही प्रकारके जल-वायु और भोजन पानेवाले और एक ही प्रकारकी शिक्षा पानेवाले इन बालकोंमें अनेक प्रकारका साम्य होनेपर भी कुछ विशिष्टता क्यों दिखाई देती है ? इस प्रश्नका उत्तर कई लोग आत्मा एवं मनके अस्तित्वकी सहायतासे देते हैं। किन्तु आत्मा (Soul) शब्दका उच्चारण होते ही उसके साथ पुनर्जन्म, आनुवंशिक संस्कार, मरणोत्तर गति आदिके प्रश्न उपस्थित होते हैं। उनकी चर्चा धर्म और तत्त्वज्ञानके विशारद करते हैं। यहाँ सिर्फ अंगुलि-निर्देश किया है क्योंकि आयुर्वेदके आचार्योंने भी इन बातोंका निर्देश अल्पांशमें अपने ग्रन्थोंमें किया है; उदाहरण—चरक भगवान्‌ने आस्तिकता, मोक्ष, सिद्धियाँ आदि प्रश्नोंकी भी चर्चा संहितामें की है। इन विषयोंकी थोड़ी चर्चा आगेके अध्यायोंमें होगी। (देखो अध्याय ८)

दूसरा अध्याय

आलोच्य ग्रन्थ

(1) Sir S. Radha Krishnan—An Idealist View of Life.
(2) C. E. M. Joad—Guide to Philosphy.
(3) Frank Kenyon—The Myth of Mind.
(4) Johan Yerbury—Reactions of the Human Machine.
(5) W. Mc. Dougall—Body and Mind.
(6) Halliburton—Handbook of Physiology.
(7) H. H. Newman—The Nature of the World and of Man.

तीसरा अध्याय

मनोविज्ञान

चिकित्साधिकृत पुरुषका लक्षण बताते हुए आयुर्वेदाचार्योंने उसमें पंच महाभूत और आत्मा दोनोंका समावेश किया है[1]। तथापि आत्मा निर्विकार होने से उसे व्याधियोंका अधिष्ठान नहीं माना है, परन्तु उसीके साथ संलग्न मनको रोगोंका एक अधिष्ठान बताया है[2]। इसलिये हम भी आत्म विषयक चर्चाको जो दर्शनों का प्रधान विषय है, छोड़कर मनके संबन्ध की चर्चा प्रारंभ करते हैं। चार्वाक और बौद्ध को छोड़कर शेष सब दर्शन आत्मवादी थे। आयुर्वेद के द्रष्टा भी आत्मवादी थे, यह उनके विचारों से स्पष्ट विदित होता है, इसलिये यह चर्चा यहाँ पर अप्रासंगिक होगी।

यहाँ यह कहनेकी आवश्यकता शायद ही होगी कि आधुनिक युगमें नाड़ीतन्त्र के ज्ञानका जितना विस्तार आज है उतना प्राचीन कालमें नहीं था। आधुनिक शरीर-रचना-शास्त्र (Anatomy) तथा शरीर-व्यापार-शास्त्र (Physiology) ने इन्द्रियों की स्थूल एवं सूक्ष्म रचना तथा नाड़ियोंके विस्तार और कार्यों के विषयमें जो प्रकाश डाला है वह चिकित्सा के लिये अतिशय उपयुक्त होनेके कारण हमने उसका स्वतंत्र रूपसे परिशिष्टमें समावेश किया है। प्राचीन हठयोगियोंने नाड़ीतन्त्रका अध्ययन

स्वतन्त्र रूपमें और प्रयोगात्मक रीतिसे किया था। उन्होंने अपने तन्त्रग्रन्थोंमें सुषुम्णा (Spinal cord), इड़ा, (Left Sympathetic Trunk), पिंगला (Right Sympa thetic Trunk) एवं सहस्रार (पद्म) (Cerebum) का उल्लेख किया है। किन्तु वे तो मोक्षके उपासक थे, उनका व्यवसाय चिकित्सा नहीं था, इसीलिये उनके अनुभवों का लाभ आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति को नहीं मिला। कदाचित् यह भी संभव है कि वैद्य मानस-रोग-पीड़ित मनुष्यों को इन सिद्ध पुरुषों के आश्रयमें जानेकी और उनके द्वारा सूचित उपायोंका अनुसरण करनेकी सलाह देते होंगे।

नाड़ीतन्त्रके ज्ञानका विकास न होने पर भी प्राचीन दर्शन-शास्त्रियों ने मानस-शास्त्रका बहुत सुन्दर अध्ययन किया था। आजकल मानस शास्त्रके अध्ययनमें व्यवहृत प्रयोगात्मक पद्धति (Experimental method) का उस समयमें उपयोग न होता होगा, तथापि अवलोकन (Observation) और अन्तः प्रेक्षण पद्धति (Introspection method) का उपयोग उन्होंने अत्यधिक किया है ऐसा उनके उल्लेखों से प्रतीत होता है। प्रत्येक दर्शनने मनकी चर्चाके विषयमें विशेष अभिरुचि दिखाई है, यह बात हमको दर्शन-ग्रन्थोंके अवलोकनसे साफ प्रतीत होती है। किन्तु इसमें भी उनका उद्देश्य केवल मानस-शास्त्रकी चर्चा करना न था, क्योंकि निवृत्ति मार्गके पथिक, वे लोग तो मनको उन्मार्ग-गमनसे रोकना चाहते थे, उसके विविध व्यापारोंको

उचित दिशामें मोड़ना चाहते थे। इसके फलस्वरूप प्रत्येक दर्शनमें प्रमाण शास्त्र (Logic), मानस शास्त्र (Psychology) आध्यात्म शास्त्र (Metaphysics) और धर्म (Religion) की चर्चा ओतप्रोत हो गई है। उस कालमें इस प्रकार विभिन्न दृष्टिकोणों से की गई समीक्षा ही लोकमानसको संतुष्ट कर सकती थी। चरक-संहिताकी प्रतिष्ठा इस प्रकार की मिश्र-चर्चा-पद्धतिके कारण ही है; क्योंकि वह—अपने पाठकोंको-वैद्योंको अपने स्वाभाविक व्यवसाय से—उच्चतर कक्षामें लेजाकर, न केवल रोगीके शरीरके विषयमें, अपितु उसकी मानसिक एवं आध्यात्मिक स्थितिके विषयमें भी विचारशील बना देता है। वैद्य क्षण भरके लिये सामान्य मनुष्य न होकर द्रष्टा बन जाता है।

अपने ग्रन्थके प्रारंभमें ही भगवान् चरकने जीवित (Life) की व्याख्या करते हुए शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्माके संयोग पर विशेष जोर दिया है। थोड़ा आगे चलकर सत्त्व, आत्मा एवं शरीरका परस्पर गाढ़ संबन्ध भी दिखाया है। मतलब यह है कि प्रारंभसे ही आयुर्वेदके विद्यार्थीको केवल शरीर की ओर ही ध्यान न रखना चाहिये किन्तु मनके प्रति भी ध्यान आकर्षित करना चाहिये[3]। सारी सृष्टिमें जड़ एवं चेतन दोनो प्रकारके पदार्थ दिखाई देते हैं। उनमेंसे सजीव पदार्थ किंवा प्राणी (Living organism) किसे कहा जाय? इस जीवविद्या (Biology) के प्रश्नका उत्तर उन्होंने निम्नोक्त दिया है—"जो-जो द्रव्य सेन्द्रिय है वह चेतन है, और जो-जो द्रव्य निरिन्द्रिय है वह अचेतन है।

अर्थात् जहाँ-जहाँ इन्द्रिय-व्यापारोंका होना संभावित मालूम हो वहाँ-वहाँ चेतना (Life) है, इस बातकी कल्पना करनी चाहिये, क्योंकि चेतना प्रत्यक्ष (ज्ञान) लक्ष्य पदार्थ नहीं है। उसका तो अनुमान ही हो सकता है। इन्द्रियोंके व्यापार हमको उन (इन्द्रियों) के अस्तित्वकी प्रतीति कराते हैं। (देखो-आगे-इन्द्रिय-विज्ञान अध्याय) इस लक्षणके अनुसार प्राणी एवं वनस्पतियाँ दोनो चेतनवर्ग (Living matter) के अन्तर्गत आ जाते हैं; क्योंकि इन दोनो सृष्टियोंमें—प्राणिसृष्टि (Animal Kingdom) तथा वनस्पति सृष्टि (Botanical kingdom) में सेन्द्रिय व्यापार (Organic changes) दृष्टिगोचर होते हैं [४]।

अन्य प्राणियों और वृक्षोंकी बात छोड़कर हम मनुष्योंका ही विचार करते हैं। मनुष्य षड्धातु-समुदाय-स्वरूप है। चरक, भेल, सुश्रुत और काश्यप द्वारा की गयी 'पुरुष' शब्दकी निरुक्तियों से ज्ञात होता है कि यह सिद्धान्त आयुर्वेदमें सर्वमान्य है[५]। प्रत्येक मनुष्यके देहमें रहनेवाली चेतना, ब्रह्म, आत्मा, शरीर आदि शब्दों से कही जानेवाली इस छठी धातु आत्माकेलिङ्ग-चिह्न कौन-कौन से हैं? किन व्यापारों से जाना जा सकता है कि मनुष्योंमें चैतन्यका अस्तित्व है? "किं लिङ्गं पुरुषस्यच" अग्निवेशके इस प्रश्नका उत्तर निम्न है "प्राणापान, निमेषोन्मेष आदि, जीवन, मनकी गति, विभिन्न इन्द्रियोंमें उस (मन) का संचार होना, उनका प्रेरण और धारण करना, स्वप्नमें देशान्तर

गमन करना, स्वप्नमें मृत्यु, दाहिनी आँखसे देखी हुई वस्तुका बाँईसे बोध होना आदि और इनके अतिरिक्त सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, चेतना, धृति, बुद्धि, स्मृति और अहंकार-ये परमात्माके लिङ्ग हैं। ये लक्षण सजीव मनुष्यमें ही देखे जाते हैं, मृतमें नहीं। इसलिये महर्षि लोग इनको आत्माके लिङ्ग (चिह्न) मानते हैं [६]।" इनसे मिलते हुए विचार काश्यप संहितामें पाये जाते हैं। सुश्रुत ने भी कर्मपुरुषके लिङ्ग बताते हुए कहा है—"उस (आत्मा) के लिङ्ग चेतना, अहंकार, प्राण, अपान, उन्मेष, निमेष, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, स्मृति, धृति, और बुद्धि हैं। इनके अभावका नाम मरण है है[७] *।"

इन लक्षणोंमें रोग-परीक्षामें नित्यप्रति व्यवहारमें आनेवाला लक्षण ऊष्मा छोड़ दिया है; किन्तु उपनिषदोंका अनुसरण करते हुए ब्रह्मसूत्रकारने उसका ग्रहण किया है†।

---

* तुलना करो—प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियाणिविकाराः-सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि ॥

(वै० सू० ३-२-४)

तथा—इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति ॥

न्यायसूत्र-१-१-१०

† अस्यैव चोपपत्तेरेष ऊष्मा ॥ ब्रह्मसूत्र ४-२-११ ॥

शा० भाष्य—तथा हि मृतावस्थायामवस्थितेऽपि देहे, विद्यमानेष्वपि च रूपादिष देहगुणेषु नोष्मोपलभ्यते, जीवदवस्थायामेवतूपलभ्यत इत्यत उपपद्यते प्रसिद्ध शरीरव्यतिरिक्त व्यपाश्रय एवैष ऊष्मेति ।

तथा च श्रुतिः—"उष्ण एव जीविष्यन् शीतो मरिष्यन्" इति ।

इन लक्षणोंमें प्राणापान अर्थात् प्रश्वास और उच्छ्वास, तथा निमेषोन्मेषको प्रत्यक्ष होनेसे सब आसानीसे समझ सकते हैं। इन व्यापारोंकी क्षतियों को मृत्युका चिह्न कहा गया है[८]। यद्यपि यहाँ पर प्राण और अपानका ही निर्देश किया है किन्तु वातकलाकलीयाध्यायमें पाँचो वायुओंका आधुनिक नाड़ीतन्त्रके कर्मोंके अनुरूप ही वर्णन किया गया है। जीवनका अर्थ है शरीरकी वृद्धि तथा व्रण भरने एवं टूटी हुई हड्डियोंके जुड़नेकी शक्ति*। आजकल भी वृद्धि (Growth) और पुनर्जीवन (Regeneration) ये दोनो लक्षण शरीरकी धातुओंकी सजीवताके द्योतक (Properties of Living or Vital Tissues) माने जाते हैं। यदि शरीरके कोष पोषण न मिलनेसे या आघातसे अथवा विषके परिणाम-स्वरूप मर जायँ तो उनकी संख्या या परिमाणमें वृद्धि न होगी। न व्रण भरेगा और न हड्डी जुड़ेगी। शरीरका जो घिसाव होता है वह हमको प्रतीत नहीं होता क्योंकि हमारी यह स्वभाविक जीवन-शक्ति उस घाटेको ठीक कर लेती है। आत्माके ये लक्षण स्थूल शरीरमें दिखाई देते हैं, शेष सब लक्षण सूक्ष्म शरीर अर्थात् अन्तःकरणमें दिखाई देते हैं।

आधुनिक विज्ञानकी परिभाषामें कहा जाय तो शारीरिक एवं मानसिक दोनो व्यापारोंका इन लक्षणोंमें अन्तर्भाव हो जाता है।

---

* देहस्य वृद्धि क्षत भग्नसरोहणादिनिमित्तत्वात्।

(प्र० पा० कन्दली पृ० ७०)

जीवित शरीरमें रहनेवाली चेतना अथवा चैतन्य जिसका कारण है, उस आत्माकी चर्चा यहीं समाप्त करके इस अध्यायके प्रधान विषय मनका पुनः विचार करते हैं। 'मन् ज्ञाने' धातुसे मनस् किंवा मन शब्द बना है। आयुर्वेदिक साहित्यमें मन, चित्त, सत्त्व आदि शब्द समानार्थवाची (पर्याय) हैं। यद्यपि सब दर्शनोंमें मन और चित्त शब्दका इस प्रकार (पर्यायके रूपमें) प्रयुक्त नहीं हुआ है। आत्माके विवेचनमें भगवान चरकने न्याय, वैशेषिक एवं वेदान्तसे मिलते-जुलते विचार व्यक्त किये हैं। मनकी चर्चामें भी उन दर्शनोंके विचारों (वाक्यों) का अवलम्बन किया है। इसका कारण स्पष्ट है। कोई भी विचारक अथवा लेखक अपने समकालीन विचारोंके प्रभावसे नहीं बच सकता। चरक भी इस नियमके अपवाद नहीं हैं। परिणामतः अपने पूर्वकालीन एवं समकालीन दार्शनिक विचारोंका प्रतिबिम्ब चरकसंहितामें है। अस्तु।

मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ आदि आत्माके करण हैं, ऐसा भगवान चरकने कहा है। करणोंमें—कर्मेन्द्रियाँ (Motor organs) और ज्ञानेन्द्रियाँ (Sensory organs) ये वाह्य करण हैं और मन आदि अन्तरिक करण हैं। यहाँ प्रश्न होता है कि क्या अन्तःकरण जैसी कोई चीज माननेकी आवश्यकता है? देहादिसे भिन्न आत्मतत्त्वको माननेकी आवश्यकता न्यायादिक आस्तिक दर्शनोंके साथ चरकने भी मानी है। परन्तु यदि बुद्धि, स्मृति एवं अहङ्कार के समान मनको भी आत्माका लिंग ही माना जाय तो फिर मन-

३

को भिन्न माननेकी क्या आवश्यकता है ? इस प्रश्नके पूर्वपक्ष एवं उत्तरपक्ष निम्न हैं।

"आत्माके जो प्रतिपादक कारण हैं वे मनमें भी सम्भावित होते हैं, इसलिये मनसे अलग आत्मा माननेकी कोई आवश्यकता नहीं।" अर्थात्—आत्माको ही मन कहा जाय तो क्या आपत्ति है ? इस पूर्वपक्षका उत्तर दूसरे सूत्रमें दिया है। ज्ञाताको ज्ञानके साधनोंकी आवश्यकता होती है ; यथा द्रष्टा आँखसे देखता है, घ्राता नाकसे सूँघता है, स्प्रष्टा त्वचासे स्पर्श करता है। इसी प्रकार मन्ताको सर्व-विषयक मति (चिन्तन) के साधनभूत एक पृथक् करणकी आवश्यकता है, जिसकी सहायतासे वह सब विषयोंको जान सके। इस प्रकार विद्यमान ज्ञाताको आत्मा न कहकर मन नाम देना हो तो भले दें और मनको मन न कहकर मति-साधन कहना हो तो भले कहें। किन्तु आत्माको मन कहनेसे और मनको, जो उसका करण है, मति-साधन कहनेसे केवल नामका ही परिवर्तन होता है। आशय यह कि कर्त्ता और करण दोनो भिन्न हैं, इस विषयमें विवाद नहीं है। अगर यह स्वीकार न किया जाय तो फिर सब इन्द्रियोंके करणत्वके लोपका प्रसंग उपस्थित होगा। क्योंकि यदि मन्ताके सर्व विषयोंकी मतिका साधन-रूप मन है ही नहीं—इस रूपमें मनके अस्तित्वका विरोध किया जाय, तो फिर द्रष्टाको रूपग्रहण करनेके लिये दर्शनेन्द्रियकी भी आवश्यकता नहीं है—विषयोंको ग्रहण करनेके लिये अन्य कारणोंकी (साधनोंकी) भी आवश्यकता नहीं है, ऐसी परिस्थिति

पस्थित होती है। इस प्रकार सब इन्द्रियोंका करणत्व न मानने
पर उनका लोप होनेका प्रसंग आ जाता है। और यदि ऐसा ही
नियम माना जाय कि रूप, रस, गन्ध आदि विषयोंको ग्रहण
करनेके लिये ज्ञाता आत्माको साधन-भूत इन्द्रियां दी हैं परन्तु
सर्व विषयोंके चिन्तन के लिये कोई साधन नहीं है, तो यह
नियम माननेके लिए हमारे पास कोई अनुमान नहीं है। ऐसे
नियमको स्वीकार करनेका कोई प्रयोजन भी नहीं है! कर्त्ता और
करण दोनोंके अभिन्न होनेका कोई दृष्टान्त नहीं मिलता*। ब्रह्म

* नात्मप्रतिपत्तिहेतूनां मनसि सम्भवात् ॥ न्या० सू० ३-१-१५।

भा०—तस्मान्न शरीरेन्द्रियमनोबुद्धिसङ्घातव्यतिरिक्त आत्मेति

सू०—ज्ञातुर्ज्ञानसाधनोपपत्तेः संज्ञाभेदमात्रम् ॥ न्या० सू ३-१-१६ ॥

भा०—ज्ञातुः खलु ज्ञानसाधनान्युपपद्यन्ते चक्षुषा पश्यति, घ्राणेन जिघ्रति, स्पर्शनेन स्पृशति। एवं मन्तुः सर्वविषयमतिसाधनम्मनः करणभूतं सर्वविषयं विद्यते येन अयं मन्यत इति। एवं सति ज्ञातर्यात्मसंज्ञा न मृष्यते, मनः संज्ञाभ्यनुज्ञायते। मनसि च मनः संज्ञा न मृष्यते, मतिसाधनं त्वभ्यनुज्ञायते। तदिदं संज्ञाभेदमात्रं नार्थे विवाद इति। प्रत्याख्यानेवा सर्वेन्द्रिय विलोपप्रसङ्गः। अयं मन्तुः सर्वविषयस्य मतिसाधनं सर्वविषयं प्रत्याख्यायते नास्तीति" एवं रूपादिग्रहणसाधनान्यपि न सन्तीतिसर्वेन्द्रियविलोपः प्रसज्यत इति ॥ १६ ॥

सू०—नियमश्च निरनुमानः ॥ न्या० सू० ३-१-१७।

भा०—योऽयं नियम इष्यते "रूपादिग्रहणसाधनान्यस्य सन्ति, मतिसाधनं सर्वविषयं नास्तीति"। अथ नियमः निरनुमानः (हेतुदृष्टान्तशून्यः) नात्रानुमानमस्ति येन नियमं प्रतिपद्यामहे इति ॥ (वात्स्यायनभाष्य)

सूत्रकारने शिल्पीका दृष्टान्त देकर आत्माके लिये करणोंकी आव-श्यकता बतलाई है*।

"इस प्रकारका अन्तःकरण है, यह अवश्य मानना पड़ेगा यदि अन्तःकरणका अस्तित्व न माना जाय तो आत्मा, इन्द्रियों और विषयोंका संयोग होनेपर सर्वदा ज्ञात होना चाहिये, किन्तु यह नहीं होता। अथवा आत्मा या इन्द्रियोंकी शक्तिपर किसी प्रकारका प्रतिबंध होना चाहिये। लेकिन आत्माकी शक्तिके लिये प्रतिबन्ध होना संभव नहीं है, क्योंकि वह अविकारी है। इन्द्रियों की शक्तिपर प्रतिबन्ध होना भी अशक्य है, क्योंकि कुछ (पूर्वके या बादके) क्षणोंके लिये उनकी शक्ति अप्रतिबद्ध रहे और कुछ क्षणमें फिर अकस्मात् प्रतिबद्ध हो जाय (जिससे ज्ञान न हो सके) ऐसा नहीं होता। इसलिये इस प्रकार शक्तिका प्रतिबन्ध मानने के बजाय, आत्मा, इन्द्रियों और विषयोंके रहने पर भी जिसके अवधानसे ज्ञान होता है और जिसके अनवधानसे ज्ञान नहीं होता उसका नाम मन है†, ऐसा ही मानना उचित है।

---

* तथा हि विशिष्टेषु लक्षणादिव्यापारेषु, अपेक्ष्यैव प्रतिनियता करणानि वास्यादीनि कर्ता भवति ब्र० सू० २-३-४

† नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसङ्गोऽन्यतरनियमो वाऽन्यथा

ब्र० सू० २-३-३

भा०—तच्चैवंभूतमन्तःकरणमवश्यमस्तीत्यभ्युपगन्तव्यम्। अन्य ह्यनभ्युपगम्यमाने तस्मिन्नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसङ्गः स्यात्। आत्मेन्द्रि विषयाणामुपलब्धिसाधनानां सन्निधाने सति नित्यमेवोपलब्धिः प्रसज्येत। अ सत्यपि हेतुसमवधाने फलाभावस्ततो नित्यमेवानुपलब्धिः प्रसज्येत। न

इस प्रकार मनके अस्तित्वके विषयमें सब दर्शन एकमत हैं। परन्तु और आगे बढ़ने पर मतभेद शुरू होता है। उदाहरणतया मान का अस्तित्व स्वीकार कर लेनेके बाद तुरन्त ही दूसरा प्रश्न उपस्थित होता है : मनका अर्थ क्या है? आत्माको विभु, निर्विकार और चिदंश स्वीकार करनेपर मनको क्या मानना चाहिये? इसके उत्तर-स्वरूप निम्न मत हैं।—

वैशेषिक दर्शनके मतानुसार--मन नौ द्रव्योंमें एक है। वैशेषिक दार्शनने बौद्धोंके क्षणिकवादका प्रबल विरोध करके, पदार्थों का अस्तित्व सिद्ध किया है। इतना ही नहीं, हमारे अनुभवमें आनेवाले मूर्त एवं अमूर्त भावोंके विषयमें गम्भीर विचार कर, उनका सूक्ष्म पृथक्करण (Analysis) करके, उन भावोंको छः वर्गों (Categories) में विभक्त किया है। इन छः वर्गोंका नाम छः पदार्थ है*। इन छः पदार्थोंमें सातवां "अभाव" पदार्थ

दृश्यते। अथवाऽन्यतरस्यात्मन इन्द्रियस्य वा शक्तिप्रतिबन्धोऽभ्युपगन्तव्यः। नचात्मनः शक्तिप्रतिबन्धः संभवति। अविक्रियत्वात्। नापीन्द्रियस्य नहि तस्य पूर्वोत्तरयोः क्षणयोरप्रतिबद्धशक्तिकस्य सतोऽकस्माच्छक्तिः प्रतिबध्येत। तस्माद्यस्यावधानानवधानाभ्यामुपलब्ध्यनुपलब्धी भवतस्तन्मनः।

* द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्याम तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्॥ वै० द० १-१-४।

पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि
वै० सू० दर्शन १-१-५

प्र० पाद भाष्य—तत्र द्रव्याणि पृथिव्याप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि सामान्यविशेषसंज्ञोक्तानि नवैव।

पीछेसे श्रीधराचार्य, उदयन, शिवादित्य आदि प्रसिद्ध वैशेषिकोंने बढ़ा दिया। इन छहों पदार्थोंको भगवान चरकने भी स्वीकार किया है[१०]। और नौ द्रव्यों (Substances) को भी स्वीकार किया है। किन्तु उनका वर्णन करते हुए उन्हें आयुर्वेदके अनुकूल बनाने के लिए वैशेषिकोंके पदार्थवादको आत्मसात् कर लिया है[११]। इसका कारण केवल यह है कि दोनोंको व्यावहारिक जगत् (World ot Experience) के साथ काम लेना था। नौ द्रव्योंमें मनका समावेश होता है। न्याय-दर्शनने उसका समावेश प्रमेयोंमें किया है। इन दोनो दर्शनोंके साथ आयुर्वेदके मन-विषयक विचारोंका कहां तक साम्य है, इसका ज्ञान पाठकोंको इस अध्याय से ज्ञात हो जायगा*।

वैशेषिक, नैयायिक, तथा पूर्वमीमांसक, मनको अणु, निरवयव एवं नित्य, अर्थात् कारण रहित मानते हैं। उसका आत्माके साथ सम्बन्ध अनादि कालसे चला आ रहा है, यह प्रतिपादन करते हैं। वैशेषिकोंकी भाँति आयुर्वेद-प्रणेताओंने भी मनको द्रव्य-रूप और अणुपरिमाण वाला माना है। सृष्ट्युत्पत्ति-क्रममें सांख्य-दर्शनके अनुसार उस (मन) को प्रकृतिके षोडश-विकारके अन्तर्गत माना है। वैशेषिकोंका पदार्थवाद आयुर्वेदज्ञों को औषध-द्रव्योंके वर्गी कारण एवं गुण-कर्मोंके वर्णनमें बहुत उपयोगी हो गया। परन्तु वैशेषिकोंका परमाणुवाद आयुर्वेदज्ञोंको

* आत्मा शरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनःप्रवृत्तिदोषप्रेत्यभावफलदुःखापवर्गास्तु प्रमेयम् ॥ न्या० सू० १-१-९ ॥

इष्ट नहीं था ऐसा प्रतीत होता है। चरकमें[11] जिस स्थल पर परमाणु शब्दका उल्लेख आया है, वहाँ वह शरीरके अत्यन्तसूक्ष्म विभागके अर्थमें, न कि पदार्थकी अन्त्य-स्थिति-रूप वैशेषिकोक्त परमाणुके अर्थमें व्यहृत हुआ है, ऐसा मालूम होता है। आयुर्वेद, सांख्य तथा वेदान्तकी भाँति, पञ्चमहाभूतोंको मानता है। षड धातुरूप पुरुषकी चर्चा हम कर चुके हैं।

वैशेषिकोंके परमाणु-वाद और पदार्थ-वादकी अपेक्षा सांख्य के सत्कार्यवाद, परिणामवाद, और सर्गोत्पत्तिक्रम प्राचीन समय से ही विचारकोंके लिये बहुत आकर्षक हो गये थे। इसलिये सांख्यका भी आयुर्वेदके प्रणेताओं पर प्रभाव हुआ हो तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। सृष्टिका पृथक्करण करते समय उसके सब पदार्थोंका छः या सात विभागोंमें (Categories) अन्तर्भाव करके वैशेषिकने अपनेको कृतकृत्य माना था। लेकिन कपिल देवकी कुशाग्र बुद्धिने इस प्रत्यक्ष स्थावर-जंगम सृष्टिको केवल दो ही विभागोंमें—पुरुष और प्रकृतिमें—समाविष्ट कर दिया। जो वस्तुएँ हमको व्यवहारमें भिन्न-भिन्न मालूम होती हैं वे क्या वास्तवमें भिन्न हैं या ऊपरसे देखनेमें ही भिन्न मालूम होती हैं? इस प्रश्न पर सूक्ष्म विचार करनेसे भिन्न-भिन्न तत्त्वोंका कारण उनको एक ही मालूम हुआ और सब परिवर्तन-शील तत्त्वोंको, जिनमें बुद्धि और मनका भी समावेश हो जाता है, उस आद्य-मुनिने केवल एक जड़ प्रकृतिमें ही समाविष्ट कर दिया। केवल चैतन्यको ही अपरिवर्तन-शील होनेसे भिन्न मानकर, पुरुष नामसे

स्वीकार कया। इन दोनो मुख्यतत्त्वोंकी पुरुष और प्रकृतिकी सहायतासे ही सांख्यने सम्पूर्ण व्याख्या की है।

हमारी दृष्टिके सामने उपस्थित बाह्य जड़-सृष्टि और हमारी अनेक विचारोंसे परिपूर्ण आन्तरिक सृष्टि दोनो एक ही मूल-प्रकृतिसे पैदा हुए हैं; यह बात सामान्य मनुष्यको आसानीसे समझमें नहीं आती; किन्तु सांख्य दर्शनका मन्तव्य है कि यह एक तथ्य है। कई विचारकोंने इस मतका समर्थन किया है। आधुनिक विज्ञान-वादियोंको भी यह प्रकृति-पुरुषवाद—सत्कार्यवाद—अतिशय रोचक मालूम हुआ है, क्योंकि उसमें मनुष्यकी पृथक्करण-शक्तिकी उच्च भूमिका एवं विकासवादके बीज दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँ स्मरण रखना चाहिये कि विज्ञानवादियोंने समस्त सृष्टिके पृथक्करण करनेमें केवल वैज्ञानिक दृष्टिबिन्दु (Scientific View point) का उपयोग किया है जब कि प्राचीन आर्यद्रष्टाओंने आधिभौतिक वाद (Metaphysics) के दृष्टि-बिन्दुसे पृथक्करण किया है। परिमाणतया आधुनिक विज्ञानवादियों को चैतन्य सृष्टिकी व्याख्या करते हुए जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, सांख्यवादी उन कठिनाइयोंसे बच जाते हैं। *

अब आयुर्वेद और सांख्यके पारस्परिक सम्बन्धके बारेमें विचार करना है। भगवान चरकने षड्धातु या छः तत्त्वोंके

* सांख्य और आधुनिक विज्ञानके विचारोंमें कहाँतक साम्य एवं वैषम्य है यह बात समझने योग्य है। यहाँ दोनोके दृष्टि बिन्दुओंका अन्तर बताया है।

समुदाय-रूप पुरुषको २४ तत्त्वोंका समुदाय-रूप राशि-पुरुष-रूप भी बताया है[१२]। सजीव शरीरमें—संयोगपुरुषमें—पाये जानेवाले ये चौबीस तत्त्व कौनसे हैं? "अव्यक्तसे बुद्धि (महत्), बुद्धिसे अहंकार और अहंकारसे पञ्चमहाभूत यथाक्रम उत्पन्न होते हैं। अव्यक्त, बुद्धि, अहंकार तथा पञ्चमहाभूत, इन आठ तत्त्वोंको "भूतप्रकृति" कहते हैं और शेष (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियां, एक मन और पाँच इन्द्रियार्थ) सोलह प्रकृतिके विकार हैं। इन चौबीस तत्त्वोंमें अव्यक्तको छोड़कर शेष सब क्षेत्र हैं और अव्यक्तको ही इस क्षेत्रका क्षेत्रज्ञ ऋषि लोग मानते हैं, ऐसा कहा है[१३]।

चरक-संहिताकी इन उक्तियोंका काश्यपसंहिता समर्थन करती है[१४]। इससे स्पष्ट होगा कि चरक और काश्यपका "भूत प्रकृति" का वर्णन सांख्यकारिकामें दिये हुए सांख्यसे भिन्न है, क्योंकि इन दोनो ग्रन्थोंमें तन्मात्रोंका नाम तक नहीं है। यद्यपि टीकाकार चक्रपाणिदत्तने चरकके "खादिनि" शब्दका अर्थ सूक्ष्म तन्मात्र किया है लेकिन वह ठीक नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टिके अभावके कारण तथा सुश्रुत संहितामें आये हुए और उस महान् वैद्य पंडित (चक्रपाणि) के समयमें प्रवर्तमान सांख्य दर्शनके विचारोंके साथ किसी तरहसे समन्वय करनेके शुभ उद्देश्यसे उन्होंने यह अर्थ किया होगा। लेकिन यह वस्तुस्थितिका निरूपण नहीं है। ईश्वरकृष्ण-प्रणीत सांख्यकारिका-में, जो कि ऐतिहासिक प्रमाणोंके अनुसार ईसाकी तीसरी

शताब्दीमें लिखा गया ग्रन्थ है, उसमें तन्मात्रोंका विस्तारसे वर्णन किया गया है। प्राचीन समयके ग्रन्थों, जैसे उपनिषद्, गीता, महाभारत आदि, में तन्मात्रांका उल्लेख ही नहीं है। गीताने ता महाभारत, चरक और काश्यपकी भाँति महाभूतोंको प्रकृतिके अन्दर गिना है और सांख्यने जिन्हें तन्मात्र कहा है उसको चरक, महाभारत आदि भूतोंके गुण किंवा इन्द्रियोंके विषय कहते हैं। यह बात चरक-शारीरस्थानके प्रथम-अध्यायसे और महाभारतके शान्ति-पर्वके २१२ वें अध्यायसे मालूम होती है*। तन्मात्रके अतिरिक्त सांख्यकारिकामें आये अहंकारके सात्विकादि भेद तथा राजस-सहाय वैकृत अहंकारसे मन एवं दस इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं और तन्मात्रोंसे पञ्च महाभूत उत्पन्न होते हैं, इस मतका उल्लेख भी चरक-संहिता या काश्यप संहितामें नहीं मिलता है। (सुश्रुत-संहितामें सांख्यकारिकाके मिलते जुलते विचार हैं, इस बातकी चर्चा बादमें करेंगे) चरक भगवान

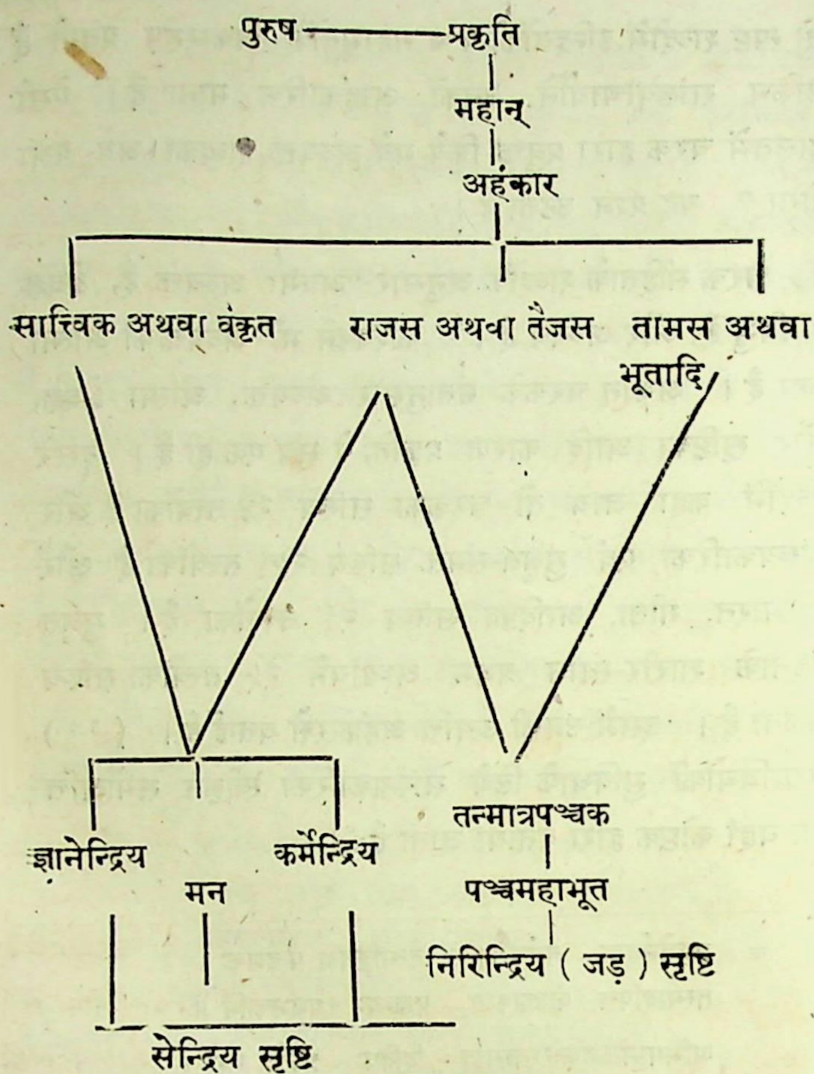
* भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेवच।
अहंकार इतीयमे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ गीता ९-४ ॥
अव्यक्तकर्मजा बुद्धिरहङ्कारप्रसूयते।
आकाशंचाप्यहंकाराद्वायुराकाशसंभवः ॥
वायोस्तेजस्ततश्चाप अद्भ्योऽथवसुधोद्गता।
मूलप्रकृतयोह्यष्टौ जगदेतास्ववस्थितम् ॥
म० शा० २१२-४०-४२ ॥
ज्ञानेन्द्रियाण्यतः पञ्च पञ्चकर्मेन्द्रियाण्यपि।
विषयाः पञ्च चैकंच विकाराः षोडशंमनः ॥ म० शा०

तो स्पष्ट शब्दोमें इन्द्रियोंको पञ्च महाभूतोंके विकाररूप बताते हैं लेकिन सांख्याचार्योंने उनको आहंकारिक माना है। ऐसी हालतमें चरक द्वारा प्रयुक्त किये गये अव्यक्त शब्दका अर्थ क्या होगा ? यह प्रश्न उठता है।

चरक संहिताके शब्दोंके अनुसार "आत्मा अव्यक्त है, क्षेत्रज्ञ है, विभु है, और अव्यय है।" काश्यपने भी अव्यक्तको आत्मा कहा है। अर्थात् चरकके मतानुसार अव्यक्त, आत्मा क्षेत्रज्ञ, और सृष्टिका आदि कारण प्रकृति, ये सब एक ही हैं। दूसरे शब्दोंमें कहा जाय तो चरकका सांख्य २४ तत्त्वोंका है और सांख्यकारिका एवं सुश्रुत-संमत सांख्य २५ तत्त्वोंका है और महाभारत, गीता, आदिका सांख्य २६ तत्त्वोंका है। सुश्रुत संहिताके शारीर-स्थान प्रथम अध्यायमें २५ तत्त्वोंका सांख्य मिलता है। उसमें उनकी उत्पत्ति अहंकारसे बताई है। (१५) विद्यार्थियोंकी सुविधाके लिये सांख्यकारिका स्वीकृत सर्गोत्पत्ति क्रम यहाँ कोष्ठक द्वारा बताया जाता है*।

---

* प्रकृतेर्महान्, ततोऽहङ्कारः, तस्माद्गणश्च षोडशकः।
तस्मादपिच षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्चभूतानि ॥
अभिमानोऽहंकारस्तस्माद् द्विविधः प्रवर्तते सर्गः।
एकादशकश्चगणस्तन्मात्रः पाञ्चकश्चैव ॥
सात्विक एकादशकः प्रवर्तते वैकृतादहंकारात।
भूतादेस्तन्मात्रः सतामसः तैजसादुभयम् ॥



लेकिन इतना लिखने पर भी भगवान् सुश्रुतने आगे चलकर लिखा है कि आयुर्वेदमें इन्द्रियों एवं इन्द्रियार्थोंको भौतिक माना

जाता है। पुरुषके विषयमें भी मतभेद दिखाया है। आयुर्वेद की दृष्टिसे यह ठीक ही किया है।

अब फिर हम चरकके विचारोंको देखें--सांख्यकारिकाका २५ तत्त्वात्मक सांख्य, पुरुष और प्रकृति दोनोको भिन्न मानकर, द्वैत (Dualism) को पुष्ट करते हुए, उनको आदि तत्त्वके तौर पर स्वीकार करता है। दूसरी ओर भगवान चरकने एक-अव्यक्त-तत्व-आत्माको ही आदि-कारण मानकर अपना मत वेदान्तके समीप पहुँचा दिया है। दूसरे शब्दोंमें कहा जाय, तो एक अनिर्वचनीय आदि-कारणमें से जड़ और चेतनकी उत्पत्ति मानकर आत्मवादका समर्थन किया है। ये विचार उनके अपने ही या उस समयमें प्रवर्तमान किसी दूसरे विचार प्रवाहसे लिये हुए होंगे। काश्यपने भी इनके सामन ही विचार प्रकट किये हैं। इसलिये संभव है कि दोनोकी विचार धाराओंका मूल एक हो। मेरे मतके अनुसार आयुर्वेदके प्रणेता सांख्य-वादके विचारोंको मानते थे और वैशेषिकोंके मतका तो उन्होंने आवश्यकताके अनुसार ही स्वीकार किया है।

मनके विषयमें भी ऐसा ही हुआ है। चरकके सूत्रस्थानके प्रथमाध्यायमें मन और आत्मा दोनोका द्रव्योंमें संग्रह किया है। लेकिन यह सिर्फ उनको गुण और कर्मका आश्रयरूप कहकर व्यावहारिक दृष्टिसे उनका वर्णन करनेके लिये किया है। परन्तु सर्गोत्पत्ति-क्रममें मनको सांख्यवादियोंके अनुसार सोलह-विकारा-न्तर्गत रखा है और इन्द्रियोंकी भाँति उसको भी भौतिक माना

है। वह आत्माके कारण, अचेतन होनेपर भी, क्रियाशील दिखाई देता है। वैशेषिकोंके सर्गोत्पत्ति-क्रमको आयुर्वेदने नहीं स्वीकारा है, यह ठीक ही किया है। उनके जड़ एवं शाश्वत परमाणुओंको आधुनिक वैज्ञानिक अभेद्य नहीं मानते। परमाणुओंको तोड़कर आगे चलनेपर अतीन्द्रिय सृष्टि उपस्थित होती है, यह आधुनिक सिद्धान्त है। इसके अतिरिक्त दिशा, काल और परमाणुओंको भिन्न-भिन्न द्रव्य भी कोई नहीं मानता। इसके विपरीत जोर देकर यों कहा जाता है और सप्रयोग दिखाया जाता है कि दृश्य पदार्थ जैसे दिखाई देते हैं वैसा उनका यथार्थ स्वरूप नहीं है। जड़-पदार्थोंके परमाणुओंको तोड़नेपर जड़शक्ति (Blind Energy) के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं आता। इसी शक्तिके दिक् कालके अन्दर होनेवाले परिवर्तनोंके फलस्वरूप ही भिन्न-भिन्न रासायनिक तत्त्व (Chemical Elements) और सृष्टिकी विविध घटनाएँ (Material Events) उत्पन्न (घटित) होती हैं। मतलब कि वैज्ञानिकोंके मतानुसार, हेतु-विद्या (Telelogy) की दृष्टिसे देखनेपर, जड़-द्रव्य (Matter) दिक् (Space) और काल (Time) का अलग-अलग विचार हो ही नहीं सकता। ये सब एक ही संयुक्त द्रव्य (Space-Time-Matter-Stuff) हैं ऐसा माने बिना विश्वकी व्याख्या नहीं हो सकती। दूसरे शब्दोंमें कहा जाय तो आजका विज्ञानवाद सांख्य और वेदान्तके सर्गोत्पत्ति-विषयक विचारोंका समर्थन करता हो, ऐसा मालूम होता है। कहनेको

आवश्यकता नहीं होगी कि आत्मा एवं मनके विषयमें विज्ञानवाद विशेष रस नहीं लेता ; यद्यपि अब कुछ विज्ञानवादी भी आधिभौतिकवाद (Metaphysics) को मानने लगे हैं।

अब मनका लक्षण देखें। इस विषयमें पहले प्रश्न यह उठता है कि, हमारी मानसिक सृष्टिकी विभिन्नता एवं विपुलताको देखते हुए अनेक शक्तियोंसे युक्त एकही मति-करण-साधन माना जाय या भिन्न-भिन्न शक्तियुक्त कई (अनेक) मन मानने चाहिये ? इन दोनो प्रश्नोंका उत्तर चरक यों देते हैं। आत्मा, इन्द्रियों और अर्थोंके संयुक्त होनेपर ज्ञान होना या न होना, यह मनका लक्षण है ; क्योंकि आत्मा, इन्द्रियों और अर्थोंका सन्निकर्ष होनेपर भी मनके वैवृत्यसे* --इन्द्रियोंका और मनका संयोग न होनेसे ज्ञान नहीं होता और मनके सान्निध्यसे ज्ञान होता है। अणुत्व और एकत्व ये दो मनके गुण हैं[१६]।

अन्य स्थलपर, एक पुरुषमें मन एक ही होनेपर भी उपाधि भेदसे अनेकत्वकी प्रतीति कैसे होती है ? इसका स्पष्टीकरण

* यहाँ ममके वैवृत्यके स्थानपर 'वैधृत्य' पाठ योगेन्द्रनाथ सेनने लिया है। मुझे चक्रपाणिका पाठ अधिक संगत मालूम होता है। यहाँ वैधृत्य अर्थात् धृतिके अभावकी बात नहीं है किन्तु मनकी वृत्ति (Mode of Mind) के अभावकी—मनकी वृत्तियाँ दूसरे रास्तेपर खींची गई हों ऐसी स्थितिकी—बात है। इसके सिवाय वैधृत्यका अर्थ असन्निधान कैसे किया जा सकता है ? यद्यपि उनकी टीकासे श्लोकका भावार्थ तो ठीक-ठीक समझमें आ जाता है, फिर भी उनका पाठान्तर "वैधृत्यान्मनसो ज्ञानम्" मुझे नहीं जँचता।

किया है। "सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणोंके योगसे, तथा मनके अर्थ, इन्द्रियोंके अर्थ और संकल्पमें उसकी विविध गति होनेसे, एक पुरुषमें मन (एक होनेपर भी) अनेक मालूम होते हैं। परन्तु मन एक ही है, अनेक नहीं। क्योंकि एक ही मन, एक ही समयमें, अनेक विषयोंमें नहीं जा सकता। इसलिये सब इन्द्रियोंकी एक साथ प्रवृत्ति नहीं हो सकती[१७]।" काश्यप संहितामें इससे मिलते-जुलते ही शब्द मिलते हैं[१८]।

दर्शनोंमें भी यही बात विस्तारसे कही गयी है, जिसका सार भगवानने चरक दिया है। न्याय-सूत्रकार "एकसाथ ज्ञानोंकी अनुत्पत्ति मनका लक्षण है", ऐसा कहते हैं। नाक आदि इन्द्रियों और गंध आदि इन्द्रियार्थोंके विद्यमान होते हुए भी एक साथ रूप, रस, गंध आदि भिन्न-भिन्न विषयोंके ज्ञान नहीं होते; इससे अनुमान होता है कि जिसके सान्निध्यसे ज्ञान होता है और जिसके असन्निधान (अभाव) से ज्ञान नहीं होता, ऐसा कोई दूसरा, सहकारी, इन्द्रिय-संयोगी और अव्यापी निमित्त है। यदि उस (मन) की आवश्यकता ही नहीं होती तो इन्द्रियार्थ-सन्निकर्षसे ही ज्ञान होना चाहिये*। आशय यह है कि इन्द्रियार्थ

---

* युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्॥ (न्या० सू० १-१-१६)

वा० भा०—युगपच्च खलु घ्राणादीनां गन्धादीनाञ्च सन्निकर्षेषु सत्सु युगपज्ज्ञानानि नोत्पद्यन्ते, तेन अनुमीयते—अस्ति तत्तदिन्द्रियसंयोगि सहकारि, निमित्तान्तरमव्यापि, यस्यासन्निधेर्नोत्पद्यतेज्ञानं, सन्निधेश्चोत्पद्यत इति ! मनः-संयोगानपेक्षस्य हीन्द्रियार्थसन्निकर्षस्य ज्ञानहेतुत्वे, युगपदुत्पद्येरन् ज्ञानानीति॥
न्या० सू० १-१-१६

सन्निकर्षके ही परिणामस्वरूप ज्ञान होगा या नहीं इस बातपर विशेष जोर दिया गया है। एकत्वका स्पष्टीकरण चरकने किया है, परन्तु अणुत्वका कोई भी कारण नहीं दिया है। केवल ज्ञानके भाव या अभावकी ओर ध्यान रखते हुए, दर्शनोंमें प्रयुक्त "ज्ञानायौगपद्य" शब्दको चरकने छोड़ दिया है; परन्तु काश्यपने यथावत् रखा है। इसके अतिरिक्त ये सब विचार न्याय-वैशेषिक का कहाँतक अनुसरण करते हैं, यह बात पाद टिप्पणीमें दिये हुए उद्धरणोंसे ही स्पष्ट हो जायगी❀। परन्तु ज्ञानायौगपद्यके भावको व्यक्त करनेके लिये चरकने अन्य ही शब्द पसन्द किये हैं-"तस्मान्नैककाला सर्वेन्द्रिय प्रवृत्तिः।" वात्स्यायनने अपने भाष्यमें एक और भी पहलू उपस्थित किया है। विविध ज्ञानका एक कालमें

ज्ञानायौगपद्यादेकं मनः ॥ न्या० सू० ३-२-५६

वा० भा०—अस्तिखलु वै ज्ञानायौगपद्यम्, एकैकस्येन्द्रियस्य यथाविषयम्—करणस्यैकप्रत्ययनिर्वृत्तौ सामर्थ्यात्। न तदेकत्वेमनसोलिङ्गम्। यत्तु खल्विदमिन्द्रियान्तराणां विषयान्तरेषु ज्ञानायौग पद्यमिति तल्लिङ्गम्। कस्मात्? सम्भवति खलु वै बहुषु मनःस्विन्द्रियमनःसंयोगयौगपद्यमिति ज्ञानयौगपद्यं स्यात्। न तु भवति। तस्माद्विषयेप्रत्ययपर्यायादेकंमनः (न्या० सू० ३-२-५६) न, युगपदनेकक्रियोपलब्धेः। अलातचक्रदर्शनवत्तदुपलब्धिराशु संचारात्, यथोक्तहेतुत्वाच्चाणु। न्या० सू० ५७-५८-५९

❀ आत्मेन्द्रियार्थ सन्निकर्षे ज्ञानस्य भावोऽभावश्च मनसोलिङ्गम्। प्रयत्नायौगपद्याज्ज्ञाना यौगपद्याच्चैकम्। वै० सू० ३-२,-१-३

प्रशस्तपाद भाष्य—मनस्त्वयोगान्मनः। सत्यप्यात्मेन्द्रियार्थसान्निध्ये, ज्ञानसुखादीनामभूत्वोत्पत्तिदर्शनात् करणान्तरमनुमीयते। श्रोत्राद्यव्यापारे स्मृत्युत्पत्तिदर्शनात्।

उत्पन्न न होना यह जैसे मनका लक्षण है वैसे उसके एकत्वका भी प्रतिपादक है। इस एकत्वके दृष्टिकोणसे विचार करने पर ज्ञाना-यौगपद्यका अर्थ इस प्रकार होगा—एकेन्द्रिय ग्राह्य विविध पदार्थोंका भी एक साथ ज्ञान नहीं होता। क्योंकि प्रत्येक इन्द्रिय एक समयमें एक ही प्रकारका ज्ञान उत्पन्न करनेमें समर्थ है। भैरवी, भीमपलास, आशावरी आदि विविध राग एक साथ बजाने पर भी कर्णेन्द्रिय द्वारा एक कालमें एक ही रागका ज्ञान हमको हो सकता है; विविध रागोंका ज्ञान तो क्रमशः ही होगा। इसी प्रकार बहुतसे दृश्य पदार्थ हमारी दृष्टिके सामने रहते हुए भी किसी एक पदार्थका ही ज्ञान हमको होता है। परन्तु इस तर्कसे मन एक है यह सिद्ध नहीं होता; क्योंकि इन्द्रियां कर्ण-या नेत्र एक कालमें एक ही पदार्थका बोध करानेमें समर्थ हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो इस परिस्थितिसे इन्द्रियके सामर्थ्यकी मर्यादाका निदर्शन होता है, इससे मनका एकत्व या अनेकत्व सिद्ध नहीं होता। "परन्तु विभिन्न इन्द्रियोंसे ग्रहण किये जाते विभिन्न विषयों का ज्ञान एक कालमें नहीं होता इससे ज्ञात होता है कि मन एक है और वह एक साथ विभिन्न इन्द्रियोंके साथ सम्पर्क करनेमें असमर्थ है। यदि अनेक मन होते तो एक ही कालमें सब विषयों-का ज्ञान होता, लेकिन ऐसा नहीं होताहै, इसलिये, विविध प्रकारके ज्ञानोंकी एक समयमें अनुत्पत्ति, अर्थात् ज्ञानकी क्रमिकता होनेके कारण (प्रत्यय-पर्यायात्) मन एक है।" वात्स्यायन के ये शब्द दीर्घ कालके अवलोकनका परिणाम है। आधुनिक विज्ञान भी

इस बातका समर्थन करता है। उदाहरणतया कर्णेन्द्रिय पर भिन्न-भिन्न आवाज—विविध शक्तिकी उत्तेजनायें (Stimuli) अपना प्रभाव डालते हैं फिर भी उनमें जो उत्तेजना सबसे प्रबल होगी वह कानपर सबसे पहले प्रभाव डालेगी। यथा संगीतकी ध्वनिके साथ ही यदि तोपकी ध्वनि हो जाय तो तोपकी आवाज़ हम पहले सुनेंगे इसके पीछे संगीतको। त्वचाको यदि एक हाथसे गुदगुदाया जाय और दूसरे हाथसे उसी समय पर सुई चुभोई जाय तो सुईका दुःखद स्पर्श तुरन्त ही ध्यान आकर्षित करेगा। अर्थात् एक ही इन्द्रियके विषयमें भी ज्ञानकी क्रमिकता-प्रत्यय-पर्याय दृष्टिगोचर होती है। इसका स्पष्टीकरण शारीर-व्यापार शास्त्र उत्तेजनाओंकी शक्ति और प्रकारके (Strength and kind of Stimuli) आधार पर करता है। इस बातका समर्थन प्रयोगों* एवं हमारे नित्यके अनुभवोंसे भी होता है।

---

* एकेन्द्रियकरणकानां ज्ञानानामयौगपद्यमेकम्। नानेन्द्रिय करणकानां ज्ञानानामयौगपद्यमित्यपरम्। सर्वस्यैवकरणस्यैषस्वभावोयदेकस्मिन् क्षणे एकमेव कार्यं जनयतीति। अतो नैतन्मनस एकत्वेऽनेकत्वे वा हेतु रिति भावः।

न्या० सू० खद्योत व्याख्या।

पहले उद्धृत न्या० सू० ३-२-५६ के वात्स्यायन भाष्यका उद्धरण भी देखो।

बाह्येन्द्रियैरगृहीतसुखादि ग्राह्यान्तरभावाचान्तः करणम्। तस्यगुणाः संख्या परिमाण पृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वसंस्काराः, प्रयत्नज्ञानायौगपद्य वचनात्प्रतिशरीरमेकत्व सिद्धम्। पृथक्त्वमप्यत एव। तदभाववचनादणु परिमाणम्। अपसर्पणोपसर्पणवचनात्संयोगविभागौ। मूर्तत्वात्परत्वापरत्वेसंस्कारश्च अस्पर्श-

इसी प्रकारकी दलीलको और बढ़ाकर न्याय दर्शनने मनका अणुत्व भी सिद्ध किया है। यदि मनको महत् परिमाण वाला माना जाय तो उसका एक साथ विभिन्न इन्द्रियोंके साथ सम्बन्ध होगा और इससे एक साथ विविध ज्ञानोंकी उत्पत्ति होगी। ऐसा नहीं होता इसलिये मन अणु है। इसके सिवाय शरीरमें दो विभुतत्त्व (आत्मा एवं मन) माने जायँ तो दोनोंका संयोग नित्य ही रहेगा और विविध प्रकारके ज्ञानोंकी एक साथ उत्पत्ति होगी। परन्तु ऐसा नहीं होता। ज्ञानकी क्रमिकताका (Successive Charactor of our Sense Experience) हम सदा अनुभव करते हैं। कभी-कभी ज्ञान क्रमिक होता है फिर भी हमको एक साथ उत्पन्न होता सा मालूम होता है, जैसे अलात चक्र दर्शन। लेकिन यह यौगपद्य (Simutaneity) तो भ्रम है। सिनेमाके पर्देपर हम चलते या दौड़ते हुए पात्रोंको देखते हैं यह दृष्टि भ्रमका परिणाम है।

अबतकके विवेचनसे मालूम होगा कि न्याय और वैशेषिक दर्शनोक्त मनके लक्षण "एक साथ अनेक ज्ञानोंकी अनुत्पत्ति" को दूसरे शब्दोंमें इस रूपमें कहा जा सकता है कि "मन एक समयमें एक ही ज्ञानको ग्रहण कर सकता है" आधुनिक शरीर-व्यापार शास्त्रकी परिभाषामें कहा जाय तो मन-मस्तिष्क-

---

वत्त्वाद् द्रव्यान्तरम्भकत्वम्। क्रियावत्त्वान्मूर्तत्वम्। साधारण विग्रहवत्त्वप्रसगादज्ञत्वम्। करणभावात् परार्थम्। गुणवत्त्वाद् द्रव्यम्। प्रयत्नादृष्ट परिग्रह वशोदाशुसंचारिचेति। द्रव्य ग्रन्थ-मनोनिरूपेण।

एक समयमें एक प्रबल उत्तेजना (Stimulus) को ही ग्रहण कर सकता है, जैसे रेलकी पटरीपर एक समयमें एकही ट्रेन चल सकती है। अर्थात् यहां मनका लक्षण बताते हुए मनका अर्थ मनके प्रतीति व्यापारकी एक अवस्था (Condition of perception) या ध्यान (Attention) प्रत्ययैकाग्रता-किया है। किन्तु न्याय वैशेषिक का मनके धर्मके विषयमें जो मत है वह सर्वमान्य नहीं है। उपनिषद जो कि अनेक प्रकारके विचारोंका संग्रह स्थान किंवा उद्गम स्थान है और जिसमें कल्पना एवं बुद्धिके विलासको काफी अवकाश मिला मालूम होता है उसमें न्याय वैशेषिकके मतके समर्थनमें कहा है कि "मेरा मन अन्यत्र लगा था, मैंने नहीं देखा। मेरा मन अन्यत्र था, मैंने नहीं सुना" "यह (आत्मा) मन द्वारा देखता है, मन द्वारा सुनता है *।" लेकिन इसके बाद तुरन्त ही मनका व्यापक अर्थ करके मनकी वृत्तियों-धर्मोंका विवरण करते हुए कहा है—"काम, संकल्प, विचिकित्सा, श्रद्धा,-अश्रद्धा, धृति-अधृति, ह्री, धी (बुद्धि), भय ये सब मन ही हैं।" अन्य एक स्थलपर मनके व्यापारोंके नाम इस प्रकार दिये हैं—"संज्ञान (Sensation), आज्ञान (perception) या प्रतीति, विज्ञान (Ideation), प्रज्ञान (Conception), मेधा (Understanding),

---

* अन्यत्रमना अभूवं नादर्शमन्यत्रमना अभूवं नाश्रौषम्। मनसाह्येव पश्यति मनसा शृणोति। कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृति-र्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव"। बृ० १-५-३

दृष्टि (Insight), धृति (Resolution), मति (Opinion), मनीषा (Imagination), जूति (Feeling), या भाव स्मृति (Memory), संकल्प (Volition), क्रतु (Conation), या कार्य करनेका विचार, असु (The will to live) या जीनेका दृढ़ संकल्प काम (Desire) तथा वश (Self control), ये सब प्रज्ञा (बुद्धि) (Intellection) के नाम हैं,,*। इस उद्धरणसे ज्ञात होगा कि उपनिषद्‌के समयमें मानसिक व्यापारोंके विषयमें कितने विवाद या चर्चाएँ हुआ करती थीं और वादके दर्शनोंमें इन विचारोंने कैसा स्वरूप धारण किया है। तात्पर्य यह कि उपनिषद्‌के समयसे ही कामादि धर्मोंसे-युक्त मन, प्राण, वाक् आदिके विषय में विभिन्न मत चले आ रहे थे। उन कामादि वृत्तियोंका कुछ वर्गीकरण करके मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इस प्रकार एक ही अन्तःकरणके तीन या चार भेद भी उपनिषद्‌कालसे ही मानने लगे थे। "इन्द्रियोंसे ऊपर अर्थ (विषय) है उनसे ऊपर मन है और मनसे भी ऊपर बुद्धि है†।"

* संज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृष्टिर्धृतिर्मतिर्मनीषा जूतिः स्मृतिः संकल्पः क्रतुरसुकामोवशइति सर्वाण्येतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति।
ऐतरेय उ० ३० २०

† इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था अर्थेभ्यश्चपरं मनः।
मनसस्तु परावुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः॥ कठ०-१-३-१०

मनश्चमन्तव्यञ्च, बुद्धिश्चबोद्धव्यञ्चाहंकारश्चाहङ्कर्तव्यञ्च, चित्तं च चेतयितव्यञ्च........मन्ता, बोद्धा, कर्ता, विज्ञानात्मा पुरुषः स परेऽक्षरे आत्मनि सम्प्रतिष्ठते॥ प्रश्न० ४-७-८

इस वाक्यमें मन और बुद्धि दो करण कहे गये हैं। प्रश्नोपनिषद्में मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार-ये चार करण कहे गये हैं और इन सबका संप्रतिष्ठान आत्मामें दिखाकर उसका मन्ता, बोद्धा, कर्ता और विज्ञान रूपसे निरूपण किया गया है "मन्ता बोद्धा विज्ञानात्मा पुरुषः"।

सांख्याचार्योंने भी इस विषयमें खूब ऊहापोह करके मन आदिको स्थिर स्वरूप देनेका प्रयत्न किया है। मानसिक तत्त्वोंका यह पृथक्करण कैसे संमत होने लगा इस विषयमें हम थोड़ा अनुमान कर सकते हैं। ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति (सर्गोत्पत्ति) के क्रमकी कल्पना व्यक्तिके विकास क्रमको ध्यानमें रख कर ही की गई है। बहुत संभव है कि जो पिण्डमें है वही ब्रह्माण्डमें है, इस न्यायके अनुसार मनुष्य-पिण्ड (देह) में जो जो तत्त्व भौतिक या मानस-मालूम होते हैं वेही तत्त्व ब्रह्माण्डमें भी होने चाहिये, इस प्रकार तर्क किया गया हो। (Microcosm and Macrocosm) जन्मके बाद तुरन्त ही नवजात शिशु अपनी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंका उपयोग करने लगता है, लेकिन कर्मेन्द्रियोंका उपयोग अपेक्षाकृत अधिक करता है।

इसके बाद नेत्र, कर्ण, घ्राण आदिका उपयोग करना और उन इन्द्रियों द्वारा प्राप्त होनेवाले संस्कारोंकी विवेचना करना सीखता है। प्रथम माँ को और बादमें संबन्धियोंको पहचानने लगता है, लोरी या संगीतसे खुश होता है, तीव्र गन्धसे उद्विग्न होता है—इत्यादि। इस अवस्थामें मनका उपयोग शुरू हो

जाता है। दो तीन सालका होनेपर वह अपने भाई-बहनोंके साथ या मित्रोंके साथ "यह मेरा है यह तेरा है" कहकर अपने आपको महत्व देने लगता है। हमारे कहनेके अनुसार कोई काम करता है या मैं नहीं करता, ऐसा कह कर विरोध भी करने लगता है। इस अवस्थामें अहंकार (Self sense or Ego=Principle of Individuation) का कार्य प्रारम्भ हुआ ऐसा माना जाता है। आगे चलकर यौवन शुरू होनेके बाद बुद्धिके विकासका प्रारम्भ होता है और व्यक्ति सारा संसारका विचार करके अपना निर्णय (judgment) बनाने लगता है।

इन्द्रिय, मन, अहंकार, और बुद्धिके विकास क्रमका यह स्थूल चित्रण किया है। इसके अनुसार सृष्टिक्रममें भी पञ्च महाभूतोंकी उत्पत्तिके पूर्व मानसिकतत्त्वोंके समान तत्त्व होना चाहिये। ऐसी कल्पना होनेसे-प्रकृतसे महान् और अहंकार नामके दो तत्त्वोंका प्रादुर्भाव और अहंकारसे फिर ज्ञेय और ज्ञेयके साधन Objects of Thought and Apparatus of Thought or Psychic Apparatus) इस तरह दो प्रकारकी-(भौतिक सृष्टि और मानसिक सृष्टि)—श्रेणियाँ उत्पन्न होती हैं और इन दोनों श्रेणियोंके परस्पर मिल जानेसे इस दृश्य जगत्की उत्पत्ति होती है। अन्तःकरणका वर्णन सांख्य-में इस प्रकार दिया है—

"अंतःकरण, (मन, बुद्धि और अहंकार इस प्रकार) त्रिविध है ; और बाह्य करण (पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय इस

प्रकार) दश प्रकारका है और वह त्रिविध अन्तः करणका विषय रूप है। इनमें वाह्यकरण वर्तमान कालका ही ज्ञान कर सकते हैं, अन्तःकरण तीनों काल—भूत, भविष्य और वर्तमानका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। मनका गुण संकल्प करना है। वह ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनोंकी प्रवृत्तिका कारण है। इस प्रकार सांख्यमें मनका लक्षण दिया है*। सांख्य दर्शनका ही अधिकांशमें अनुसरण करनेवाला योग दर्शन पांच वृत्ति युक्त चित्त मानता है और उसीमें मन, बुद्धि और अहंकारका अन्तर्भाव करता है†। प्रमाण, विपर्यय (मिथ्या ज्ञान) विकल्प (कल्पना) निद्रा और स्मृति, ये उसकी पांच वृत्तियाँ किंवा धर्म माने गये हैं और इन पांच वृत्तियोंके कारणस्वरूप अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेशकी उत्पत्ति मानता है। साथ ही उसकी क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध ये पांच अवस्थाएँ (चित्त भूमयः= Conditions of mind) बताता है। वेदान्तने सांख्यके

---

* अन्तः करणं त्रिविधं दशधा वाह्यं त्रयस्य विषयाख्यम्।
साम्प्रत कालं बाह्यं त्रिकालमाभ्यन्तरं करणम् ॥ सा॰ का॰ ३३ ॥
उभयात्मकमत्रमनःसङ्कल्पकमिन्द्रियञ्च साधर्म्यात्।
गुण परिणाम विशेषान्नानात्वं बाह्य भेदाश्च ॥ २७ ॥

† चित शब्देनान्तः करणं बुद्धिमुपलक्षयति॥ यो॰ सूत्र-तत्त्वै॰ व्या॰ १-१
प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ॥ यो॰ सू॰ १-६
अविद्याऽस्मितारागद्वेषाऽभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः। यो॰ सू॰ २-३
क्षिप्तं मूढंविक्षिप्तम्एकाग्रम्निरुद्धमिति चित्त भूमयः। व्यासभाष्य १०-१०

अनुसार अन्तःकरणके दो या अधिक भेद माने हैं। अन्तःकरणका स्वरूप कैसा माना जाय इस विषयमें भगवान् शंकराचार्यका कोई आग्रह नहीं है।

"आत्माकी उपाधि स्वरूप वह अन्तः करण, मन, बुद्धि, विज्ञान और चित्त इन अनेक नामोंसे पुकारा जाता है। क्वचित् वृत्ति-विभागके कारण संशयादि वृत्ति-युक्त (अन्तःकरण का नाम) मन और निश्चयादि वृत्ति युक्त (अन्तःकरणका नाम) बुद्धि है यह भी कहा जाता है। इस प्रकारका अन्तःकरण है यह मानना चाहिये"*। योगवासिष्ठमें भगवान् वसिष्ठ-का भी यही मन्तव्य है। "नटकी भाँति मन अपने कार्योंके अनुसार भिन्न-भिन्न नामोंसे पहचाना जाता है, जिस प्रकार रंग भूमिमें नट वेष बदलनेपर राजा, भिक्षुक, गन्धर्व आदि विभिन्न नामोंसे वेषोंके अनुसार पुकारा जाता है।" तात्पर्य यह कि एक ही मनके, कर्मके अनुसार मन, बुद्धि, चित्त आदि विभिन्न नाम हैं†। वेदान्तसारमें अनुसन्धानात्मक, अन्तः करण वृत्ति रूप चित्तका, तथा अभिमानात्मक अहंकार वृत्तिका मन और बुद्धिमें

---

* तच्चात्मन उपाधिभूतमन्तः करणं मनो, बुद्धि विज्ञानं चित्तमिति चानेकधा तत्रतत्राभिलप्यते। क्वचिच्च वृत्तिविभागेन संशयादिवृत्तिकं मन इत्युच्यते, निश्चियादि वृत्तिकं बुद्धिरिति। तच्चैवं भूतमन्तः करण मवश्य-मस्तीत्यभ्युपगन्तव्यम् ॥ शां० भा० २-३-३२

† यथा गच्छति शैलूषो रूपाव्यक्तं तथैवहि।
मनोनामान्यनेकानि धत्ते कर्मान्तरं व्रजेत् ॥ यो० वा० ३-९६-४५

समावेश किया है, यद्यपि कुछ वेदान्ती अन्तः करणके चार भेद भी मानते हैं । कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्यने अपने "प्रमाण मीमांसा" नामक ग्रन्थमें, मनकी व्याख्या करते हुए "सर्वार्थ ग्रहणं मनः" कहकर उसका कार्य बताया है। मन, चित्त आदि शब्द आर्हत (जैन) दर्शनमें प्रायः पर्याय रूपमें प्रयुक्त किये गये हैं*। इसी प्रकार बौद्ध दर्शनमें एक संप्रदाय है जो मन, चित्त और विज्ञानका भिन्न-भिन्न अर्थोंमें प्रयोग करता है। दूसरी ओर वसुबन्धु† इन तीनोंमें किसी प्रकारका भेद नहीं मानते। बौद्ध दर्शन क्षणिक वादी होनेसे उसमें मन एवं बाह्य-दृश्य पदार्थ दोनोंको परिवर्तनशील माना है। आत्मवादी दर्शनोंके आत्मा और मनके स्थानमें उसमें विज्ञान धातु माना जाता है जो प्रति-क्षण बदलता रहता है।

इन सब मतोंके अवलोकनके बाद अब हम पुनः आयुर्वेदके मतकी ओर आते हैं। चरक भगवानने भी सांख्य दर्शनके अनु-सार अन्तः करणके मन, बुद्धि और अहंकार इस भेदोंको स्वीकार किया है और चित्तको मनका पर्याय माना है, यह हम देख चुके

---

* बुद्धिर्नाम निश्चयात्मिकान्तःकरण वृत्तिः। मनोनाम संकल्प विकल्पात्मिकान्तः करण वृत्तिः। अनयोरेव चित्ताहंकारयोरन्तर्भावः ॥ वेदान्तसार १३

गंगा टीका—यद्यपि "मनो बुद्धि रहंकारश्चित्तं करण मान्तरम्। सशयो निश्चयो गर्वः स्मरणं विषया इमे ॥ इत्यनेन चतुर्विध मन्तः करण मुक्तम् ॥

† देखो—वसुबन्धु विरचित—अभिधर्म कोष।

हैं। मनका लक्षण न्याय वैशेषिकके अनुसार दिया है; तथापि अर्थ ग्रहण किंवा प्रतीति-व्यापार (Perception) में मन एवं बुद्धिका, और शारीर स्थानमें गर्भके आत्मज भावोंकी गणनाके समय, और पुरुष और लोककी तुलनाके समय, अहंकारका भी उल्लेख किया है[१९]। भेलने अर्थ ग्रहण—अर्थात् विषयोपलब्धिके लिये मन, चित्त और बुद्धिको स्वीकार किया है और केवल एक स्थानमें अहंकारका निर्देश किया है[२०]। यहाँ विद्यार्थियोंका ध्यान इस बातकी ओर खेंचना आवश्यक है कि मनको भौतिक अथवा आहंकारिक कहनेसे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि ये दोनों विशेषण न्यूनाधिक मात्रामें उसकी जड़ताके ही द्योतक हैं। जैसे न्यायवैशेषिकके पञ्चमहाभूत जड़ हैं वैसे ही सांख्य वादियोंकी प्रकृति भी जड़ है। प्राय: सभी दर्शनोंने मनको जड़ (Material) माना है और उसके व्यापार किसीके मतमें पुरुष के कारण और किसीके मतमें आत्माके कारण माने गये हैं। योग दर्शनमें चित्तका अर्थ तो बहुत विशाल दिया है किन्तु उसकी उत्पत्ति प्रकृतिसे ही मानी है। अर्थात् विभिन्न मतोंमें यह भेद कुछ अंश तक ही है सम्पूर्ण जाति (Anality) विषयक नहीं है। सिर्फ बौद्धों और चार्वाकोंके मत सबसे निराले हैं। मनके परिमाण (Dimension) के विषयमें भी मतभेद है। न्याय वैशेषिक और पूर्व मीमांसक (देखो-प्रकरण पत्रिका पृ० १५१) मनको परमाणु या अणुरूप, नित्य और कारण हीन मानते हैं। सांख्य और वेदान्त उसको परमाणु तो नहीं परन्तु अणुरूप मानते

हैं ; और उस जन्य (सकारण किसीसे उत्पन्न होनेवाला) मान कर उसकी उत्पत्ति प्राकृतिक अहंकार अथवा अविद्यासे बताते हैं। आयुर्वेदने उसको अणुरूप और जन्य मानकर उसकी उत्पत्ति भूत समुदायसे मानी है। यहांपर अणुका अर्थ क्या होना चाहिये ? मनको सभीने अतीन्द्रिय कहा है, इसलिये उसके अणुत्व परिमाणका निर्णय कैसे किया जा सकता है ? मेरा मत है कि अणु शब्दका वाच्यार्थ नहीं, लक्ष्यार्थ लेना चाहिये। मन एक समयमें एक ही ज्ञानको ग्रहण करता है यह हम देखचुके हैं यह और सबके अनुभवकी बात भी है। लिखते समय मेरे चारों ओर क्या हो रहा है—घड़ी चलती है या नहीं—इसका मुझे ज्ञान नहीं होता। इसका केवल यही अर्थ हो सकता है कि मनका क्रिया प्रदेश एक समयमें मर्यादित रहता है। इसको आधुनिक मानस शास्त्रज्ञोंने "चेतना प्रदेश" (Area of consciousness) नाम दिया है। इसका अर्थ यह नहीं कि उसकी कोई भौगोलिक मर्यादा है, किन्तु चेतनाका व्यापार एक समयमें किसी एक क्षेत्र विशेषमें ही होता है यह बात निश्चित है, इसमें विवाद नहीं है। इसलिये मैं भी अणुत्वका अर्थ यही करता हूं। पदार्थ विज्ञान (Physics) की दृष्टिसे मनका परिमाण (नाप) नहीं किया जा सकता। हम मनका यथार्थ रूपमें वर्णन नहीं कर सकते यह भाषाकी त्रुटि है।

मनका स्थान कहां है ? यह प्रश्न अतिशय विवादास्पद हो गया है। आयुर्वेदके आचार्य चरक और सुश्रुत-हृदयको चेतना

का स्थान कहकर उसीको मनका स्थान मानते हैं। भेल-मनका स्थान मस्तिष्कमें और चिन्ताका स्थान हृदयमें मानते हैं[२१]। प्राचीन समयमें भी इस प्रश्नकी बहुत चर्चा होती थी। उपनिषद्, गीता और अन्य प्रमाण भूत ग्रन्थोंमें इस प्रकारके प्रमाण पर्याप्त मात्रामें मिल जाते हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि आयुर्वेद साहित्यमें छातीके भीतर स्थित हृदयको ही आत्माका मानस तत्वोंका स्थान माना है*। उपनिषदने कुछ स्थलोंपर आत्माको परिमाण (भौतिक गुण) युक्त 'अंगुष्ठ मात्र' 'व्रीहि, यव या सर्षपके समान' परिमाणका बताया है जो केवल रूपक है। अन्य दर्शन-न्याय वैशेषिक, बौद्ध आदिने मनको हृदय प्रदेशवर्ती माना है। सांख्य आदि जो सूक्ष्म शरीरको मानते हैं वे स्थूलशरीरको सूक्ष्मशरीरका स्थान मानते हैं इसलिये संपूर्ण स्थूलशरीरको मनका स्थान मानते हैं। लेकिन इनसे विरुद्ध मतवाले योगियोंका एक दल था जो मनका स्थान मस्तिष्कमें मानता था†। आयुर्वेदने प्रत्यक्ष प्रमाणसे हृदय पर आघात लगने पर होने वाले परिमाणोंसे सिद्ध किया है कि मनका स्थान हृदय है; यद्यपि "जहाँ प्राणियोंके प्राण और सब इन्द्रियाँ आश्रित हैं" उस उत्तमांगका महत्व भी उन्होंने बताया है। चरकचतुरानन पंडित चक्रपाणिने अपनी टीकामें एक पूर्व पक्षभी उपस्थित किया है कि आत्मा, विज्ञान एवं मन और

---

* देखो—सुश्रुत संहिता—डॉ० घाणेकर रचित आयुर्वेद-दीपिका पृ० ११६-२९

† एतत्पद्मान्तराले निवसतिच मनः सूक्ष्मरूपं प्रसिद्धम्। षट्चक्र निरूपण-३२

हृदय के बीच आधाराधेय भाव माननेमें आपत्ति होती है, क्योंकि आत्मा सर्व व्यापक होनेसे उसका आधाराधेय भाव माननेमें अनौचित्य प्रत्यक्ष ही है। परन्तु स्वयं ही इसका उत्तर पक्ष उपस्थित करके निराकरण करते हैं कि संसारी आत्मा* भोगायतन शरीरके हृदय प्रदेशमें रह कर ही सुख दुःखका ज्ञान करता है यह अनुभव सिद्ध है। इस अनुभवके उदाहरणके रूपमें उन्होंने अध्ययन, सुख, दुख चिन्ता आदिसे हृदय पर होने वाले प्रत्येकके अनुभव सिद्ध प्रभावों का उल्लेख किया है।[२२] परन्तु शरीरके अतीन्द्रिय भावोंके स्रोतों का वर्णन करते हुए केश और नखोंको छोड़कर संपूर्ण शरीरको मनका स्थान बताया है।[२३] इस आपत्तिका भी परिहार इस प्रकार किया जा सकता है कि इन अतीन्द्रिय भावोंकी क्रिया अधिकांशमें देखी जाती है। परन्तु भेलका मत स्वतन्त्र है। अब रहा योगियोंका मत योगियों द्वारा वताये गये नाड़ियों किंवा नाड़ी चक्रोंके वर्णनकी और उनके वताये मनके स्थानकी आयुर्वेदज्ञोंने उपेक्षा की है। उनको अपने मन्तव्योंमें दृढ़ विश्वास था। लेकिन आजकल इस विषयकी इतनी अधिक चर्चा क्यों हो रही है? प्राचीन संहिताओंके टीकाकारोंको इन वचनोंमें कोई भी सन्देह नहीं हुआ था। इसका उत्तर सिर्फ यही है कि हमलोग आजकल विज्ञानसे अतिशय प्रभावित युगमेंसे गुजर रहे हैं और

---

* 'यह प्रसंग—संसारी आत्मा (राशिपुरुष) का है वही हृदयमें रहता है। आत्मा तो विभु है इसलिये उसके आश्रयाश्रयि भावकी यहाँ चर्चा ही नहीं है। यह कहकर चक्र पाणिने अपने मतको और भी स्पष्ट किया है।

आधुनिक शरीर व्यापार शास्त्रमें मस्तिष्क और हृदयके व्यापारों का जो वर्णन दिया है वही इस विवादका मूल है।

एक पक्ष विवाद ग्रस्त वचनोंका स्वाभाविक रूपसे निकलने वाला अर्थ लेता है, और दूसरा पक्ष उन्हींसे नये मत निकालनेका प्रयत्न करता है*। अस्तु।

आत्मा किंवा मनका स्थान शरीरमें कहां है इस विषयमें पश्चिमके तत्त्वज्ञानके इतिहासमें भी अनेक विचार पाये जाते हैं। प्रसिद्ध ग्रीक तत्ववेत्ता एरिस्टोटल (Aristotle) आत्माका स्थान हृदयमें मानता था। प्राचीन ग्रीक चिकित्सक गेलन (Galen) (Brain) को और एक दूसरे तत्त्ववेत्ता डेस्कार्टीस (Descartes) तृतीय दृक् कंदिका (Pineal Gland) को आत्माका स्थान मानता था। इस मतभेदको देखते हुए हृदयको आत्मा किंवा मनका स्थान प्राचीन आचार्योंने माना हो तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वैसे तो चेतना सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होती है यह सब कोई जानते हैं। तथापि हृदयकी धड़कन सजीव प्राणी में सबसे महत्वका ध्यान देने लायक चिह्न है। विभिन्न प्रकारके भावोंका भी हृदय पर शीघ्र प्रभाव पड़ता है, इसलिये प्राचीन आचार्य भी इस अनुमान पर पहुंचे होंगे। साथ ही चरकने मस्तिष्ककी उपयोगिता भी बतलाई है[२४]। मस्तिष्कको आघात पहुंचनेपर सब इन्द्रियोंको भी अधिक हानि होती है, इस बातको

* महामहोपाध्याय क० गणनाथ सेन विरचित प्रत्यक्ष शारीर तृतीय भाग अ० १

साब आयुर्वेदाचार्योंने स्वीकार किया है। विशेष करके सुश्रुत संहितामें ऊर्ध्व जत्रुगत मर्मोंका वर्णन देते हुए, अरसग्राहिता, गन्धाज्ञान, बाधिर्य, दृष्ट्युपघात, उन्माद, चित्तनाश, सद्योमरण आदिके उल्लेख हैं जो खोपड़ीके अभ्यन्तरमें स्थिति मस्तिष्क (Brain) के रक्षण की आवश्यकताको द्योतित करते हैं[२५]।

आधुनिक विचारकोंने स्पष्ट रूपसे मस्तिष्कको विशेष महत्व दिया है किन्तु यह महत्त्व, मनके स्थानके रूपमें नहीं किन्तु मानके निजी व्यापारोंके आविष्करणके साधनके रूपमें दिया है। मनका स्थान तो सम्पूर्ण शरीर है; उसको किसी एक स्थानमें मर्यादित करना, यह उसकी अपार शक्तिकी अवहेलना करना है। आज कल सेफेलोग्राफ (Cephalograph) नामक यन्त्रकी सहायतासे मस्तिष्कमें प्रवर्तमान व्यापारोंका कुछ-कुछ पता लगाया जा सकता है। यह ठीक है कि इससे यह मालूम नहीं होता कि किस प्रकारके विचार हो रहे हैं फिर भी विचारधारा चक्र चालू है या नहीं अथवा किस बेगसे उसकी गति हो रही है यह बात मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाले विद्युद्वेगोंकी सहायतासे समझ सकते हैं। शरीर व्यापार शास्त्रियोंमें अधिकांश मस्तिष्कके व्यापारोंके समूह को ही मन मानते हैं। एक अन्य पक्ष मस्तिष्कको केवल मनका साधन मानता है जो साथ ही यह भी मानता है कि मस्तिष्कको कार्यक्षम बनाये रखनेके लिये स्वच्छ रुधिर और प्राणवायु (Oxygen) की आवश्यकता है*।

* देखो—Halli burton—Hand Book of physiology Chaptir L I V (Loos of Conseiousness)

मनको जड़ मान लेने पर उसके व्यापार जो जड़ वस्तुओंके व्यापारोंसे भिन्न होते हैं उनकी व्याख्या करना कठिन् हो जाता है। यह व्याख्या आयुर्वेदके मतमें इस प्रकार है "चूंकि आत्मा चेतनायुक्त है इसलिये कर्ता कहा जाता है और मन जड़ है इसलिये क्रिया शील होनेपर भी कर्ता नहीं कहा जाता[२६]।" सांख्यवादी भी पुरुषके अस्तित्वके बिना प्रकृतिके व्यापारोंको असंभव मानते हैं। इसलिये हमको आत्माधिष्ठित मनके व्यापारोंका ही अध्ययन करना होगा।

आत्माके सहयोगके विना मन कार्य नहीं कर सकता और मनकी सहायताके बिना इन्द्रियाँ भी अपना कार्य नहीं कर सकतीं इसलिये मनको[२७] ज्ञानेन्द्रियोंका उद्भासक और कर्मेन्द्रियोंका प्रयोजक माना जाता है। अर्थात् इन्द्रियोंके विना मनके व्यापार हो सकते हैं परन्तु मनके विना इन्द्रियोंके व्यापार नहीं हो सकते; इसी कारण उसको इन्द्रियोंकी चेष्टाका कारण भूत (चेष्टा प्रत्यय भूतमिन्द्रियाणाम्) कहा गया है। इसी प्रकार आत्माके विना मनका अस्तित्व किंवा क्रिया असंभव है; आत्माको भी बाह्यजगत (Opjective world) का ज्ञान प्राप्त करनेके लिये मन एवं इन्द्रियोंकी सहायताकी जरूरत होती है। "आत्मा (Subject) 'ज्ञ' है क्योंकि करणोंकी सहायतासे उसको ज्ञान प्राप्त होता है यदि ये करण निर्मल-कार्यक्षम न हों अथवा उनका संयोग न होता हो तो उसको ज्ञान नहीं हो सकता। उदाहरण—जैसे दर्पणमें देखने पर भी अगर वह मैला हो तो कुछ नहीं दिखाई देता; अथवा

मालिन जलमें कुछ नहीं दिखाई देता, उसी प्रकार जब चित्त मलिन हो या नष्ट हुआ हो तब आत्माको ज्ञान नहीं होता। टीकाकारने और भी स्पष्ट किया है कि अगर कभी दिखाई देता है तो भी उसके ठीक-ठीक स्वरूपका ज्ञान ही नहीं होता, अर्थात् वस्तुका यथार्थ रूपमें ज्ञान नहीं होता है। यहाँ भगवान चरक ने तो चित्तका उदाहरण दिया है किन्तु वह मन और सभी इन्द्रियोंमें भी घट सकता है क्योंकि मन और ज्ञानेन्द्रियाँ आत्माकी ज्ञान-प्राप्तिके साधन हैं[२८]। इस विवरणका यह आशय नहीं कि "आत्मा" मन और इन्द्रियोंका समकक्ष है। क्योंकि वस्तु स्थिति ठीक इससे विपरीत है। "आत्मा निर्विकार और सबसे श्रेष्ठ है, वह नित्य है और मन शब्दस्पर्श, आदि भूतोंके गुण और इन्द्रियों द्वारा अपने चैतन्यको व्यक्त करता है। फिर भी वह स्वयं द्रष्टाही है और सब क्रियाओंको–मानसिक एवं शारीरिक-व्यापारोंको देखता ही है[२९] अर्थात् जीवको-आत्माको- अपने चैतन्यको व्यक्त करनेके लिये इन सबकी सहायता आवश्यक है। अर्थात् उसकी शक्तिकी भी मर्यादा होती है। स्मरण रहे, यह चर्चा सत्त्व और शरीरके साथ संयुक्त आत्मा (Empirical self) के विषयमें है न कि निर्विशेष भूतात्मा (Supreme self) के विषयमें। शारीर स्थानमें भगवान चरकने गर्भावक्रान्तिको समझते हुए जीव शब्दका प्रयोग करके इस बात को स्पष्ट किया है[३०]।

एक ही पुरुषमें मन एक होनेपर भी अनेक हों ऐसा क्यों मालूम होता है? इस प्रश्नका उत्तर देते हुए भगवान चरक कहते हैं

"अनेक प्रकारके सच्चे-झूठे विचार करनेसे रूप, रस, गन्ध आदि विविध इन्द्रियार्थोंका ग्रहण करनेसे भले बुरे, उपयोगी-अनुपयोगी संकल्प करनेसे और क्षणमें रजोगुण युक्त, क्षणमें तमोगुणयुक्त और फिर सत्त्वगुण युक्त मालूम होनेके कारण एकही पुरुष में अनेक मन हों ऐसा मालूम होता है, तथापि मन अनेक नहीं हैं, किन्तु एक ही है। एक ही मन अनेक विषयोंको एक समयमें ग्रहण नहीं कर सकता और इसीलिये सब इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति एक समय में नहीं हो सकती; परन्तु जब एक ही मनुष्यका मन भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न गुणोंसे युक्त देखा जाता है तो फिर किसी एक पुरुषको सात्त्विक या राजस मनवाला कहनेका क्या अर्थ है? इसका उत्तर देते हुए चरक मुनि कहते हैं कि "बार-बार जिस-जिस गुणवाला मन किसी पुरुषमें देखा जाय उस-उस गुणकी मात्रा उस मनमें अधिक होनेके कारण उस गुणाधिक्यके अनुसार मनको सात्विक, राजस या तामस जानना चाहिये ऐसा मुनियोंका उपदेश है[३१]" बार-बार बदलनेवाली मानसिक दशाओंका यह स्पष्टीकरण है। शरीरकी अपेक्षा मनकी बदलती हुई दशाओंको ध्यानमें रख कर ही उसको चंचल माना गया है। अणुत्व और एकत्वके समान ही चलत्व भी मनका महत्व पूर्ण धर्म है। मन त्रिगुणात्मक होनेसे उसमें स्थित तीनों गुण उसपर प्रभुत्व प्राप्त करनेका बार-बार प्रयास करते हैं और पुरुषके आचरणसे उसके मनमें कौनसा गुण किस समय अधिक प्रबल हो रहा है इसका हम अनुमान कर सकते

हैं* । फिर भी वह इतर ज्ञानेन्द्रियां एवं कर्मेन्द्रियोंसे श्रेष्ठ है और परमात्माकी विभूति-स्वरूप है ऐसा कहनेमें अतिशयोक्ति नहीं है, क्योंकि वह अन्य इन्द्रियोंको प्रेरणा देता है और अन्य ज्ञानेन्द्रियाँ अपने नियत अर्थको ही ग्रहण करती हैं परन्तु मन सब अर्थोंको ग्रहण कर सकता है; इस क्रियामें उसकी चंचलता उपयोगी सिद्ध होती है† । भगवान् सुश्रुतने [३२] चन्द्रमाको मनका देवता कहा है । यह विचार उपनिषद् के समयसे ही प्रचलित है‡ । मनुष्यका मन चन्द्रको देखकर अत्यन्त अह्लादका अनुभव करता है और अंधकारमें घबराता है किंवा डरता है, इस सामान्य अनुभवसे इस मान्यताका अभीतक प्रचार हो रहा है । इसी प्रकारका विचार (आहार) अन्न और मनके सम्बन्धके विषयमें है जो अनुभव सिद्ध है । आधुनिक विज्ञानवादी मन और शरीर के परस्पर प्रभावको स्वीकार करते हैं । आहारका शरीरपर प्रभाव होता है यह बात प्रयोगोंसे सिद्ध करके बताते हैं परन्तु आहारका मनुष्यके मनपर प्रभाव होता है यह विचार उनके लिये नवीन है । भारतवर्षमें तो इस प्रश्नका कोई विवाद रहा ही नहीं और गीताने

---

* एवं त्रिगुणत्वाच्चित्तस्य, चलं च गुणवृत्तमिति प्रतिक्षणं परिणामोऽनुमीयते (योगसूत्र-तत्त्व वैशारदी० पा० ३-१५)

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याऽहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ गीता ६ ।३४ ।

† इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना । गीता १०-२२

‡ चन्द्रमा मनोभूत्वा हृदयं प्राविशत् । ऐतरेयोपनिषद्-२-४

हजारों वर्षोंसे प्रचलित इस विचार-परम्पराका समर्थन किया है; इतना ही नहीं अपितु अनेक मोक्षार्थी लोग भी सात्विक मनोवृत्तिको बनाये रखनेके लिये आहार विषयक इन नियमोंका अपने जीवनमें दृढ़तासे पालन करते हैं। योगकी प्रक्रियामें इन नियमोंका पालन करना होता है* ।

---

* अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति, यो मध्यम स्तन्मांसम् , योऽणिष्ठस्तन्मनः ॥ छान्दोग्योपनिषद् ५–१

आयुःसत्त्व बलारोग्य सुखप्रीति विवर्धनाः ।
रस्याः स्निऽधाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विक प्रियाः ॥
कट्वम्ललवणात्युष्ण तीक्ष्णरूक्ष विदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥
यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामस-प्रियम् ॥

भगवद्गीता—अ० १७-८-१०

तृतीय अध्याय

प्रमाण-संग्रह

(१) अस्मिंस्तु शास्त्रे पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुष इत्युच्यते। सु० सू० १

(२) त एते मनःशरीराधिष्ठानाः॥ सु० सू० १

(३) शरीरेन्द्रिय सत्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्।
नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्यायैरायुरुच्यते॥ चरक सू० १-४२
सत्त्वमात्मा शरीरं च त्रयमेतत् त्रिदण्डवत्।
लोकस्तिष्ठति संयोगात्तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ च० सू० १-४५

(४) सेन्द्रियं चेतनं द्रव्यं निरिन्द्रियमचेतनम्। च० सू० १-४७

इदमेव चात्मनश्चेतनत्वं, यदिन्द्रियादिसंयोगे सति ज्ञानशालित्वम्। ××××। अत्र सेन्द्रियत्वेन वृक्षादीनामपि चेतनत्वं बोद्धव्यम्। चरक-चक्रपाणि

(५) खादयश्चेतनाषष्ठा धातवः पुरुषः स्मृतः॥ च० शा० १-१४

षड्धातुरेवायं पुरुषो भवति। धातवः पुनः पञ्चभूतानि ब्रह्मचाव्यक्तम्। भे० पृ० ९७

शरीरेन्द्रियात्म सत्त्वसमुदयं पुरुषमाचक्षते। आत्मानमेके।
का० शा० पृ० ४५

पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुषः। सु० सू० १

(६) प्राणापानौ निमेषाद्या जीवनं मनसो गतिः।
इन्द्रियान्तर संचारः प्रेरणं धारणं च यत्॥ ६८॥

देशान्तर गतिः स्वप्ने पञ्चत्त्व ग्रहणं तथा ।
दृष्टस्य दक्षिणेनाक्ष्णा सव्येनावगमस्तथा ॥ ६९ ॥
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं प्रयत्नश्चेतना धृतिः ।
बुद्धिःस्मृतिरहंकारो लिङ्गानि परमात्मनः ॥ ७० ॥
यस्मात्समुपलभ्यन्ते लिङ्गान्येतानि जीवनः ।
न मृतस्यात्म लिङ्गानि तस्मादाहुर्महर्षयः ॥ ७१ ॥

च० शा० १

और देखो— सुश्रुत० शा० १

तस्य सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नः प्राणापानाबुन्मेषनिमेषौ बुद्धिर्मनः सङ्कल्पोविचारणास्मृतिर्विज्ञानमध्यवसायो विषयोपलब्धिश्च गुणाः ॥ कर्म पुरुषके ये सोलह गुण कला भी कहे जाते हैं ।

(७) अस्य लिङ्गानि । चेतनाहङ्कारप्राणापानोन्मेषनिमेष सुखदुःखेच्छा द्वेष स्मृति धृति बुद्धयः ; तदभावे मृताख्या ॥

का० शा० पृ० ४५

(८) नित्योष्मणां शीतभावः । तस्यचेदुच्छ्वासोऽतिदीर्घो ह्रस्वो वा स्यात् परासुरिति विद्यात् । तस्य चेच्चक्षुषी प्रकृतिहीने विकृति युक्ते । × × × × । सततोन्मिषिते । निमेषोन्मेषातिवृते ।

च० इ० ३

तथा देखो—भेल—तदा तद्भवति निर्वातं, निरुष्म, प्रेतो मृत इति । पृ० ७०

(९) मनः (मन्यते बुध्यतेऽनेनेति) मन्+सर्व धातुभ्योऽसुन् । उणादि ४-१८८ इति असुन् । शब्दकल्पद्रुम

चित्तम्, चेतः, हृदयम्, हृत्, मानसम् । अमरकोश

अतीन्द्रियं पुनर्मनः सत्त्वसंज्ञकं चेतदित्याहुरेके ।

च० सू० अ० ८-४

(१०) द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाः स्वलक्षणैः श्लोकस्थाने पूर्वमुक्ताः । च० वि० अ० ८

खादीन्यात्मा मनः कालो दिशश्च द्रव्यसंग्रहः ।

चरक० सू० १-४७

और देखो—गुण वृद्ध्याऽवस्थितानि महाभूतानि दिगात्मामनः कालश्च द्रव्याणि । का० स० पृ० ४६

(११) शरीरावयवास्तु परमाणुभेदेनापरिसंख्येयाभवन्ति, अतिबहुल्याद तिसौक्ष्म्याद तीन्द्रियत्वाच्च ।। तेषां संयोगविभागे परमाणूनां कारणं वायुः कर्म स्वभावश्च । च० शा० ७-१५-१६

(१२) चतुर्विंशतिरित्येष राशिः पुरुषसंज्ञकः ।

चरक० शा० १-३३

(१३) जायते बुद्धिरव्यक्ताद् बुद्ध्याऽहमिति-मन्यते ।
परं खादीन्यहङ्कारादुत्पद्यन्ते यथाक्रमम् ॥

च० शा० ६-६४

खादीनि बुद्धिरव्यक्तमहङ्कारस्तथाष्टमः ।
भूतप्रकृतिरुद्दिष्टा विकाराश्चैव षोडशः ॥

च० शा० १-६१

बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्चकर्मेन्द्रियाणि च ।
समनस्काश्च पञ्चार्था विकारा इति संज्ञिताः ॥ च० शा० १-६२

इति क्षेत्रं समुदिष्टं सर्वमव्यक्त वर्जितम् ।

अव्यक्तमस्य क्षेत्रस्य क्षेत्रज्ञमृषयो विदुः ॥ च० शा० १-६३

(१४) समुदयकारणंतु ब्रूमः—अव्यक्तान्महान्, महतोऽहङ्कारः, अहंकारात्खादीनि। ता अष्टौ भूत प्रकृतयः। चक्षुःश्रोत्रंघ्राणं रसनं स्पर्शनमिति पञ्चेन्द्रियाणि। तान्येव बुद्धीन्द्रियाणि; हस्तौ पादौजिह्वगुदउपस्थ इति पञ्च कर्मेन्द्रियाणि। शब्दस्पर्शरूप रस गन्धाः पञ्चेन्द्रियार्थाः; अतीन्द्रियंतु मनः, इत्येते षोडश विकाराः। महदादि सर्वं क्षेत्रमव्यक्तमाचक्षते। क्षेत्रज्ञं तु शाश्वतमचिन्त्यमात्मानम्। का० शा० पृ ४५

(१५) तस्मादव्यक्तान्महानुत्पद्यते तल्लिङ्गाएव; तल्लिङ्गाच्चमहतस्तल्लक्षण एवाहंकार उत्पद्यते, सतु त्रिविधोवैकारिकस्तैजसो भूतादिरिति; तत्र वैकारिकादहंकारात्-तैजस सहायात् तल्लक्षणान्येवैकादशेन्द्रियाण्युत्पद्यन्ते, तद्यथा—श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक् हस्तोपस्थपायुपादमनांसीति। तत्र पूर्वाणि पंच बुद्धीन्द्रियाणि, इतराणि पंच कर्मेन्द्रियाणि, उभयात्मकं मनः; भूतादेरपि तैजस सहायात् तल्लक्षणान्येव पंचतन्मात्राण्युत्पद्यन्ते; तद्यथा शब्द तन्मात्रम्, स्पर्श तन्मात्रम्, रूपतन्मात्रम्, रस तन्मात्रम्, गन्ध तन्मात्रमिति; तेषां विशेषाः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः; तेभ्यो भूतानि व्योमानिलानल जलोर्व्यः। एषातत्वचतुर्विशति र्व्याख्याता। सु० शा० १-४

(१६) लक्षणं मनसो ज्ञानस्याभावोभाव एवच।

सतिह्यात्मेन्द्रियार्थानां सन्निकर्षे न वर्तते ॥ १६

वैवृत्यान्मनसो ज्ञानं सान्निध्यात्तच्चवर्तते।

अणुत्वमथचैकत्वं द्वौगुणौ मनसः स्मृतौ ॥ १७ च० शा० १

(१७) [स्वार्थेन्द्रियार्थसङ्कल्पव्यभिचरणाच्चानेकमेकस्मिन्पुरुषे सत्त्वं रजस्तमः सत्वगुणयोगाच्च, नच अनेकत्वं नह्येकं ह्येककालमनेकेषु प्रवर्तते तस्मान्नैककाला सर्वेन्द्रियप्रवृत्तिः॥ च० सू० ८-२०

(१८) ज्ञानस्याभावोभावश्च मनसो लक्षणं, तस्यैकत्वमणुत्वं च द्वौगुणौ प्रयत्नज्ञानायौगपद्यादेकं, पृथक् (व), समनस्कमिन्द्रियमर्थग्रहण समर्थं भवति। का० शा० पृ-४५

(१९) यस्त्विन्द्रो लोके पुरुषेऽहङ्कारः सः। च० शा० ५-६

(२०) बुद्धयवस्थाहङ्कारेणवाभिमतम्। भे० पृ० ९१

(२१) हृदयं चेतनास्थानमुक्तं सुश्रुत देहिनाम्।

तमोऽभिभूते तस्मिस्तु निद्रा विशति देहिनाम् ॥ सु०श०४-३४

शिरस्ताल्वन्तर गतं सर्वेन्द्रिय परंमनः।

तत्रस्थं तद्धि विषया-निन्द्रियाणां रसादिकान् ॥

समीपस्थान्विजानाति त्रीन् भावांश्च नियच्छति।

तन्मनः प्रभवं चापि सर्वेन्द्रियमयं बलम् ॥ भेल० पृ० १४९

(२२) तस्योपघातान्मूर्च्छायं भेदान्मरणमृच्छति। च० सू० ३०-५

यद्यपि च आत्मविज्ञानमनसां हृदयाश्रितत्वमाधाराधेयभावादपि कष्ट-सृष्ट्या वक्तुं पार्यते ; तथापि सर्वव्यापकत्वान्नोपादेयमाधाराधेयत्वम्। आत्मा यश्च संसारी भोगायतनत्वेनाभि प्रेतः। स च हृदयप्रदेश एवं सुख-दुःखादुपपद्यते इत्यनुभवसिद्धम्। XXX एवं ज्ञान सुखदुःखानि च हृदयस्थान्येव लक्ष्यन्ते तथा चिति चिन्तनात्

तथा दुःखावेशत्वाद्धृदयमेव पीड्यते, नान्यदङ्गम्। अलमात्मना व्यापकेनाश्रयाश्रयिभावेनव्युत्पादितेन ; यश्चात्मा संसारी हृदयाश्रितोभवति तस्यैव हृदयनाशान्नाश इति भावः ॥ चक्रपाणिः

(२३) तद्वदतीन्द्रियाणां पुनः सत्त्वादीनां केवलं चेतनावच्छरीरमयन भूतमधिष्ठान भूतं च च० वि० अ० ५-७

(२४) शिरसि इन्द्रियाणि, इन्द्रियप्राणबहानि च स्रोतांसि सूर्यमिव गभस्तयः संश्रितानि ॥ च० सि० ९-४

शिर आश्रयत्वं यथोक्तस्रोतसां तदुपघातेन, विशिष्टोपघात दर्शनादुन्नीयते ॥ चक्रपाणिः

(२५) तत्र मूकता स्वरवैकृतमरसग्राहिता। ×× तत्र बाधिर्यम्। ×× तत्र गन्धाज्ञानम्। ×× तत्रान्ध्यं दृष्ट्युपधातोवा। ×× तत्रोन्माद भयचित्त नाशैर्मरणम्। ×× तत्रापि सद्योमरणम्।

सु० शा० अ० ६

(२६) चेतनावान्यतश्चात्मा ततः कर्ता निरूच्यते।
अचेतनत्वाच्चमनः क्रियावदपिनोच्यते ॥ च० शा० १-७४

(२७) मनः पुरः सराणि च इन्द्रियाणि अर्थ ग्रहण समर्थानि भवन्ति। च० सू० अ० ८-७

(२८) आत्माज्ञः करणैर्योगादज्ञानं त्वस्य प्रवर्तते।
करणानामवैमल्यादयोगोद्वा न वर्तते ॥५२॥
पश्यतोऽपि यथाऽदर्शे संक्लिष्टे नास्तिदर्शनम्।
तत्त्वं जलेवा कलुषे चेतस्युपहते तथा ॥ ५३॥ च० शा० १

दर्शनं भवेदपि—अयथार्थग्राहितया न तत्त्वरूपं भवतीत्यर्थः।

चेतसि—इत्युपलक्षणम्। तेन चक्षुरादौ—अपि उपहते—इति ज्ञेयम्।

(२९) निर्विकारः स्त्वात्मा सत्त्व भूत गुणेन्द्रियैः।
चैतन्ये कारणं नित्यो द्रष्टा पश्यति हि क्रियाः। च० सू० १-५४

(३०) आत्मजश्चायं गर्भो गर्भात्माह्यन्तरात्मा यः, तं जीव इत्याचक्षते।

(३१) स्वार्थेन्द्रियार्थसङ्कल्पव्यभिचरणाच्चानेकमेकस्मिन्पुरुषे सत्त्वंरजस्तमःसत्वगुणयोगाच्च ; न चानेकत्वम् ; नह्येकं ह्येककालमनेकेषु प्रवर्तते, तस्मान्नैक काला सर्वेन्द्रिय प्रवृत्तिः।

च० सू० ८-५

यद्गुणं चाभीक्ष्णं पुरुषमनुवर्तते सत्त्वं, तत्सत्त्वमेवोपदिशन्ति मुनयो गुणबाहुल्यानुशयात्। च० सू० ८-६

नाना विधानि खलु सत्वानि, तान्येक पुरुषे भवन्ति, नच भवन्त्येक कालम्, एकं तु प्रायो वृत्त्याह ॥ च० शा० ३-१९

(३२) मनसश्चन्द्रमाः। सुश्रुत-शा० १-७

इति क्षेत्रं समुदिष्टं सर्वमव्यक्त वर्जितम् ।
अव्यक्तमस्य क्षेत्रस्य क्षेत्रज्ञमृषयो विदुः ॥ च० शा० १-६३

(१४) समुदयकारणंतु ब्रूमः—अव्यक्तान्महान्, महतोऽहङ्कारः, अहंकारात्खादीनि। ता अष्टौ भूत प्रकृतयः। चक्षुःश्रोत्रंघ्राणं रसनं स्पर्शनमिति पञ्चेन्द्रियाणि। तान्येव बुद्धीन्द्रियाणि; हस्तौ पादौजिह्वगुदउपस्थ इति पञ्च कर्मेन्द्रियाणि। शब्दस्पर्शरूप रस गन्धाः पञ्चेन्द्रियार्थाः; अतीन्द्रियंतु मनः, इत्येते षोडश विकाराः। महदादि सर्वं क्षेत्रमव्यक्तमाचक्षते। क्षेत्रज्ञं तु शाश्वतमचिन्त्यमात्मानम्। का० शा० पृ ४५

(१५) तस्मादव्यक्तान्महानुत्पद्यते तल्लिङ्गाएव; तल्लिङ्गाच्चमहतस्तल्लक्षण एवाहंकार उत्पद्यते, सतु त्रिविधोवैकारिकस्तैजसो भूतादिरिति; तत्र वैकारिकादहंकारात्-तैजस सहायात् तल्लक्षणान्येवैकादशेन्द्रियाण्युत्पद्यन्ते, तद्यथा—श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक् हस्तोपस्थपायुपादमनांसीति। तत्र पूर्वाणि पंच बुद्धीन्द्रियाणि, इतराणि पंच कर्मेन्द्रियाणि, उभयात्मकं मनः; भूतादेरपि तैजस सहायात् तल्लक्षणान्येव पंचतन्मात्राण्युत्पद्यन्ते; तद्यथा शब्द तन्मात्रम्, स्पर्श तन्मात्रम्, रूपतन्मात्रम्, रस तन्मात्रम्, गन्ध तन्मात्रमिति; तेषां विशेषाः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः; तेभ्यो भूतानि व्योमानिलानल जलोर्व्यः। एषातत्वचतुर्विंशति व्याख्याता। सु० शा० १-४

(१६) लक्षणं मनसो ज्ञानस्याभावोभाव एवच।
सतिह्यात्मेन्द्रियार्थानां सन्निकर्षे न वर्तते ॥ १६

वैवृत्यान्मनसो ज्ञानं सान्निध्यात्तच्चवर्तते।

अणुत्वमथचैकत्वं द्वौगुणौ मनसः स्मृतौ॥ १७ च० शा० १

(१७) [स्वार्थेन्द्रियार्थसङ्कल्पव्यभिचरणाच्चानेकमेकस्मिन्पुरुषे सत्त्वं रजस्तमः सत्वगुणयोगाच्च, नच अनेकत्वं नह्येकं ह्येककाल-मनेकेषु प्रवर्तते तस्मान्नैककाला सर्वेन्द्रियप्रवृत्तिः॥ च० सू० ९-२०

(१८) ज्ञानस्याभावोभावश्च मनसो लक्षणं, तस्यैकत्वमणुत्वं च द्वौगुणौ प्रयत्नज्ञानायौगपद्यादेकं, पृथक् (व), समनस्कमिन्द्रियमर्थ-ग्रहण समर्थं भवति। का० शा० पृ-४५

(१९) यस्त्विन्द्रो लोके पुरुषेऽहङ्कारः सः। च० शा० ५-६

(२०) बुद्धयवस्थाहङ्कारेणवाभिमतम्। भे० पृ० ९१

(२१) हृदयं चेतनास्थानमुक्तं सुश्रुत देहिनाम्।

तमोऽभिभूते तस्मिस्तु निद्रा विशति देहिनाम्॥ सु०श०४-३४

शिरस्ताल्वन्तर गतं सर्वेन्द्रिय परंमनः।

तत्रस्थं तद्धि विषया-निन्द्रियाणां रसादिकान्॥

समीपस्थान्विजानाति त्रीन् भावांश्च नियच्छति।

तन्मनः प्रभवं चापि सर्वेन्द्रियमयं बलम्॥ भेल० पृ० १४९

(२२) तस्योपघातान्मूर्च्छायं भेदान्मरणमृच्छति। च० सू० ३०-५

यद्यपि च आत्मविज्ञानमनसां हृदयाश्रितत्वमाधाराधेयभावा-दपि कष्ट-सृष्ट्या वक्तुं पार्यते; तथापि सर्वव्यापकत्वान्नोपादेयमा-धाराधेयत्वम्। आत्मा यश्च संसारी भोगायतनत्वेनाभि प्रेतः। स च हृदयप्रदेश एवं सुख-दुःखादुपपद्यते इत्यनुभवसिद्धम्। ××× एवं ज्ञान सुखदुःखानि च हृदयस्थान्येव लक्ष्यन्ते तथा चिति चिन्तनात्

तथा दुःखावेशत्वाद्धृदयमेव पीड्यते, नान्यदङ्गम्। अलमात्मना व्यापकेनाश्रयाश्रयिभावेनव्युत्पादितेन ; यश्चात्मा संसारी हृदयाश्रितोभवति तस्यैव हृदयनाशान्नाश इति भावः ॥ चक्रपाणिः

(२३) तद्वदतीन्द्रियाणां पुनः सत्त्वादीनां केवलं चेतनावच्छरीरमयन भूतमधिष्ठान भूतं च च० वि० अ० ५-७

(२४) शिरसि इन्द्रियाणि, इन्द्रियप्राणवहानि च स्रोतांसि सूर्यमिव गभस्तयः संश्रितानि ॥ च० सि० ९-४

शिर आश्रयत्वं यथोक्तस्रोतसां तदुपघातेन, विशिष्टोपघात दर्शनादुन्नीयते ॥ चक्रपाणिः

(२५) तत्र मूकता स्वरवैकृतमरसग्राहिता। ×× तत्र बाधिर्यम्। ×× तत्र गन्धाज्ञानम्। ×× तत्रान्ध्यं दृष्ट्युपघातोवा। ×× तत्रोन्माद भयचित्त नाशैर्मरणम्। ×× तत्रापि सद्योमरणम्।

सु० शा० अ० ६

(२६) चेतनावान्यतश्चात्मा ततः कर्ता निरुच्यते।
अचेतनत्वाच्चमनः क्रियावदपिनोच्यते ॥ च० शा० १-७४

(२७) मनः पुरः सराणि च इन्द्रियाणि अर्थ ग्रहण समर्थानि भवन्ति। च० सू० अ० ८-७

(२८) आत्माज्ञः करणैर्योगादज्ञानं त्वस्य प्रवर्तते।
करणानामवैमल्यादयोगोद्वा न वर्तते ॥५२॥
पश्यतोऽपि यथाऽदर्शे संक्लिष्टे नास्तिदर्शनम्।
तत्त्वं जलेवा कलुषे चेतस्युपहते तथा ॥ ५३॥ च० शा० १

दर्शनं भवेदपि—अयथार्थग्राहितया न तत्त्वरूपं भवतीत्यर्थः।

चेतसि—इत्युपलक्षणम्। तेन चक्षुरादौ—अपि उपहते—इति ज्ञेयम्।

(२९) निर्विकारः स्त्वात्मा सत्त्व भूत गुणेन्द्रियैः।

चैतन्ये कारणं नित्यो द्रष्टा पश्यति हि क्रियाः। च० सू० १-५४

(३०) आत्मजश्चायं गर्भो गर्भात्माह्यन्तरात्मा यः, तं जीव इत्याचक्षते।

(३१) स्वार्थेन्द्रियार्थसङ्कल्पव्यभिचरणाच्चानेकमेकस्मिन्पुरुषे सत्त्वंरजस्तमःसत्वगुणयोगाच्च; न चानेकत्वम्; नह्येकं ह्येककालमनेकेषु प्रवर्तते, तस्मान्नैक काला सर्वेन्द्रिय प्रवृत्तिः।

च० सू० ८-५

यद्गुणं चाभीक्ष्णं पुरुषमनुवर्तते सत्त्वं, तत्सत्त्वमेवोपदिशन्ति मुनयो गुणबाहुल्यानुशयात्। च० सू० ८-६

नाना विधानि खलु सत्वानि, तान्येक पुरुषे भवन्ति, नच भवन्त्येक कालम्, एकं तु प्रायो वृत्त्याह॥ च० शा० ३-१९

(३२) मनसश्चन्द्रमाः। सुश्रुत-शा० १-७

चौथा अध्याय

इन्द्रियं विज्ञान

मनके विषयमें इतनी विवेचना करके अब हम इन्द्रियोंका निरूपण करेंगे। शारीरकी दृष्टिसे उनका वर्णन अन्यत्र दिया जायगा।

सर्वप्रथम इन्द्रिय शब्दकी व्युत्पत्ति देखें। भगवान् पाणिनि ने इन्द्रिय शब्दकी निरुक्ति इस प्रकार दी है। (इन्द्र+घच्)—
इन्द्रियमिन्द्र लिङ्गमिन्द्र दृष्टसिन्द्र सृष्टसिन्द्र जुष्टमिन्द्र दत्तमिति वा।

पाणिनीय अष्टा० ५–२–९३

इन्द्रस्य आत्मनो लिङ्गमनुमापकम्, इन्द्रेण ईश्वरेण सृष्टम्। इन्द्रेणात्मना, मम चक्षुर्मम श्रोत्र मित्यादि क्रमेण ज्ञातम्। इन्द्रेण जुष्टं वा, इत्याद्यर्थेषु इन्द्रशब्दात् निपातनात्-घच्--ज्ञान कर्म साधन मिति। (शब्द कल्पद्रुम)। इस व्युत्पत्तिको जैन, बौद्ध, आदि ने भी स्वीकार किया है; परन्तु माठर वृत्ति जैसे प्राचीन वैदिक दर्शन ग्रन्थमें इन्द्रिय शब्द की जो निरुक्ति दी है वह उपर्युक्त पाणिनीय निरुक्तिसे भिन्न और विलक्षण है; यथा—

इन् इति विषयाणां नाम, तान् इनः विषयान् प्रति द्रवन्तीति इन्द्रियाणि ॥

माठर० का० २६

मूल इन्द्र शब्दका अर्थ ऐश्वर्यवान् होता है। सामान्यरूपसे इस व्युत्पत्तिमें उसका अर्थ आत्मा लिया गया है।

चरकके इन्द्रिय स्थानके प्रारंभमें चक्रपाणि लिखते हैं कि—"यदुक्तम् व्याकरणे इन्द्रियमिष्टम् इत्यादि" और इस प्रकार इन्द्रिय शब्दका एक पर्याय दिया है। इसी प्रकार महान् पण्डित गंगाधर ने भी अपनी जल्पकल्पतरु टीकामें "इन्द्रियम्, इन्द्रः प्राणस्तस्य लिङ्गमितीन्द्रियंरिष्टम्। अथवा इन्द्रोऽन्तरात्मा तस्य लिङ्गमिति" इन वचनों द्वारा इस मतका और पाणिनीय निरुक्तिका समर्थन किया है। अर्थात् माठर वृत्तिकारकी व्युत्पत्ति आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें स्वीकृत नहीं की गई है।

हृषीकम्, विषयि, अक्षम्, करणम्, ग्रहणम्, रिष्टम्, आदि इसके पर्याय हैं।

चरकने राशि पुरुषके वर्णनमें तथा करणोंकी गणनाके प्रसंगमें पांच ज्ञानेन्द्रियों और पांच कर्मेन्द्रियोंका उल्लेख किया है[1] तथा सांख्य एवं वेदान्तके अनुसार अन्तःकरण एवं बाह्यकरणकी व्यवस्थाको स्वीकार किया है। परन्तु इन्द्रियोपक्रमणीय अध्याय के प्रारंभमें उन्होंने पाँच ज्ञानेन्द्रियोंका ही उल्लेख किया है*।

* बोद्ध मतमें २२ इन्द्रियां हैं। प्रतीत होता है कि बौद्ध अभिधर्म परंपरामें प्रत्येक मानस शक्तिका 'इन्द्रिय' शब्द द्वारा निर्देश किया गया है। देखिये—कतमानि, द्वाविंशतिः, चक्षुरिन्द्रियं, श्रोत्रेन्द्रियं, घ्राणेन्द्रियं, जिह्वेन्द्रियं, कायेन्द्रियं, मनसेन्द्रियं, स्त्रीन्द्रियं, पुरुषेन्द्रियं, जीवितेन्द्रियं, सुखेन्द्रियं, दुःखेन्द्रियं, सौमनस्येन्द्रियं, दौर्मनस्येन्द्रियं, उपेक्षेन्द्रियं, श्रद्धेन्द्रियं, वीर्येन्द्रियं, स्मृतीन्द्रियं, समाधीन्द्रियं, प्रज्ञेन्द्रियं, अनाज्ञातमाज्ञास्यामीन्द्रियं, आज्ञेन्द्रियं, आज्ञातावीन्द्रियम्॥ (स्फुटाभिधर्मकोष व्याख्या० पृ० ९५) तथा (अभिधर्मकोषः प्रथम कोषस्थान का० ४८)

इस स्थलपर चक्रपाणिने आयुर्वेदको "सर्वपारिषदमिदं शास्त्रम्" यह यथार्थ ही विशेषण दिया है, क्योंकि आयुर्वेद सांख्य, वैशेषिक, न्याय आदि दर्शनोंसे अपने मन्तव्योंसे मेल खानेवाली (अविरुद्ध) बातें अपना लेता है। इसीलिये पूर्वापर विरोधके प्रसंग कभी-कभी आ जाते हैं। परन्तु ऐसे स्थलोंपर वास्तविक विरोध नहीं होता। चक्रपाणिका यह मत वर्तमान चिकित्सा शास्त्रको भी उतना ही लागू होता है। आधुनिक चिकित्सा शास्त्र (Medical Science) भी मानस रोगोंकी चिकित्सामें केवल चिकित्सा-प्रधान दृष्टिकोण रखकर चलता है। मन उसका संघटन, इन्द्रियां और उनके व्यापार आदिके विषयमें वह किसी मानस शास्त्र विशेषका अनुसरण नहीं करता, क्योंकि मानस शास्त्रमें भी अनेक संप्रदाय हैं। अर्थात् दार्शनिक पण्डितोंको उनकी चर्चाके लिये स्वतन्त्र छोड़कर चिकित्सकोंको अपने चिकित्साके दृष्टिकोणसे जो उपयुक्त मालूम हो उसको ग्रहण करके आगे बढ़ना उत्तम है[२]। उदाहरणार्थ—सांख्यके मतमें इन्द्रियोंकी उत्पत्ति तैजस सहित वैकारिक अहङ्कारसे होती है और आयुर्वेदने सर्गोत्पत्ति क्रममें अधिकतर सांख्यवादका स्वीकार करनेपर भी, इन्द्रियोंकी उत्पत्ति पंचमहाभूतोंसे मानी है[३]। साथ ही पाँच इन्द्रिय द्रव्य और उनसे उत्पन्न पांच ज्ञानेन्द्रियोंके नाम दिये हैं[४]। यह मत न्याय-दर्शनके अनुसार ही है*। इन्द्रियाँ भौतिक मानी जायँ या

---

* घ्राणरसनचक्षुस्त्वक् श्रोत्राणीन्द्रियाणि भूतेभ्यः। न्या० द० १-१-१२
पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशमिति भूतानि। न्या० द० १-१-१३

आहंकारिक ? यह वादविवाद प्राचीनकालसे चला आ रहा है। इसका कारण न्याय, वैशेषिक और सांख्यके सर्गोत्पत्तिविषयक दृष्टिकोणोंमें भेद ही है। यह हम देख चुके हैं। किन्तु इन्द्रियों और मनको आहंकारिक कहें या भौतिक, इससे केवल जड़त्वकी मात्रामें फर्क होता है, जड़त्व नष्ट नहीं हो जाता ; क्योंकि सांख्यका अहंकार भी जड़ प्रकृतिसे ही उत्पन्न होता है ; यद्यपि महाभूतोंके समान जड़त्व तो निःसन्देह अहंकारमें नहीं होता। वेदान्त भी सांख्यके मतको स्वीकार करता है। न्यायमतानुसारी पूर्व-मीमांसक भी इन्द्रियोंको भौतिक मानते हैं। बौद्धमतके अनुसार पाँचो इन्द्रियाँ 'रूप'-जन्य हैं। यह 'रूप' भी एक प्रकार का जड़ द्रव्य है। जैन दर्शन भी द्रव्य-स्थूल इन्द्रियोंके कारण-स्वरूप एक पुद्गलविशेषको मानता है, जो स्वयं एक प्रकारका द्रव्य है। इस प्रकार इन्द्रियोंके भौतिकत्वके पक्षमें बहुमत है।

इसी ग्रन्थमें अन्यत्र ज्ञानेन्द्रियों (Organs of Senses) और मस्तिष्क (Brain) का शरीर-रचना-शास्त्रकी दृष्टिसे दिया गया वर्णन तथा शरीर-व्यापार-शास्त्रके अनुसार उनके व्यापारों का वर्णन पढ़नेसे विद्यार्थियोंको मालूम हो जायगा कि प्राचीन कालमें इन अवयवोंकी रचनाके विषयमें विशेष जानकारी नहीं थी। हाँ, उनके व्यापारोंके विषयमें प्राचीन दार्शनिक विद्वानोंने भी काफी ऊहापोह किया था। इस बातका दिग्दर्शन करानेके लिये एक-दो उदाहरण यहाँ उपस्थित किये जाते हैं। विशेष-जिज्ञासुओं-को वे ग्रन्थ स्वयं देखने चाहिये।

पहला प्रश्न है—कितनी इन्द्रियाँ हैं ? पाँच या दस ? मन को तो सभीने अन्तरिन्द्रिय या अन्तःकरणके रूपमें भिन्न ही माना है। सांख्य एक मन, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ और पांच कर्मेन्द्रियाँ, इस प्रकार (सात्विक एकादशकः) ग्यारह इन्द्रियाँ बताता है, परन्तु न्याय पाँच कर्मेन्द्रियोंको इन्द्रियाँ माननेसे इन्कार करता है और मनके अतिरिक्त केवल पांच ज्ञानेन्द्रियोंको ही इन्द्रिय कहता है। (आयुर्वेद दस इन्द्रियाँ तो मानता है, पर पाँचको अधिक उपयोगी मानता है—अत्रापि ज्यायस्त्वाद्बुद्धीन्द्रियाणि प्रागाह—चक्र०) उदाहरणतया न्यायमंजरीके लेखक-पद-वाक्य प्रमाण-पारावार-पारीण-श्री जयन्त भट कहते हैं कि "यद्यपि कहा गया है, वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ कर्मेन्द्रिय हैं" (देखो सां० का० २६)। वचन, आदान, विहरण, मलका उत्सर्ग और आनन्द-रूप पांच प्रकारके कार्योंके साधन होनेसे ये 'इन्द्रिय' कहलाते हैं, क्योंकि ये कार्य दूसरे द्वारा नहीं हो सकते। कर्मेन्द्रियों की और उनके पञ्चत्वकी सिद्धिमें ये दलीलें अति निर्बल है। यदि उपर्युक्त अवयवोंको आप कर्मेन्द्रियाँ कहेंगे, तो क्या शरीरमें और कर्मेन्द्रियाँ नहीं हैं ? उदाहणार्थ—अन्न निगलनेके लिये कण्ठ और आलिङ्गनके लिये स्तन उपयोगी हैं, इसलिये वक्षःस्थलको और भार ढोनेमें उपयुक्त पीठको भी कर्मेन्द्रिय कहनेमें क्या हानि है ? यदि आप यों कहेंगे कि ये कार्य तो इतर अवयवों से भी हो सकते हैं, तो हम पूछते हैं कि क्या आप अन्नपानको हाथ पैर द्वारा या गुदा द्वारा निगलते हैं ? फिर आप यों कहेंगे कि आदान,

विहरण आदि कर्म इतर अवयवों द्वारा नहीं हो सकते, तो यह भी गल्लत है, क्योंकि क्या पक्षी मुख द्वारा आदान-क्रिया नहीं कर सकते! अरे! मनुष्य भी कभी मुख द्वारा आदान नहीं करते? आपके अभिमतसे कर्मेन्द्रियोंके अभावमें भी उनका कार्य न्यूनाधिक मात्रामें दूसरों द्वारा हो सकता है, परन्तु ज्ञानेन्द्रियोंके विषयमें ऐसी स्थिति नहीं है। आँख फोड़ देनेपर तत्काल मनुष्य बिलकुल अंधा हो जाता है *।

आधुनिक मत भी नैयायिकोंका समर्थन करता है। यदि कर्मेन्द्रियां (Motor organs) मानी भी जायँ, तो सिर्फ पाँच

---

* तदुक्तं-वाक्पाणिपादपायूपस्थाः कर्मेन्द्रियाण्याहुः सां० का० २६ तेषांच वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दात्मकपञ्चविधकार्यसाधनादिन्द्रियत्वं, तत्कार्यस्यानितरेतरसाध्यत्वादिति। अत्राहुः, अत्यल्पमिदमुच्यते पञ्चकर्मेन्द्रियाणीति अन्यान्यपि न खलु सन्ति कर्मेन्द्रियाणि? तथा हि कण्ठोऽन्ननिगरणेन, स्तनकलशालिङ्गनादिनावक्षो, भारवहनेचांसद्वयमिन्द्रियमुच्यते न कथम्? तत्कार्यस्य शरीरावयवान्तरेऽपि दर्शनादितिचेत्किन्तु भवानन्नपानं पाणिपादेन निगिरति पायुना वा? आदानमपि किमास्यादिना वा न कुर्वते तिर्यञ्चो मनुष्या अपि हि क्वचित्? असत्स्वपि भवत्कल्पितेषु कर्मेन्द्रियेषु तत्कार्यंयावत्तावदन्यथाऽपि दृश्यते, नत्वेवं बुद्धीन्द्रियेषु। भवत्युत्पाटिताक्षस्य न मनागपि रूपधीः॥

आदानविहरणोत्सर्गा, वक्षहस्तादिभिरपिशक्याः कर्तुम्। अपिचास्तिकण्ठहृदयाऽमाशयपक्वाशयादीनामपि गिरणादि तत्तदसाधारणं कार्यमितितान्यपीन्द्रियाणि प्रसज्येरन्निति। न्या० द० ३-१-६२ खद्योत व्या०

ही क्यों ? बहुतसी हैं, इसलिये इन्द्रियोंके रूपमें केवल पाँच ज्ञानेन्द्रियोंका ही महत्त्व है। ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञानकी प्रधान साधन होनेसे, और ज्ञान-प्रमाण-आदि दार्शनिकोंकी चर्चाके प्रधान विषय होनेसे, उन चर्चाओंमें इन्द्रियोंका बड़ा स्थान है।

इन्द्रियाँ भौतिक हैं या आहंकारिक ? यह दूसरा विवादग्रस्त प्रश्न है। इस विषयमें अधिकतर दार्शनिकोंके मन्तव्योंको हम कुछ ही पहले देख आये हैं। अब हम उभयपक्षकी दलीलोंकी समीक्षा करेंगे।

पञ्चमहाभूत, उनके पांच गुण तथा प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय सिर्फ एक ही अर्थको ग्रहण करती है, इन बातोंमें दोनों पक्ष (आहंकारिकेन्द्रिय-वादी तथा भौतिकेन्द्रिय-वादी) सम्मत हैं, क्योंकि प्रत्येकका अनुभव ही इस बात में प्रमाण है। अब मतभेदके स्थलोंको देखें।

आहंकारिकेन्द्रियवादी कहते हैं कि इन्द्रियों तथा पञ्चमहाभूतोंका उत्पत्तिस्थान भिन्न है। मनके साथ दस इन्द्रियाँ राजसांश युक्त वैकृत अहंकारसे और पञ्चमहाभूत राजसांशयुक्त तामस अहंकारसे उत्पन्न होते हैं; इसलिये इन्द्रियाँ भौतिक नहीं है। इन्द्रियोंका मूल एक ही होनेपर भी प्रत्येकके आकारमें भेद है और प्रत्येक भिन्न-भिन्न विषयको ग्रहण करती है, इसका कारण तीन गुणोंके परिणामकी विशिष्टता है। गुणोंमें नित्य-प्रति परिणाम-रूपान्तर (Modification) होते रहते हैं और इन परिवर्तनों के फलस्वरूप त्रिगुणात्मक प्रकृतिसे अनेक नये-नये पदार्थ उत्पन्न होते हैं। इसलिये इन्द्रियोंका वैविध्य एवं विशिष्टार्थ-ग्रहण इस

विभिन्न गुण-परिणामके कारण है। (गुण-परिणाम-विशेषात्) * इसके सिवाय आँख छोटे या बड़े-दोनों-परिणामों (Dimensions) को ग्रहण करती है और साथ ही वस्तु समीप है या दूर, इस प्रकार-अन्तर (Distance) भी जान सकती है। यदि आँख भौतिक हो तो ऐसा नहीं हो सकता; क्योंकि भौतिक साधन तो स्वयं जिस परिमाणका होगा उसी परमाणको ग्रहण कर सकता है। उदाहरणार्थ—पाँच सेरका लोटा पाँच सेर पानीको ही धारण कर सकता है, न तीन सेर को, न बीस सेर को। इसलिये आँखको भौतिक मानेंगे तो इन घटनाओंकी व्याख्या नहीं हो सकेगी। इसके विरुद्ध उनको आहंकारिक मानेंगे तो वह विभु-व्यापक होनेसे छोटा, बड़ा, समीप या दूरका सब ग्रहण हो सकेगा। इस आँखके दृष्टांतसे, अन्य इन्द्रियाँ भी आहंकारिक हैं, यह सिद्ध होता है †।

इसका उत्तर नैयायिक इस प्रकार देते हैं कि यदि इन्द्रियाँ एक कारणसे ही उत्पन्न हुई हैं तो वे सब एक समान होनी चाहिये।

---

* उभयात्मकमत्रमनः संकल्पकमिन्द्रियं च साधर्म्यात्।
गुणपरिणामविशेषान्नानात्वं बाह्यभेदाश्च॥ सां० का० २७

गौडपादभाष्य—अथैतानीन्द्रियाणि भिन्नानि भिन्नार्थग्राहकाणिकिमीश्वरेण उत स्वभावेन कृतानि × × अत्रोच्यते गुणपरिणामविशेषान्नानात्वं बाह्यभेदाश्च × × एवमचेतना गुणा एकादशेन्द्रियभावेन प्रवर्तन्ते। विशेषा अपितरक्ता एव। येनोच्चैः प्रदेशे चक्षुरवलोकनायस्थितं, तथा घ्राणं, तथा श्रोत्रं तथा जिह्वा स्वदेशे स्वार्थग्रहणाय।

† महदणुग्रहणात्। न्या० द० ३-१-३३

इसके फलस्वरूप सब इन्द्रियाँ सब अर्थोंको ग्रहण कर सकतीं। अथवा एक इन्द्रिय भी सब अर्थोंको ग्रहण कर सकती। इस स्थितिमें एकाध इन्द्रियके नष्ट होनेपर भी शेष इन्द्रियों द्वारा अर्थ-ग्रहण तो होता ही ❊ परन्तु ऐसा नहीं होता। अर्थात् ऐसा किसीका अनुभव नहीं है। इसके विपरीत इस प्रकारका नियम मालूम होता है कि वायु आदि पांच महाभूत, स्पर्श आदि एक-एक गुणको व्यक्त करते हैं, और घ्राण आदि इन्द्रियां गन्ध आदि एक-एक भूतके विशिष्ट गुण को ग्रहण करती हैं। इसलिये

वात्स्यायन भा०—महदिति महत्तरं महत्तमंचोपलभ्यते यथान्यग्रोध-पर्वतादि अण्विति अणुतरमणुतमं च गृह्यते तथा न्यग्रोधधानादि। तदुभय-मुपलभ्यमानं चक्षुषोभौतिकत्वं बाधते। भौतिकं हि यावत्तावदेवव्याप्नोति। अभौतिकं तु विभुत्वात्सर्वव्यापकमिति ॥ न्या० द० ३–१–३२ भाष्य

भौतिकत्वेहि तत्परिमाणं ग्रहणं, तत्परिमाणं ग्राह्यं गृह्णीयादस्ति च गोलकादधिकपरिमाणस्य पटपिडरादेर्ग्रहणं, हीनपरिमाणस्य च वटधानादे-रतोऽपि न भौतिकानीन्द्रियाणि ॥ न्याय-मञ्जरी-इन्द्रियपरीक्षा० प्र०

(❊) भूतेभ्य इति पृथिव्यादि कारणोपदेशो नियमार्थः। कः पुनरयं नियमः? भूतगुणविशेषग्रहणसाधनत्वं, न सर्वमिन्द्रियं सर्वभूतगुणविशेषं गृह्णातीति। अपितु यज्जातीयमिन्द्रियं भवति तस्य यो गुणविशेष इतरेतरभूत-व्यवच्छेदहेतुर्गन्धादिः सतेनैवेन्द्रियेण गृह्यत इत्ययं नियमः। ऐकात्म्ये पुनरयं नियमो न स्यात्। यदिपुनरिन्द्रियाण्येकात्मकानि एककारणकानिस्युः कारण स्वभावानुविधानादैकात्म्याद्विषयव्यवस्था न स्यात्, सर्वं सर्वार्थमेकं वा सर्वार्थ-मतिस्यात्।

हम मानते हैं कि इन्द्रियाँ भिन्न-भिन्न, प्रकृतिजन्य अर्थात् भौतिक होनी चाहिये, न कि आहंकारिक *। नेत्रेन्द्रिय बड़े-छोटे या दूर-समीपके पदार्थोंको ग्रहण करती है, यह नेत्र-रश्मि और पदार्थके बीचके सन्निकर्ष-विशेष पर निर्भर है। इस सन्निकर्षसे वैसा ही होता है जैसा दीपककी किरणों और पदार्थोंके बीच होता है।

लेकिन आँख रूपका ही ग्रहण करती है, गंधका ग्रहण क्यों नहीं करती? यदि सब इन्द्रियाँ पांचभौतिक हैं तो इस प्रकार का नियम क्यों देखनेमें आता है? इसका स्पष्टीकरण करते हुए भगवान चरक कहते हैं कि[१] "जिन-जिन इन्द्रियोंमें जो-जो भूत अधिक होता है, वह इन्द्रिय तत्तद् भूतके अर्थको ग्रहण करती है। उस इन्द्रियका और उस इन्द्रियसे ग्राह्य अर्थका (दोनोंका) स्वभाव एक-सा होता है। इन्द्रियोंकी शक्ति समान-जातीय अर्थों को ग्रहण करती है।" उदाहरण; आँखमें तेज अधिक होता है, इसलिये वह रूप ग्रहणकर सकती है, क्योंकि आँख और तेज दोनों समानजातीय हैं, आँख भी तैजस है और रूप भी तैजस है। सुश्रुत भी इसी मतका समर्थन करते हैं और इन्द्रियों और अर्थोंके तुल्ययोनित्वपर जोर देते हैं[६]। चरक भगवानके शब्दोंमें

* भूतगुणविशेषोपलब्धेस्तादात्म्यम्। न्या. द. ३-१-६१

वा. भा.—दृष्टो हि वाय्वादीनां भूतानांगुणविशेषाभिव्यक्तिनियमः। वायुः स्पर्शव्यञ्जकः × × पार्थिवं किञ्चितद्रव्यं कस्यचिद्द्रव्यस्यगन्धव्यञ्जकम्। अस्तिचायमिन्द्रियाणां भूतगुणविशेषोपलब्धिनियमः। तेन भूतगुणविशेषोपलब्धेर्मन्यामहे भूतप्रकृतीनीन्द्रियाणि, नाव्यक्तप्रकृतीनीति। न्या. द. ३-१-६१ भाष्य

"विशेषात्" इस पदसे यह सूचित किया है कि प्रत्येक इन्द्रियमें किसी भूतविशेष (पृथिवी, आकाश आदि) की अधिकता होती है। "विभुत्वात्" इस पदसे किसी शक्ति-विशेष की ध्वनि भी निकलती है। न्याय † वैशेषिक ‡ सूत्रोंमें 'भूयस्त्वात्' पद प्रयुक्त किया गया है। इसका अर्थ भूतकी अधिकताके अतिरिक्त संस्कारविशेषसे उत्पन्न होनेवाली विशिष्ट शक्ति भी होता है। विष, ओषधि, मणि आदि जैसे पुरुष-कृत संस्कारके कारण विशिष्ट क्रिया करनेमें समर्थ होते हैं, उसी प्रकार इन्द्रियाँ भी पुरुष-विशेषके संस्कारके फलस्वरूप किसी अर्थविशेषको ग्रहण करनेकी विशिष्ट शक्ति प्राप्त करती हैं। आशय यह कि केवल तत्-तत् भूताधिक्यके कारण ही इन्द्रियोंके विशिष्टार्थग्रहण-व्यापारको माननेका स्पष्टीकरण नैयायिकों की कुशाग्र बुद्धिको संतुष्ट नहीं कर सका था, इसलिये उन्होंने इसके अतिरिक्त कुछ और भी कारण बताया है और वह है परमेश्वरके संस्कारके परिणाम-स्वरूप प्राप्त हुआ क्रिया-सामर्थ्य (देखो-भाष्यचन्द्र टीका निर्वर्त्यन्ते परमेश्वरेण विशेषाः)।

---

† तद्व्यवस्थानं तु भूयस्त्वात्। न्या. द. ३-१-६८

वा. भा.—अर्थं निर्वृत्ति-समर्थस्य प्रविभक्तस्य द्रव्यस्य संसर्गः पुरुष-संस्कार-कारितो 'भूयस्त्वम्'। दृष्टोहि प्रकर्षे भूयस्त्वशब्दः प्रकृष्टो यथा विषयो भूयानित्युच्यते। यथा पृथगर्थक्रियासमर्थानि, पुरुषसंस्कारविशेषाद्विषौषधिमणिप्रभृतीनि द्रव्याणि निर्वर्त्यन्ते, न सर्वं सर्वार्थम्—एवं पृथग्विषय-ग्रहणसमर्थानि घ्राणादीनि निर्वर्त्यन्ते न सर्वविषयग्रहणसमर्थानीति।

‡ "भूयस्त्वाद्गन्धवत्वाच्च पृथिवी गन्धज्ञाने प्रकृतिः॥" वै. दर्शन ८-२-५

यह विवेचना अब यहीं समाप्त करेंगे। इसमें भाग लेनेवाले शरीर-व्यापार-शास्त्री (Physiologists) नहीं थे किन्तु मुमुक्षु तत्त्वज्ञानी थे। उनके पास ज्ञानेन्द्रियों की सूक्ष्म रचना देखनेके लिये किंवा उनके व्यापारोंका अध्ययन करनेके लिये यान्त्रिक साधन नहीं थे। फिर भी चिरकालके अवलोकन और अनुभवके फलस्वरूप वे लोग ज्ञानेन्द्रियोंके विषयमें विशेष प्रकारके सिद्धान्त निर्धारित कर सके थे। हम देख चुके हैं कि ज्ञानेन्द्रियोंको भौतिक माननेवाला दल प्रबल और बड़ा था। निखिल तन्त्रा-परतन्त्रप्रतिभ श्रीमद्वाचस्पति मिश्र जैसे सुप्रसिद्ध टीकाकारके मत पर भी ज्ञानेन्द्रियोंके भौतिकत्वका प्रभाव पड़ा था। योग-दर्शनके व्यास-भाष्यपर की हुई अपनी तत्त्ववैशारदीय व्याख्यामें वे लिखते हैं कि "अहंकारिता होने पर भी घ्राण, रसना, त्वक्, चक्षु और श्रोत्र, ये पंच भूतोंके अधिष्ठान तो अवश्य हैं; (क्योंकि) भूतोंके अनुग्रह किंवा अननुग्रह के परिणाम-स्वरूप इन्द्रियोंको लाभ या हानि होते देखे जाते हैं *।" अर्थात् इन्द्रियोंको आहंकारिक मानते हुए भी (क्योंकि सांख्य-योग उनको आहंकारिक मानते हैं) भूतों द्वारा इन्द्रियोंके किये जानेवाले उपकार उनकी दृष्टिसे बाहर नहीं थे।

सांख्याचार्योंकी गुण-परिणाम-विशेषकी दलील और उनके उपदिष्ट इन्द्रियोंके आहंकारित्वको आयुर्वेदाचार्योंने नहीं स्वीकार

* आहंकारिकमपि घ्राणरसनत्वक्चक्षुःश्रोत्रं, भूताधिष्ठानमेव भूतोपकारापकाराभ्यां घ्राणादीनामुपकारापकारदर्शनादित्युक्तम्॥ यो. द. ३-३-४१

किया था। मनको भौतिक (अचेतन) मानने पर ज्ञानेन्द्रियोंको भौतिक मानना ही पड़ता है। चिकित्सकोंकी दृष्टिमें भूत ही अधिक उपयोगी थे। भूतोंकी विकृति (अपकार) के फलस्वरूप ज्ञानेन्द्रियोंकी कार्य-क्षमता पर होनेवाले प्रभाव चिकित्सकोंको स्पष्टरूपमें दिखाई देते थे। इस लिये अन्य दार्शनिकोंकी अपेक्षा आयुर्वेदज्ञों के पास ज्ञानेन्द्रियोंको भौतिक माननेके लिये अधिक प्रबल कारण थे। पांच इन्द्रिय-द्रव्योंमेंसे बनी हुई पांच ज्ञानेन्द्रियोंके अधिष्ठानके रूपमें "दो आंख, दो कान, दो नासिकायें, जिह्वा और त्वक्" बताये गये हैं, जो पांच अर्थोंका ग्रहण करते हैं। यहाँ अधिष्ठान किंवा आश्रय-स्थान दो होने पर भी इन्द्रिय तो एक ही होती है इस बातको चक्रपाणिने स्पष्ट कर दिया है। यद्यपि नैयायिकों ने इस बातकी भी चर्चाकी है कि आंख एक हैं या दो? उदाहरणतया वात्स्यायन मानते हैं कि आंख दो हैं। न्याय-वार्त्तिककार उद्योतकर इस मातका खंडन करते हैं *। रूप ग्रहण करनेवाली इन्द्रिय तो एक ही है। दो नेत्र-गोलकके माने हैं—एक मकानकी दो खिड़कियाँ। हवा दोनोंमेंसे आती हैं अथवा एकको बन्द करने पर भी दूसरी से आती है। कान और नाक भी दो-दो दीखने पर भी कर्णेन्द्रिय एक है और घ्राणेन्द्रिय भी एक है। अधिष्ठान शब्दके प्रयोगसे स्पष्ट मालूम होता है कि प्राचीन लोग

* सू. सव्यदृष्टस्येतरेण प्रत्यभिज्ञानात्। न्या. द. ३-१-७

खद्योत् टीका—भाष्यकारादपि वार्तिककारस्य स्फुटोमतभेदः। भाष्यमते चक्षुरिन्द्रिये द्वित्वम्। वार्तिकमते चक्षुरेकत्वमेवसिद्धान्तः। पृ. ४४७

केवल नेत्र-गोलक किंवा नासिका-द्वारको ही, इन्द्रिय नहीं मानते थे *। इन बाहरसे दिखाई देनेवाले शारीरिक भागोंके अतिरिक्त भीतर भी कुछ है, ऐसा उनका अभिप्राय मालूम होता है। किंतु शवच्छेदके अभावमें, वह क्या है, यह वे लोग नहीं जान सके थे। इसलिये उन्होंने काफी अनुमान किये हैं। सांख्यादि दर्शनोंकी तरह चरक भी ज्ञानेन्द्रियोंको अप्रत्यक्ष एवं कर्म द्वारा अनुमेय मानते हैं [७]। मन और ज्ञानेन्द्रियोंके बीच फर्क केवल यही है कि प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय केवल एक ही विषयका (रूप-रस आदि का) ज्ञान करता है, जब कि मन सब विषयोंका ग्रहण कर सकता है। मन अन्तःकरण अर्थात् अन्तरिन्द्रिय है इस विषयमें मतभेद नहीं है।

अब इस विषयमें आधुनिक मत देखें। विज्ञानवादी भी ज्ञानेन्द्रियोंको भौतिक मानते हैं। उनके मतानुसार प्रत्येक

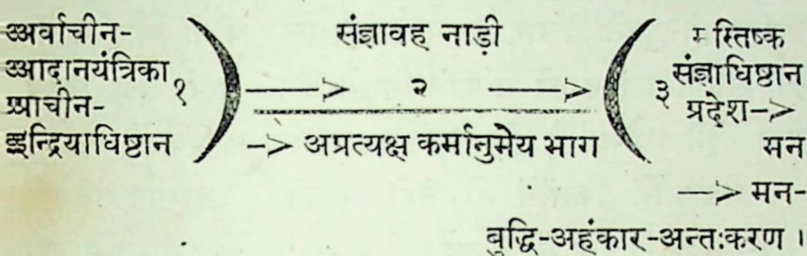
---

* न चाधिष्ठानमिन्द्रियम्। अपितु यत्तदनुविधायि, तदनुवृत्त इति। यथा बहुवातायनस्य वेश्मन एकपिधानादपरेण ग्रहणमिति। न्या. द. ३-१-९ न्याय-वार्तिक तथा देखो—न्याय मञ्जरी के स्पष्ट शब्द—

उच्यते, चक्षुस्तावत्तेज इति निर्णीतम्। ततश्चैकमेव तदधिष्ठानमेक घ्राणवंशव्यवहितमनेकमिवोपलभ्यते, भिन्नंवा तद् भवतु तेजस्तत्कार्यैक्याद् आश्रयभेदेऽप्येकमेव ; श्रोत्रमपि कर्णच्छिद्रद्वयानुस्यूतमेकमेव ; नभोदेशप्रायं वेदितव्यं कार्यैकत्वस्यापि भावात्। तेनाधिष्ठानभेदेऽपि कार्यैकत्वस्य दर्शनात्। तत्सामान्यस्य चैकत्वादेकत्वं श्रोत्रचक्षुषोः। न्याय. मं. इन्द्रिय-परीक्षा-प्रकरण

ज्ञानेन्द्रियकी रचनामें तीन अंश हैं। १—प्रांतीय आदान-यन्त्रिका (Peripheral end-organ or receptor) २—संज्ञा वाहक नाडी (Sensory Nerve) और ३—मस्तिष्कके बाहरी स्तरमें स्थित संज्ञाधिष्टान-क्षेत्र—(Sensory area on the cortex of the brain)। इनमें प्रथम अंश आदान यन्त्रिका प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देता, क्योंकि उसके चारो ओर दूसरे सहायक उपांग व्यूहित होते हैं। यह अंश इन्द्रियाधिष्ठानमें स्थित होनेसे विशिष्ट अर्थका ग्रहण करता है। विभिन्न उद्दीपनों किंवा उत्तेजनाओं (Stimuli) द्वारा ये उत्तेजित हो जाते हैं और इनमें भौतिक परिवर्तन होते हैं, जिनके फलस्वरूप संज्ञावह नाड़ीमें वेग (Impulse) उत्पन्न होता है, जो मस्तिष्ककी ओर जाता है। वेगके संज्ञाधिष्टान-क्षेत्रमें पहुंचने पर, हमको इन्द्रियार्थका भान किंवा प्रतीति (Sensation) होती है। इस विषयमें यह स्मरणीय है कि आदान-यन्त्रिकामें कुछ भी ज्ञान उत्पन्न नहीं होता, किन्तु मस्तिष्कमें ही होता है। उदाहरणतया आदान यन्त्रिका और मस्तिष्कके बीचमें स्थित संज्ञा-वाही नाड़ीको विद्युत्प्रवाह द्वारा या रसायनिक पदार्थ द्वारा उत्तेजित किया जाय, तो भी मस्तिष्कमें कुछ अनिश्चित प्रकारका भान अवश्य होगा। अर्थात् हम चाहे आदान-यन्त्रिकाको अथवा संज्ञा-वह नाड़ी-सूत्रको बीचसे कृत्रिम-रीत्या उत्तेजित करें-दोनोंका परिणाम एक ही होता है। इसलिये प्रतीति मस्तिष्कमें ही उत्पन्न होती है। कुछ-एक विज्ञानवादी कहते हैं कि अर्थकी प्रतीति या भान

होना केवल मस्तिष्क (Brain) का कार्य है; परन्तु कुछ-एक उन्हींके समान प्रमाणभूत विज्ञानवादी मानते हैं कि यह मन (Mind) का कार्य है। ये तीनों अंश भौतिक ही हैं। आखिरी-मन अतीन्द्रिय है। नीचे दिये नक्शे द्वारा प्राचीन एवं अर्वाचीन मतोंका तुलनात्मक ज्ञान विद्यार्थियोंको सरलतासे हो सकेगा।



—> मन-
बुद्धि-अहंकार-अन्तःकरण।

इस आधुनिक मतके प्रकाशमें उद्योतकरके शब्द दुहराइये— "इन्द्रियाधिष्ठान (संपूर्ण) इन्द्रिय नहीं है, किन्तु इसके पश्चात् जो (क्रिया) करता है वही कर्त्ता है। प्रत्यक्ष-ग्रहणके व्यापारमें अनुविधाता मन है और वही प्रतीति-व्यापारमें प्रधान कार्य-कर्त्ता है। भेलके शब्दोंमें कहा जाय, तो मस्तिष्क (Head) के भीतर प्राण तथा इन्द्रियाँ रहते हैं, अर्थात् जिन अधिष्ठानोंको हम देखते हैं वे ज्ञानेन्द्रियोंके सिर्फ बाह्याधिष्ठान हैं और सिरके भीतर उनके आभ्यन्तराधिष्ठान (Cortical sensory areas) रहते हैं। इससे पाठकोंको ज्ञात हो जायगा कि प्राचीनोंके अनुमान कितने सच्चे थे। यद्यपि शरीर-रचना-शास्त्रकी दृष्टिसे उनका वर्णन अपूर्ण है फिर भी मानस-शास्त्रके दृष्टिकोणसे उसमें संपूर्ण तथ्य है।

मन और ज्ञानेन्द्रियोंका एक अन्य भी वर्गीकरण मिलता है और वह भी ऐसे स्थानमें, जिसमें आशा न की जा सके। स्पष्टतया काश्यप-संहिता कहती है कि (६) "मन, चक्षु और कान दूरवर्ती प्रदेशोंमें भी कार्य कर सकते हैं, जब कि घ्राण, रसन और त्वचा बिलकुल समीपके प्रदेशमें ही कार्य-साधक हैं।" इससे ठीक मिलते-जुलते विचार परमार्थ नामक चीनी बौद्ध यात्री-कृत, सांख्य-कारिकाकी टीकामें मिलते हैं। यहां यह विशेष ध्यान देने योग्य है कि ये विचार सांख्य-कारिकाकी उपलब्ध इतर टीकाओंमें किसीमें भी नहीं मिलते। काश्यप-संहितामें उपरि-निर्दिष्ट विचार भी आयुर्वेदकी किसी उपलब्ध संहितामें नहीं मिलते। अस्तु। परमार्थ-सांख्यकारिका उस प्रसिद्ध (उभयात्मकमत्रमनः) २७ वीं कारिकाकी व्याख्या करते हुए लिखता है—

"इन्द्रियोंमें कुछ ऐसी हैं जो केवल समीपके पदार्थोंका ही ग्रहण कर सकती हैं, जब कि अन्य दूरसे भी उनका ग्रहण कर सकती हैं। इसके दो कारण हैं-(१) इन्द्रियोंका स्वयं अपनेको किसी प्रकारके खतरेमें न डालना और (२) शरीरकी रक्षा करना। नेत्र और कान दूरसे ही क्रमशः देखकर और सुनकर भयजनक स्थिति से स्वयं बच जाते हैं और शरीरको बचा लेते हैं। शेष तीन ज्ञानेन्द्रियाँ (घ्राण, रसन, और त्वचा) तथा पांच कर्मेन्द्रियां निकटवर्ती पदार्थोंको ग्रहण करके और अपने व्यापार द्वारा भयजनक पदार्थका मुकाबला करके शरीरकी रक्षा करती हैं। इन दोनों विचारोंमें बहुत कुछ साम्य है। काश्यपने मनको

बढ़ा तो दिया, परन्तु कर्मेन्द्रियों पर ध्यान नहीं दिया है, यह उचित ही है* ।

अब हम एक अन्य गौण चर्चाके प्रति पाठकोंका लक्ष्य आकर्षित करना चाहते हैं, जो कि दार्शनिकदृष्ट्या सामान्य होनेपर भी वैज्ञानिकदृष्ट्या महत्त्व की है। यह है इन्द्रियोंके नानात्व या एकत्वके सम्बन्धमें। न्याय दर्शनमें एकेन्द्रियवादीका पूर्व पक्ष उपस्थित करके उसका समुचित रूपमें खंडन किया गया है। पाठकोंके मनोरंजनके लिये उसका सारांश हम यहां उद्धृत करते हैं।

"इन्द्रिय एक ही है और वह है त्वचा; क्योंकि वह सम्पूर्ण इन्द्रियाधिष्ठानोंमें व्याप्त है और यदि त्वचा उखाड़ ली जाय, तो किसी भी विषयका ग्रहण नहीं होता। इसलिये जो सम्पूर्ण इन्द्रिय-स्थानोंमें व्याप्त है और जिसके अभावमें विषय-ग्रहण नहीं होता वह इन्द्रिय एक त्वचा ही है। यह बात मिथ्या है, क्योंकि स्पर्शको ग्रहण करने वाली त्वचा यथास्थित होनेपर भी अन्धे देख नहीं सकते। यदि स्पर्श-ग्राहक त्वचाके अतिरिक्त अन्य कोई ज्ञानेन्द्रिय नहीं है, ऐसा माना जाय, तो अंधोंको भी रूप आदि इतर इन्द्रियार्थोंका ग्रहण करनेमें समर्थ होना चाहिये † लेकिन वे ऐसा नहीं कर सकते। इसलिये केवल त्वचा ही एक इन्द्रिय नहीं है।

---

* देखो—सांख्य कारिका (डा० हरदत्त शर्मा संपादित) पृ० २९ ।

† एकमिन्द्रियम् । त्वगव्यतिरेकात् । न युगपदर्थानुपलब्धेः । विप्रतिषेधाच्च न त्वगेका ॥ न्या० द० ३-१-५२-५४-५५। और देखो—उनका वात्स्यायन-भाष्य और न्याय-मंजरी, इन्द्रिय-परीक्षा ।

पूर्वपक्षवाले कहते हैं कि इन्द्रियां तो सिर्फ त्वगिन्द्रियके अवयव-विशेष हैं और ये अवयव-विशेष ही रूप, रस, गन्ध आदि अर्थोंको ग्रहण करते हैं। इन अवयव-विशेषोंको हानि पहुंचने पर रूप आदि अर्थोंका ग्रहण नहीं हो सकता। इसका सीधा उत्तर यही है कि ऐसा कहनेमें 'वदतो व्याघातः' दोष होता है, क्योंकि एक बार सर्वत्र सामान्य तथा व्याप्त एक ही त्वगिन्द्रियका प्रतिपादन करनेके बाद फिर तुरन्त यह कहना कि उसके पांच अवयव-विशेष पाँच इन्द्रियार्थोंको ग्रहण करते हैं, यह पूर्व-प्रतिज्ञाका बाधक है। इसके सिवाय यदि एक त्वगिन्द्रिय ही सब विषयोंको ग्रहण करती हो, तब आत्मा, मन, इन्द्रिय और अर्थका संयोग होनेपर सब विषयोंका एक साथ ग्रहण हो जाना चाहिये था। परन्तु ऐसा नहीं होता। इसलिये सर्व विषयोंको ग्रहण करनेमें समर्थ कोई एक इन्द्रिय नहीं है—त्वचा ही केवल सामान्य इन्द्रिय नहीं है—अन्य भी हैं" इत्यादि।

मनुष्य (प्राणी) के पांच इन्द्रियाँ हैं, यह प्रत्यक्ष ही है। इसमें प्रमाणोंकी आवश्यकता नहीं है। किन्तु प्राणि-विद्या (Biology) और विकासवाद (Evolution theory) के वचनानुसार सम्पूर्ण प्राणियोंके पांच ज्ञानेन्द्रियाँ नहीं होतीं और सृष्टिके विकास-क्रममें प्राणियोंके सबसे पहले त्वगिन्द्रिय थी। इस प्रकारके केवल एकेन्द्रिय प्राणियोंसे क्रमशः विकास-परंपरा आगे बढ़नेपर दो, तीन, चार और अन्तमें पांच ज्ञानेन्द्रियोंसे युक्त प्राणियोंका प्रादुर्भाव हुआ है।

"सामान्यतया यों कह सकते हैं कि शरीरकी बाहरी सतहके कुछ कोष (Cells) क्रमशः विशिष्टता प्राप्त करने लगे और विशिष्ट प्रकार की उत्तेजनाओं किंवा उद्दीपनोंका प्रतिकार करने लगे। अर्थात् क्रमशः विकास-परम्परा (प्राचीनोंके गुण-परिणाम) के आगे बढ़नेपर त्वचाके कुछ अंशोंका ज्ञानेन्द्रियोंके अधिष्ठानोंके रूपमें परिवर्त्तन हो गया और उन अधिष्ठानोंमें स्थित विशिष्ट गुण-धर्मवाले कोष नाक, कान, आँख आदि (प्राचीनोंकी अतीन्द्रिय इन्द्रिय)में भली प्रकार व्यवस्थित होकर बाह्य उद्दीपनों (अथवा प्राचीनोंके अर्थ, रूप, रस, गंध आदि) को ग्रहण करके मस्तिष्कमें विविध प्रकारके वेगों (Impulses) को पहुँचाने लगे। पाठक यहाँ प्रश्न करेंगे कि इन्द्रियोंका प्रादुर्भाव किस क्रमके अनुसार हुआ? प्राणिविद्या-विशारद कहते हैं कि सबसे पहले त्वचा, इसके बाद जिह्वा, घ्राण, कर्ण और नेत्रकी उत्पत्ति हुई है * ।"

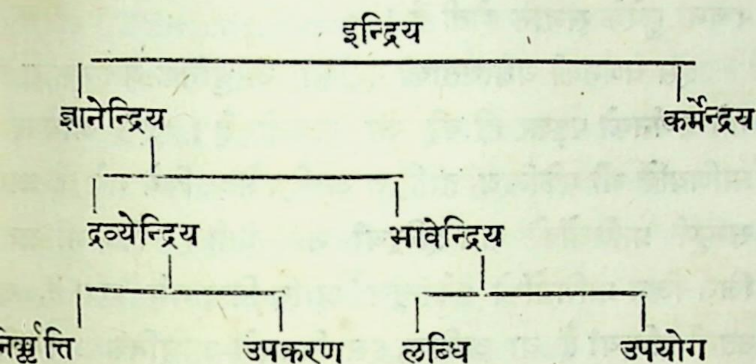
---

* In general terms, it may be said that certain cells on the surface of the body gradually become differentiated so as to respond to a number of particular stimuli. xxx The surface of the body of all animals is, from the first, sensitive to contacts, to heat and cold, very much as our skin is. Differentiation has taken place, in the course of evolution, resulting in specialised senses of taste, smell, hearing and vision (The Nature of Man and the World P. 512-516)

इस क्रमोत्पत्तिके कारण ही आज भी, प्राणि-सृष्टिमें न्यूनाधिक इन्द्रियवाले प्राणी देखनेमें आते हैं। मनुष्य प्राणीके अतिरिक्त और भी बहुतसे प्राणी पंचेन्द्रिय हैं; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। परन्तु किसी समयमें कल्पना मात्र समझा जानेवाला यह एकेन्द्रियवाद थोड़ेसे फेरफराके साथ, आजके वैज्ञानिक विचारोंके साथ मेल खाता है, और प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे सिद्ध है। भगवान चरक कहते हैं कि "त्वचा अकेली इन्द्रिय है क्यों कि वह सभी इन्द्रियोंमें व्यापक है और चेतःसमवायि है।" इस प्रकार इन्द्रियोंका एकत्व स्थापित करनेका कारण, इन्द्रियोंका और अर्थों का संयोग स्पर्शन-रूप माना जाना है, न कि पाँच ज्ञानेन्द्रियोंका निषेध। इन्द्रिय चाहे कोई भी हो उसका (इन्द्रियका) और उसके विशिष्ट अर्थका संयोग स्पर्शनके समान ही माना गया है [१०]। काश्यपने भी इस बातका समर्थन किया है। अर्थात् सभी प्रकारकी इन्द्रियोंका और उनके अर्थोंका संयोग एक प्रकार का स्पर्शन (Contact) है। इतना स्वीकार कर चरकने इस बातका विचार किया है कि यह संयोग कैसे व्याधिजनक हो जाता है। इस असात्म्येन्द्रियार्थ-संयोगकी चर्चा अन्यत्र मानसिक रोगोंके कारणोंकी चर्चाके प्रसंगमें की जायगी।

जैन-दार्शनिक-साहित्यमें इन्द्रियों, तथा इन्द्रियों और जीवों के पारस्परिक संबन्धके विषयमें कुछ महत्त्वकी बातें पायी जाती हैं। जैन भी मन, पंच ज्ञानेन्द्रिय और पंच कर्मेन्द्रियोंको मानते हैं। उनके यहाँ ज्ञानेन्द्रियोंके भी दो भेद हैं; द्रव्येन्द्रिय और

भावेन्द्रिय। द्रव्येन्द्रियोंके फिर दो अवान्तर भेद हैं—निर्वृत्ति और उपकरण। प्राणियोंके शरीरकी सतह पर दिखाई देनेवाला भाग निर्वृत्ति-विभाग है और उसके आन्तरिक विशिष्ट भाग—जिसके बिना निर्वृत्ति इन्द्रिय-विषयका ज्ञान करानेमें निष्फल होती है—का नाम उपकरणेन्द्रिय है। यह द्रव्येन्द्रिय पुद्गलमय जड़ इन्द्रिय है किन्तु भावेन्द्रिय आत्मिक-परिणाम-स्वरूप इन्द्रिय है। इसके भी दो भेद होते हैं, जिसके विस्तारकी हमको यहाँ आवश्यकता नहीं। विषय की सरलताके लिये, आर्हन्त-दर्शनोक्त यह इन्द्रियोंका वर्गीकरण एक नक्शे द्वारा बताया जाता है *।



इससे स्पष्ट होगा कि इन्द्रियोंका अधिष्ठान निर्वृत्ति-विभागके रूपमें और भीतरका अतीन्द्रिय भाग उपकरण-विभागके रूपमें बताया गया है। द्रव्येन्द्रियोंके विषयमें आगे लिखते हुए कहा गया है कि उनका बाह्य और आभ्यन्तर दृश्य सिर्फ त्वचाको

* पञ्चेन्द्रियाणि। द्विविधानि। निर्वृत्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम्। लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम्। तत्त्वार्थ सूत्र—अ. २. सू. १५-१८

छोड़कर एक-सा नहीं दिखाई देता। उसीके साथ प्राणि-भे
अनुसार द्रव्येन्द्रियोंकी आकृतिमें भी भेद देखा जाता है। तथ
एक ही जातिके प्राणियोंमें उनका आकार एक-सा ही रहता
उदाहरणके तौर पर सब प्राणियोंके कान, आँख, या नाक सम
आकारके नहीं होते। किसी भी प्राणीकी त्वचाकी बाह्य अ
आभ्यन्तर रचनामें भेद नहीं है, किन्तु कान, नाक आदिके वि
में यह बात नहीं है। उदाहरणतया कानकी आभ्यन्तर रच
कदम्ब-पुष्पके समान, आँखकी मसूरके दानेके समान, नाक
अतिमुक्तक (?) के पुष्पके समान और जिह्वाकी आभ्यन्तर सु
रचना छुरेके समान होती है।

इस वर्णनकी यथार्थताकी परीक्षा आधुनिक-मतानुसार कि
गये वर्णनको पढ़कर ही की जा सकती है। इस आधार
प्राणियोंके भी एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि भेद किये गये हैं अथ
सम्पूर्ण प्राणियोंको सब इन्द्रियाँ नहीं होतीं। फिर भी उन्हें
जिन-जिन प्राणियोंको एकेन्द्रिय आदि विभागमें रखा है, उ
उतनी इन्द्रियाँ हैं या अधिक, इस विषयमें आधुनिक प्राणिवि
और उनके बीच मतभेद होना संभव है *।

आधुनिक मतके अनुसार पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके अतिरिक्त
मनुष्यके शरीरमें दो और इन्द्रियाँ हैं। एक—प्रत्येक का
स्थित तीन अर्द्धचन्द्राकार शुण्डिकायें (Semicircu

* "चौथा कर्म ग्रन्थ" प्रथमाधिकारका परिशिष्ट "ख"
(पं० सुखलालजी द्वारा संपादित)

mals)। इन शुण्डिकाओंमें उत्पन्न होने वाले वेग, तुम्बि-
ऽभिगा (Vestibular Nerve) नामकी नाड़ी द्वारा
स्तिष्कमें जाते हैं और हमको देहके स्थान और दिशा
ासूचना देते हैं। हमारी आँखोंपर पट्टी बाँधी जाय और फिर
सी प्रकार भी हमको घुमाया जाय तो भी हम, शरीर किस
यतिमें है, हम किस दिशामें है, हम बैठे हैं, लेटे हैं या खड़े हैं,
विषयका ज्ञान प्राप्तकर लेते हैं। यदि इन शुण्डिकाओंमें रोग
जाय तो मनुष्यको उक्त ज्ञान नहीं होता, चक्कर आते हैं, जी
च्चलाता है या वमन होता है। अर्थात् प्राणि-शरीर और
रिस्थिति (Environments) के बीचके संबन्धको बनाये
खनेवाली यह भी एक विशिष्ट इन्द्रिय है। दूसरी-इन्द्रिय है
भीर स्पर्शज्ञापिका (Sense ot orientation Muscle
ense)। मांस-पेशियोंके सूत्रोंके बीच, अस्थिधरा कला
सन्धियोंमें स्थित आदान-यन्त्रिकाओं द्वारा हमको मांसपेशियों
और सन्धियोंकी स्थितिका ज्ञान होता है। हमारी त्वचा उखाड़
जाय या संज्ञाहारक (Anaesthetics) द्रव्यों द्वारा
श्चेतन करके स्पर्श-ज्ञानका नाश किया जाय तो भी यह गंभीर
र्श-संज्ञा तो बनी रहती है। यदि प्राचीनों द्वारा उपदिष्ट
पांच" संख्या ही मान्य रखनी हो, तो इन दो इन्द्रियोंको गौण
ानना होगा और पहली—स्थान दिक्ज्ञापिका का समावेश
त्रेन्द्रियमें और दूसरीका समावेश त्वगिन्द्रियमें करना होगा।
रण, नेत्रेन्द्रिय द्वारा हमको वस्तुओंके परिमाण लंबाई,

चौड़ाई, ऊंचाई (Dimension) का, दिशा (Direction) का तथा अन्तर (Distance) का परिचय मिलता है और त्वचा द्वारा विविध स्पर्शोंका अनुभव होता है।

मनुष्य पंचेन्द्रिय-प्राणी होनेपर भी कुछ प्राणियोंकी एकाध इन्द्रिय उससे भी अधिक शक्तिशाली होती है। उदाहरणके तौरपर कुत्तेकी घ्राणेन्द्रिय बहुत तेज होती है। गरुड़की आँख और घोड़ेके कान बहुत शक्तिशाली होते हैं। इतना होते हुए भी एक साधनकी दृष्टिसे मनुष्य अन्य प्राणियोंसे श्रेष्ठ है। यह साधन है उसका मस्तिष्क (Brain)। मनुष्यके शरीरके कद की तुलनामें उसका मस्तिष्क बहुत बड़ा और अतिशय विकसित होता है। अतिशय बड़े शरीर-वाले प्राणियों—हाथी, ह्वेल (Whale) आदि का मस्तिष्क भी अपेक्षाकृत छोटा होता है। इसी मस्तिष्ककी शक्तिसे मनुष्य शेष सब प्राणियोंपर अधिकार चलाता है। एकही मनुष्य-जातिमें भी सब मनुष्योंकी इन्द्रियाँ एक समान शक्तिशाली नहीं होतीं, यह बात प्रत्यक्ष है। इन्द्रियोंमें भी नेत्र और कान, एवं रसना और घ्राणके बीच खूब गाढ़ सम्बन्ध होता है। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि एक इन्द्रियके नष्ट होनेपर दूसरी इन्द्रियकी शक्ति बढ़ती हुई देखनेमें आती है। यथा—अन्धे मनुष्यके कान तथा स्पर्शेन्द्रिय अधिक कार्यक्षम हो जाते हैं। मस्तिष्कके अलावा एक दूसरी विशिष्टता भी मनुष्य-प्राणीकी सर्वतोमुखी विजय-यात्रामें कारण त है और यह है उसकी वाणी या वाग्व्यापार। इतर प्राणियोंके कंठसे ध्वनि (Sound) तो निकलती है, किन्तु वाच

(Speech) तो केवल मनुष्योंकी ही विशिष्टता है। हम जानते हैं कि जिह्वा रसनेन्द्रियके अधिष्ठानके तौरपर प्रसिद्ध है और वाग्व्यापारमें भी वह महत्त्वका भाग लेती है। कर्णेन्द्रिय और वागिन्द्रियके बीच भी गाढ़ सम्बन्ध है। बालक हमारे शब्दोंको सुन-सुनकर ही बोलना सीखता है। इस विषय में बालक यहाँ तक अनुकरण-शील होता है कि उसे जन्मसे किसी भी भाषामें बोलना सिखाया जाय, वह उस भाषामें बोलना सीख लेता है, फिर चाहे आप उसे हिन्दी सिखाइये या गुजराती, फ्रेन्च या चाइनीज। यदि बालक गूँगा हो, पर बहरा न हो, तो वह भविष्यमें कभी न कभी बोलना सीख जायेगा। लेकिन अगर वह जन्मजात बहरा हो और साथ ही गूँगा भी हो, तो भविष्यमें उसके बोलनेका संभव कम है, क्योंकि वह कर्मेन्द्रियके न रहनेसे शब्दोंको सुन ही नहीं सकता और इसी कारण उनका उच्चारण भी नहीं कर सकता। दुर्बल बच्चे भले देरसे बोलना सीखें, पर उनके कान तो स्वस्थ होने चाहिये। भगवान् काश्यपने भी इस बातपर काफी जोर दिया है [११]।

अब हम पाँच इन्द्रियोंके अर्थोंकी विवेचना करेंगे। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध, ये पाँच इन्द्रियार्थ कहे जाते हैं। आधुनिक शरीर-व्यापार-शास्त्रियोंने जिनको ज्ञानेन्द्रियोंके उद्दीपन (Stimuli) कहा है उन्हींको प्रचीनोंने अर्थ नाम दिया है। इन अर्थोंका भी स्वतन्त्र विवेचन करना चाहिये। विशेष करके दर्शन-शास्त्रोंमें उनकी चर्चा अधिक की गई है। आयुर्वेदकी संहिताओंके ये विवेच्य

विषय न होनेसे उनमें इनकी ओर केवल अंगुल्या-निर्देश किया है [१२]। दर्शनोंमें तो इनके विषयमें विवाद भी आया है। इन अर्थोंका क्रमशः विचार करते हैं

"शब्द * (Sound) अर्थात् आकाशका गुण जिसका केवल श्रोत्र द्वारा ही ग्रहण हो सकता है, दो प्रकारका है; अ, व, क, इत्यादि वर्णसमूह-स्वरूप और शंख, वेणु आदि पोली वस्तुओंसे

---

* शब्दोऽम्बरगुणः श्रोत्रग्राह्यः कार्यकारणे भयविरोधी संयोगविभाग-शब्दजः प्रदेशवृत्तिः समानासमानजातीयकारणः। स द्विविधो वर्णलक्षणो ध्वनि-लक्षणश्च। तत्र आकाशदिर्वर्णलक्षणः शङ्खादिनिमित्तो ध्वनिलक्षणश्च। तत्र वर्ण-लक्षणस्योतपत्तिरात्ममनसोः संयोगात् स्मृत्यपेक्षाद्वर्णोच्चारणेच्छा, तदनन्तरं प्रयत्नस्तमपेक्षमाणादात्मवायुसंयोगाद्वायौ कर्म जायते। सचोर्ध्वंगच्छन् कण्ठादीन-भिहन्ति। ततः स्थानवायुसंयोगापेक्षमाणात् स्थानाकाशसंयोगात् वर्णोत्पत्तिः। अवर्णलक्षणोऽपि भेरीदण्डसंयोगापेक्षाद्भेर्याकाशसंयोगादुत्पद्यते। वेणुपर्व विभागाद्वेण्वाकाशविभागाच्चशब्दाच्च संयोगविभागनिष्पन्नाद्वीचीसन्तान-वच्छब्दसन्तान इत्येवं सन्तानेन श्रोत्रप्रदेशमागतस्य ग्रहणम्। श्रोत्रशब्दयोर्ग-मनागमनाऽभावादप्राप्तस्य ग्रहणं नास्ति, परिशेषात् सन्तानसिद्धिरिति॥

प्रशस्तपाद भाष्य-गुण-ग्रन्थ

शब्दोध्वनिश्च वर्णश्च, मृदङ्गादिभवो ध्वनिः ॥१६४॥
कण्ठ संयोगादिजन्या वर्णास्ते कादयोमताः।
सर्वः शब्दो नभोवृत्तिः श्रोत्रोत्पन्नस्तुगृह्यते ॥१६५॥
वीचीतरङ्गन्यायेन तदुत्पत्तिस्तु कीर्तिता।
कदम्बगोलकन्यायादुत्पत्तिः कस्यचिन्मते ॥१६६॥

कारिकावली

त्पन्न होनेवाला ध्वनिस्वरूप। वर्णों (स्वर+व्यंजन) के मिलनेसे वाणी-भाषा (Speech–Language) बनती है और विविध प्रकारकी ध्वनिके मिलनेसे स्वर-संगीत (Tunes-Music) बनता है। शब्द तुरन्त ही नष्ट होता है और सर्वव्यापक न होनेसे केवल अपनी उत्पत्तिके प्रदेशमें ही रहता है (यद्यपि वायुकी लहरों तरंगों द्वारा वह दूरतक अवश्य फैल सकता है)। वह संयोग या विभागसे या दूसरे शब्दसे भी उत्पन्न होता है। अर्थात् इसका कारण समान-जातीय (दूसरा शब्द) भी हो सकता है या असमान-जातीय (संयोग – यथा नौबत और डंकेका, अथवा वियोग— यथा बाँस चीरनेसे) भी हो सकता है। वर्णरूप शब्द वाचा की उत्पत्ति निम्नानुसार होती है। स्मृतिके आधारपर, मन और आत्माके संयोग होनेपर वर्ण बोलनेकी इच्छा होती है। इसके बाद प्रयत्न किंवा कर्म (Motion) होता है। इस प्रयत्नके कारण कौष्ठ्य वायु फुफ्फुसान्तर्गत वायु—प्राण-वायु—(Pulmonary air) में क्रिया उत्पन्न होती है। वह वायु ऊपरकी ओर चलकर कण्ठ, तालु आदिके साथ टकराती है। वहाँ उन स्थानोंमें स्थित आकाशके साथ वायुका संयोग होनेपर वर्णोत्पत्ति होती है। वर्ण-हीन-ध्वनि किंवा आवाजकी उत्पत्ति इस प्रकार होती है—नौबत

तथा देखो— संगीतदर्पण,

स-च प्राणिभवोऽप्राणिभवश्चोभय संभवः
आद्यःकायभवो वीणादिभवस्तु द्वितीयकः।
तृतीयोऽपच वंशादिभव इत्थं त्रिधामतः

पर डंका बजानेपर, भेरीदण्डके वेगपर आधाररखनेवाले भेरी और अकाशके संयोगसे ध्वनि पैदा होती है। इसी प्रकार बांस चीरनेसे वेणुमें स्थित आकाशका विभाजन होनेसे शब्दकी उत्पत्ति होती है। संयोग और विभागसे उत्पन्न हुए शब्दसे शब्दकी सन्तान उत्पन्न होती है और जल-तरंगकी भांति चारों ओर फैलती है। यह शब्द-सन्तान कानमें आती है और वहां उसका ग्रहण होता है। इस शब्द-सन्तानके अस्तित्वमें प्रमाण यह है कि शब्द अपने स्थानमें रहता है और कान अपने स्थानमें रहते हैं। न कान शब्द के पास जाता है, न शब्द कानके पास जाता है। फिर भी शब्द सुना अवश्य जाता है—उसका ग्रहण होता है। इससे सूचित होता है कि शब्द और शब्द-प्रदेशके बीच शब्द-सन्तान होनी चाहिये; अन्यथा अप्राप्त वस्तुका ग्रहण कैसे हो सके ?

प्रशस्त-पादके वचनोंका यह भावानुवाद है। यहाँ यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि नाद-शास्त्र, (Acoustics) के विषयमें प्राचीन महर्षियोंने बहुत प्रशंसनीय अवलोकन किये हैं, जिनका सारांश संक्षेपमें देने की प्रबल इच्छा रोकी नहीं जाती। भगवान् प्रशस्त-पादके मतका अर्थ है वैशेषिकोंका मत, जिसे अधिकांश नैयायिक भी मानते हैं। लेकिन इन दोनोंसे मीमांसकोंका विरोध है। मीमांसक शब्दको नित्य, व्यापक और निराधार मानते हैं और साथ ही नाद, ध्वनि तथा स्फोट की विस्तृत चर्चा करते हैं। स्फोटवादका विशेष-विस्तृत विवरण वैयाकरणोंने भी दिया है जिज्ञासु उसे स्वयं देख सकते हैं।

मीमांसक कहते हैं कि शब्द नित्य और व्यापक होनेसे वायु-सन्तान (Air waves) अर्थात् वायुतरङ्ग द्वारा, उसकी अभिव्यक्ति (Manifestation) होती है, न कि उत्पत्ति *। † शबर स्वामी कहते हैं कि "अभिघातके परिणाम स्वपरूप, वायुमें वेग प्रेरणाएँ—(Vibrations) उत्पन्न होती हैं, जिसके परिणाम स्वरूप चारों ओरके स्थिर वायु मंडलमें समस्त दिशाओं में संयोग और विभाग उत्पन्न होते हैं। जब तक अभिघात-जन्य वेग बने रहते हैं तब तक वे (वायु तरङ्ग किंवा संयोग विभाग) चारों ओर फैलते रहते हैं। वायु प्रत्यक्ष न होनेसे उसके संयोग या विभाग (लहरें या तरङ्ग) हमारी आंखसे देखे नहीं जा सकते। जब तक ये तरंगे बनी रहती हैं तब तक

---

* शब्दोंकी नित्यानित्यताका विवेचन करते हुए वात्स्यायन वैशेषिक सांख्य, मीमांसा और बौद्ध मतोंका उल्लेख भिन्न शब्दोंमें करते हैं। आकाशगुणःशब्दोविभुर्नित्योऽभिव्यक्तिधर्मक इत्येके। गन्धादिसहवृत्तिर्द्रव्येषु सन्निविष्टोगन्धादिवदवस्थितोऽभिव्यक्तिधर्मक इत्यपरे। आकाशगुणः शब्द उत्पत्तिनिरोधधर्मकोबुद्धिवदित्यपरे। महाभूतसंक्षोभजःशब्दोऽनाश्रित उत्पत्तिधर्मको निरोधधर्मक इत्यन्ये। वा० भा० २-२-१२

† "अभिघातेन हि प्रेरिता वायवः स्तिमितानि वाय्वन्तराणि प्रतिधावमाना सर्वतोदिक्कान् संयोगविभागानुत्पादयन्ति यावद्वेगमभिप्रतिष्ठन्ते। ते च वायोरप्रत्यक्षत्वात्संयोगविभागा नोपलभ्यन्ते। अनुपरतेष्वेव तेषु शब्द उपलभ्यते नोपरतेषु। अत एव चानुवातं दूरादुपलभ्यते शब्दः। शाबर भाष्य १-१-१३

ही शब्द सुनाई देता है। उनके शांत होने पर नहीं सुनाई देता। इस लिये जिस दिशामें हवा चलती है उस दिशामें शब्द (आवाज—Sound) दूर तक सुनाई देता है। महावैयाकरण भर्तृहरि कहते हैं कि "शब्द-सन्तान प्रचयापचयात्मक है" और वक्ता की इच्छा के अनुसार प्रयत्न करते-करते वायु में क्रिया उत्पन्न होती है और विभिन्न स्थानों में टकराता हुआ एक ही वायु अनेक शब्दों के रूप में सुनाई देता है। इस वायु में वेग भी है और प्रचय भी है *। कुमारिल भट्ट कहते हैं कि "नाद वायु का गुण है अथवा वायु ही है।" पार्थ सारथि मिश्र कहते हैं कि "वायु ताल्वादि स्थानों के संयोग से शब्दगुण वाला हो जाता है। शब्द वायु का भी गुण है, यह ध्यान में रखना चाहिये †।" शिक्षाविद् भी शब्द को पवनात्मक कहते हैं, ऐसा मन्तव्य न्याय-

---

* परस्तु शब्दसन्तानः प्रचयापचयात्मकः। १०४
लब्धक्रियः प्रयत्नेन वक्तुरिच्छानुवर्तिना ॥
स्थानेष्वभिहतो वायुः शब्दत्वं प्रतिपद्यते।
तस्य कारणसामर्थ्याद्वेगप्रचयधर्मिणः ॥
\+ \+ \+
अभ्राणीव प्रचीयन्ते शब्दाख्याः परमाणवः
वाक्यपदीय १-१०९, ११२

† नादो वायुगुणो वायुर्वा यदि कल्प्यते। —श्लोकवार्तिक
वायुरेवताल्वादिस्थान संयोगात् शब्दगुणको निष्पद्यते। शब्दस्यापि वायुगुणत्वं वेदितव्यम् —न्यायरत्नाकर

मंजरीकार जयन्त भट्ट का है। अर्थात् मीमांसकों के मतानुसार जब हम बोलते हैं तब या अन्य किसी प्रकार के अभिघात के परिणाम स्वरूप वायु-मण्डल में संयोग और विभाग उत्पन्न होते हैं अथवा वाक्यपदी के कथनानुसार प्रचय और अपचय होते हैं और उनमें वेग (Speed) भी उत्पन्न होता है। यहाँ संयोग अथवा प्रचय का अर्थ वायु के सूक्ष्म परमाणुओं का एकत्र होना है और इनसे विपरीत व्यापार में अर्थात् विभाग या अपचय में उनका अलग होना, बिखर जाना अभिप्रेत है। (Condensation & Rarefection of minute air particles) अन्य शब्दों में कहा जाय, तो यह उल्लेख ध्वनि की तरङ्गों का है, जिसका आधुनिक विज्ञान ने भी समर्थन किया है। जब हम बोलते हैं, कोई बाजा बजाते हैं या किसी वस्तु को टकराते हैं, तब हवा में लहर (Waves) उत्पन्न होती हैं। ये लहरें अनुलम्ब प्रकार की (Longitudinal Waves) होती हैं। संयोगों के अनुसार उनका वेग न्यूनाधिक होता है। ये तरंगें सब दिशाओं में फैलती हैं और जब कान के पर्दे से टकराती हैं तब शब्द संज्ञा (Sensation of hearing) का हमको अनुभव होता है। संक्षेप में कहा जाय तो किसी भी हिलती या काँपती

उच्चारणशास्त्र (Phonetics) की दृष्टि से—उच्चरित होने वाले वर्णों के पाँच स्थान हैं। फुफ्फुस से स्वरयन्त्र में होकर बाहर निकलती हुई वायु इन स्थानों में टकरानेसे कंठ्य, तालव्य, मूर्धन्य, दन्त्य तथा औष्ठ्य वर्ण समुदाय उत्पन्न होते हैं। वैयाकरणों ने इस विषय की चर्चा की है।

वस्तु (Vibrating body) के, चाहे वह स्वरयन्त्र (Zarynx) की स्वरतन्त्रियां (Vocal Cords) हों, वीणा के तार हों या नौबत का चमड़ा हो, कंपनशील होने पर उनके कंपन (Vibrations) समीप की हवामें तरंगें या लहरें (Waves) उत्पन्न करते हैं। अर्थात् पवन ध्वनि का वहन (Transmission) करता है। यह कंप-सन्तान अपनी उत्पदक वस्तु के अनुसार शब्द-सन्तान बनता है, चाहे वह वर्णात्मक हो या ध्वन्यात्मक हो।

अब नैयायिकों के मन्तव्य देखें। वेद का अपौरुषेयत्व सिद्ध करने के लिये शब्दके नित्यत्व का प्रतिपादन करने वाले मीमांसकों का नैयायिक एवं वैशेषिक विरोध करते हैं। भगवान गौतम के न्यायसूत्र के द्वितीय आह्निक का द्वितीयाध्याय इस चर्चा से भरा हुआ है। न्याय-वैशेषिक के मतानुसार शब्द नित्य नहीं है। वह आकाश का गुण है और उसके फैलने में वायु निमित्त कारण है। अर्थात् शब्द-सन्तान प्रथम आकाश (Ether) में शुरू होता है, बाद में वायु में भी लहरें पैदा हो जाती हैं। ये वायु-तरंगें भी शब्द-सन्तान की वाहक हैं। इस शब्द-सन्तान में एक के बाद दूसरा, और दूसरे के बाद तीसरा, इस प्रकार क्रमशः उत्पन्न होनेवाले शब्दों में—पहले उत्पन्न हुए शब्द के बाद उत्पन्न हुआ शब्द विरोध करता है और अन्त में किसी प्रतिघाती द्रव्य के साथ टकराने पर यह शब्द-सन्तान शान्त हो जाता है। (यदि यह-शब्द सन्तान कान के पर्दे से टकरायेगा तो श्रोता को

शब्द सुनाई देगा।) यहाँ प्रतिघाती द्रव्य वाचस्पति मिश्र ने आकाश को माना है परन्तु श्रीधर ने वायु को माना है*। अर्थात् वात्स्यायन और प्रशस्तपाद के विचारों में उत्तरकालीन विचारकों को थोड़ा परिवर्तन करना उचित मालूम हुआ है।

आधुनिक भौतिक शास्त्र (Physics) के विचारों से इन प्राचीन विचारों का सर्वांश में सामञ्जस्य नहीं होता। परन्तु जिस काल में ये ग्रंथ लिखे गये थे उस समयके लोगोंकी जिज्ञासा-वृत्ति को तृप्त करने के लिये ये विचार पर्याप्त थे। प्रत्येक युग में मनुष्य अपनी कुतूहल-वृत्ति को शान्त करने के लिये प्रयत्नशील होता है। प्राचीन विचारकों ने भी अवलोकन और अनुमान के बल पर अपने विचार स्थिर किये थे जिनमें भौतिक वाद (Physics) और आधिभौतिकवाद का संमिश्रण है†। आधुनिक विज्ञान केवल भौतिक दृष्टिकोण से सम्पूर्ण प्रमेयों की व्याख्या के लिये प्रयत्नशील है। इसी कारण दोनों के विचार में भेद मालूम होते हैं। भारत और ग्रीस के प्राचीन परमाणुवाद (Atomic theory) का १९ वीं शताब्दी के परमाणुवाद ने खंडन कर दिया, तो बीसवीं सदी के विज्ञान ने उन्नीसवीं सदी के

---

* उपपादितः शब्दसन्तानः। संयोगविभागजाच्छब्दाच्छब्दान्तरं, ततोऽप्यन्यत्ततोऽप्यन्यदिति। तत्र कार्यः शब्दः कारणशब्दं निरुणद्धि। प्रतिघातिद्रव्यसंयोगस्त्वन्त्यस्य शब्द निरोधकः। वा० भाष्य २-२-३५

प्रतिघातिद्रव्यमत्र आकाशमेवेतितात्पर्यकाराः × × × प्रतिघातिद्रव्यमत्र शब्द निमित्तकारणीभूतो वायुरेव वा० भा० २-२-३५ खद्योत

† उदाहरणतया, स्फोटवाद, नादब्रह्म की उपासना आदि।

परमाणुवाद की नींव तक हिला डाली है। इसे कौन वैज्ञानिक अस्वीकार करेगा ?

शब्द के विषय में इतना विवेचन करके, शब्द के तारमन्दादि एवं तीव्रमन्दादि भेद, श्रुतिभेद, एवं ध्वनि के असाधारण धर्म का विवेचन छोड़ दिया है। उसके लिये पाठकों को संगीतके ग्रंथ देखने चाहिये *।

रूप (Colour, Luminosity)—

"केवल चक्षु द्वारा ग्रहण किये जाने वाले विशिष्ट गुण का नाम रूप है। वह पृथ्वी, जल और अग्नि में रहता है। द्रव्यों का और उनके आश्रित गुण, कर्म, सामान्य आदि का भी इसी के सहारे ग्रहण हो सकता है। आँख को अपने विषय को ग्रहण करने में चक्षुगत रूप ही सहायक होता है। यह रूप—शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश, चित्र, आदि कई प्रकारों का होता है। उदक और अग्नि (तेज) के परमाणुओं में स्थित रूप नित्य है। पार्थिव परमाणुगत रूप अग्निसंयोग होने पर परिवर्तित होता है। संपूर्ण कार्यद्रव्यों में रूप अपने समवायि कारणों के रूप के समान ही होता है और आश्रय के नष्ट होने पर वह भी नष्ट हो जाता है।" इन पंक्तियों में सब पदार्थों की अभिव्यक्ति के लिये उत्तरदायी वैशेषिक गुण

---

* इस विषय की वैज्ञानिक विवेचना के लिये देखो—सरब्रजेन्द्रनाथ सील रचित ग्रन्थ Positive Soiences of the Hindus, Chapter III

रूप, रंग अथवा चमक--का वर्णन है *। परिभाषा को परिवर्तित करके कहें तो घन, द्रव, तैजस पदार्थों में किसी न किसी प्रकार का रंग रहता है। जिसके द्वारा आँख उनका ग्रहण करती है। केवल वायवीय (Gaseous) पदार्थों में यह (रूप) नहीं होता। क्लोरीन (chlorine) नाम के वायवीय पदार्थ में रूप (रंग) है जो प्राचीनों की परिभाषा के अनुसार औपाधिक है अर्थात् उसमें स्थित तैजस परमाणुओं का परिणाम है। द्रव पदार्थों में भी औपाधिक रंग देखने में आते हैं। यथा कालिन्दी का जल। इसमें रंग अनेक हैं, किन्तु उदाहरण के लिये सिर्फ सात रंग गिनाये हैं।

रस (Taste)—

रसना द्वारा ग्रहण किये जानेवाले गुण का नाम रस है। यह पृथ्वी और जल में रहता है। यह जीवन, पुष्टि, बल और आरोग्य का कारण है। रसनागत रस वाह्य पदार्थों में स्थित रस का ग्रहण करने में उसका सहायक होता है।

* तत्ररूपंचक्षुर्ग्राह्यम्। पृथिव्युदकज्वलनवृत्तिद्रव्याद्युपलम्भकं नयन-सहकारि शुक्लाद्यनेकप्रकारं सलिलादिपरमाणुषु नित्यं, पार्थिवपरमाणुष्वग्नि-संयोगविरोधि, सर्वकार्यद्रव्येषु कारणगुणपूर्वकमाश्रयविनाशादेव विनश्यतीति।

प्र० पाद भाष्य—गुण ग्रंथ

चक्षुर्मात्रग्राह्योगुणोरूपम्। तच्च शुक्लनीलपीतरक्तहरितकपिश-च्चित्रभेदात्सप्तविधम्। पृथिव्यप्तेजोवृत्ति, तत्र पृथिव्यां सप्तविधम्। अभास्वरं शुक्लं जले। भास्वरं शुक्लं च तेजसि। तर्कसंग्रह

यह मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु और कषाय, छह प्रकार का होता है। इसकी नित्यता एवं अनित्यता की सिद्धि भी रूप की भांति है अर्थात् यह जल के परमाणुओं में नित्य है, और पृथिवी के परमाणुओं में अग्निसंयोग के कारण बदलता रहता है—इसकी उत्पत्ति या विनाश होता है। सब कार्यद्रव्यों में रस अपने समवायि कारण में स्थित रस के समान होता है और आश्रय के नष्ट होने पर नष्ट होता है।

रसों का विशेष वर्णन और उपयोग आयुर्वेद ने किया है। उनके द्वारा शरीर पर होनेवाले प्रभावों का आयुर्वेदमें वर्णन किया गया है। यह चिकित्साशास्त्र की नींव होने से इस विषय को आयुर्वेद के ग्रन्थों में देखना चाहिये। आधुनिक विज्ञानवादियों ने केवल चार मुख्य रस माने हैं, जिसका समाधान अन्यत्र दिया है *। (देखो परिशिष्ट)

गंध (Smell)—

घ्राणेन्द्रिय द्वारा ग्रहण किये जानेवाले गुण का नाम गंध है। यह पृथ्वी में (पार्थिव द्रव्यों में) रहता है। घ्राणेन्द्रिय का सहकारी होने से यह दो प्रकार का होता है—सुरभि और असुरभि। इसकी उत्पत्ति आदि भी पहले कहे गये गुणों की भांति है—अर्थात् जैसे पार्थिव परमाणुओं में अग्निसंयोग

---

* रसो रसनाग्राह्यः। पृथिव्युदकवृत्तिः, जीवनपुष्टिबलारोग्यनिमित्तं, रसनसहकारी, मधुराम्ललवणतिक्तकटुकषायभेदभिन्नः। अस्यापि नित्यानित्यनिष्पत्तयो रूपवत्।

होने पर रस की उत्पत्ति या विनाश होता है तथा जैसे कार्यगत रस कारण-गुण के अनुसार होता है और आश्रय-द्रव्य के नष्ट होने पर नष्ट होता है इसी प्रकार गन्ध को भी जानना चाहिये। गन्ध में नित्यत्व नहीं होता * । गन्ध का पृथक्करण रूप (रंग) और रस (Taste) के समान निश्चित नहीं होता। सुरभि और असुरभि ये दोनों शब्द गन्ध के मन पर होनेवाले प्रभाव को सूचित करते हैं। वास्तव में गन्ध के बहुत से प्रकार हैं और उनका मछलीके समान, रक्तके समान, आदि कई उपमावाचक शब्दों द्वारा वर्णन भी किया जाता है। परन्तु दो विभागों में वर्गीकरण निश्चित होने से अच्छा और बुरा इन्हीं में सब गन्धों को विभक्त कर दिया गया है। कौन गंध अच्छा है, कौन बुरा इसका निर्णय प्रत्येक मनुष्य स्वयं कर सकता है। क्योंकि जिस गंध को एक मनुष्य अच्छा कहता है, दूसरा उसी को बुरा कहता है। यह स्थिति रूप या रस के वर्णन में नहीं मालूम होती। गंध और मानसिक आह्लाद के बीच गाढ़ सम्बन्ध है। सुगन्धि भोज्य पदार्थ भूख बढ़ाते हैं और सुगन्धि पुष्पमाला, अनुलेपन आदि कामोद्दीपन करते हैं।

---

* गन्धो घ्राणग्राह्यः। पृथिवीवृत्तिः घ्राणसहकारी सुरभिरसुरभिश्च अस्यापि पूर्ववदुत्पत्त्यादयो व्याख्याताः॥ प्र० पाद; गुण ग्रन्थ

यथा रसः पार्थिवपरमाणुष्वग्निसंयोगादुत्पत्तिविनाशवान्, कार्येकारणगुणपूर्वक आश्रयविनाशाद्विनश्यति तथा गन्धोऽपि। नित्यत्वं पुनरस्य नास्त्येव॥ कन्दली टी०

स्पर्श (Touch)—

त्वगिन्द्रिय द्वारा ग्रहण किये जानेवाले गुणका नाम स्पर्श है। यह पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुमें रहता है। यह स्पर्श त्वगिन्द्रियका सहकारी है। जहाँ रूप होता है; वहाँ स्पर्श भी अवश्य रहता है। यह तीन प्रकारका होता है, शीत, उष्ण और अनुष्णाशीत। काठिन्य, शैथिल्य आदि संयोग-विशेष हैं और उनका ग्रहण नेत्रेन्द्रिय द्वारा एवं त्वगिन्द्रिय द्वारा भी हो सकता है। अर्थात् उनको स्पर्श-विशेष माननेकी आवश्यकता नहीं *।

इन्द्रियों और अर्थोंके विषयमें इतना विचार करनेके बाद प्रत्यक्ष ज्ञानकी चर्चा प्रारम्भ करते हैं, क्योंकि यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है और वैद्योंको रोगोंके विशेष विज्ञानके लिये भी उसकी आवश्यकता होती है। दर्शनोंमें भी इस प्रमाणके विषयमें काफी विवेचना की गयी है।

जो प्रमा किंवा यथार्थ ज्ञानका साधन हो उसे प्रमाण कहते हैं। विभिन्न दर्शनोंने प्रमाणोंकी संख्या भिन्न-भिन्न मानी है। चार्वाक केवल एक ही प्रत्यक्ष-प्रमाणको मानते हैं। बौद्ध

---

* स्पर्शस्त्वगिन्द्रियग्राह्यः। क्षित्युदकज्वलनपवनवृत्तिः त्वक्सहकारी रूपानुविधायी शीतोष्णानुष्णाशीतभेदात् त्रिविधः। अस्यापि नित्यानित्यत्वनिष्पत्तयः पूर्ववत्। 		प्र० पाद—गुण ग्रन्थ

काठिन्यप्रशिथिलादयस्तु संयोग विशेषा न स्पर्शान्तरम्। उभयेन्द्रियग्राह्यत्वात्। 		कन्दली टीका

प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाणोंको, वैशेषिक और सांख्य प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम, इन तीन प्रमाणोंको, नैयायिक प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द और उपमान, इन चार प्रमाणोंको, प्रभाकर आर्थापत्तिके साथ पाँच प्रमाणोंको और भाट्ट अभावके साथ छ प्रमाणोंको मानते हैं। इन सबके विरुद्ध जयसिंह राशि अपने "तत्त्वोपप्लव" नामक ग्रन्थमें एक भी प्रमाणको नहीं मानते और प्रमाका कोई भी साधन दूषणरहित नहीं है यह सिद्ध करनेका प्रयत्न करते हैं *।

चरक भगवानने विमान-स्थानके आठवें अध्यायमें शब्द, प्रत्यक्ष अनुमान, ऐतिह्य और औपम्य ये पाँच प्रमाण बताये हैं। उन्होंने सूत्रस्थानके ग्यारहवें अध्यायमें आप्तोपदेश, प्रत्यक्ष, अनुमान और युक्ति इन चार प्रमाणोंका और अन्यत्र प्रत्यक्ष, अनुमान आप्तोपदेश, सिर्फ इन तीन प्रमाणोंका निर्देश किया है [१५]। ऊपरसे देखने पर यह शिथिलता ही है ऐसा प्रतीत होगा, परन्तु भगवान चरकने एक वैद्यकी हैसियतसे अपने ग्रन्थका निर्माण किया था, न कि एक दार्शनिककी हैसियतसे। यह ध्यानमें रखें तो यह शिथिलता

---

* देखो—पण्डित सुखलालजी द्वारा सम्पादित "तत्त्वोपप्लव" पृ० २०। यह ग्रन्थ गायकवाड़-सरकारकी ओरसे बड़ोदा-संस्कृत-सीरीजमें मुद्रित किया गया है। इसकी शैली वितण्डावादका अनुसरण करनेवाली है। यह ग्रन्थ गुर्जर देशमें लिखा गया है और कलिकाल-सर्वज्ञ श्रीमान् आचार्य हेमचन्द्र पर भी उसका प्रभाव पड़ा था। वाणिज्य-प्रिय गुर्जर देशके इतिहासमें इस प्रकारके दार्शनिक ग्रन्थोंका निर्माण गौरवका विषय है।

दूषण-स्वरूप न रहकर, भूषण-स्वरूप हो जाती है। उन्होंने एक प्रतिभा-सम्पन्न सम्भाषकके रूपमें परवाद पदार्थोंकी चर्चाके समय पाँच प्रमाण, सदसत्की परीक्षामें आस्तिक दार्शनिकके रूपमें चार प्रमाण और रोग-परीक्षाके समय कुशल वैद्यके रूपमें तीन प्रमाण माने हैं [१६]। आधुनिक चिकित्साशास्त्र (Medical Science) भी चरकोक्त तीन प्रमाण स्वीकार करता है, बशर्ते कि आप्तोपदेशका अर्थ समकालीन या प्राचीन चिकित्सकों द्वारा निर्मित वैद्यकीय वाङ्मय (Medical Literature) किया जाय।

प्रत्यक्ष प्रमाणकी उपयोगिता समझाते हुए भगवान वात्स्यायन कहते हैं कि आप्तोपदेश द्वारा जानी हुई वस्तुको लिङ्गदर्शन * द्वारा जाननेकी और विशिष्ट चिह्नों द्वारा अनुमान करके जानी गई वस्तुको प्रत्यक्ष देखनेकी इच्छा स्वाभाविकतया रहती है। वस्तुको प्रत्यक्ष देख लेने पर द्रष्टाकी जिज्ञासा तृप्त हो जाती है। अर्थात् अन्य प्रमाणोंकी तुलनामें प्रत्यक्ष प्रमाण सबसे अधिक महत्त्वका है। प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा उपलब्ध हुए ज्ञानको अन्य प्रमाणोंकी आवश्यकता नहीं होती। (प्रत्यक्ष ज्ञानकी भी मर्यादाका वर्णन आगे आयेगा) एक ही पदार्थ एकसे अधिक प्रमाणों द्वारा भी जाना जा सकता है। ऐसी परिस्थितिमें विभिन्न प्रमाणों द्वारा प्राप्त

---

* जिज्ञासितमर्थमाप्तोपदेशात्प्रतिपद्यमानो लिङ्गादर्शनेनापि बुभुत्सते, लिङ्गादर्शनानुमितं च प्रत्यक्षतो दिदृक्षते, उपलब्धेऽर्थे जिज्ञासा निवर्तते।

वा० भा० १-१-३

होनेवाले ज्ञानमें सांकर्य उत्पन्न होनेका डर है। क्योंकि विभिन्न प्रमाण किसी एक अर्थका विभिन्न दृष्टिकोणोंसे ज्ञान कराके हमारे ज्ञानकी वृद्धि करते हैं। यथा—आप्तोपदेश, अनुमान और प्रत्यक्ष प्रमाणों द्वारा प्राप्त किया रेलवे विषयक ज्ञान, हमारे रेलवे विषयक ज्ञानको कई गुना बढ़ा देता है। इसलिये विभिन्न प्रमाण प्रमाताको प्रमेय विषयक विविध ज्ञान देकर उपकारक होते हैं और उसकी प्रमाको और उज्ज्वल बनाते हैं *।

"प्रत्यक्ष" शब्द प्रत्यक्षज्ञान एवं प्रत्यक्षकरणव्यापार दोनों अर्थोंमें प्रयुक्त होता है। प्रत्यक्षज्ञान फल है और प्रत्यक्षप्रमाण साधन है। परन्तु सामान्यतया प्रत्यक्ष शब्द अनुमान आदि इतर प्रमाणों द्वारा प्राप्त हुए ज्ञानसे विपरीत अर्थमें प्रत्यक्ष ज्ञान—इन्द्रियजन्य ज्ञानके अर्थमें प्रयुक्त हुआ मालूम होता है। †

---

* ननु एकेनप्रमाणेनाधिगतेऽर्थे, द्वितीयं प्रमाणं व्यर्थमापद्येत। अधिगतं चार्थमधिगमयता प्रमाणेन पिष्टं पिष्टंस्यात्। न, अन्यथाधिगतेः, न ब्रूमो यथा प्रत्यक्षेणार्थोऽधिगम्यते तथानुमानादिभिरपीति × × × × विषयान्तरे व्यवस्थादर्शनाच्च। न च सर्वस्मिन्नर्थे संप्लवोऽस्तीति अतो न वैयर्थ्यमिति ॥ न्यायवार्तिक १-१

† तत्राक्षमक्षं प्रतीत्य उत्पद्यते इति प्रत्यक्षम्। अक्षाणीन्द्रियाणि प्र० पाद० गुणग्रन्थ

अक्षेभ्यः परतो वर्तत इति परेणेन्द्रियादिना चोक्ष्यत इति परोक्षम्।
हेमचन्द्राचार्य-प्रमाण मीमांसा-१-१-१०

प्रत्यक्ष-ज्ञानके विषयमें विभिन्न दर्शनोंने विविध दृष्टिकोणोंसे विवेचना करके उसके लक्षण दिये हैं। एक-दूसरेका खण्डन-मण्डन भी बहुत किया है। इन सबको जिज्ञासु लोग उन-उन ग्रन्थोंमें स्वयं देख सकते हैं। यहाँ तो चरक भगवानके शब्दोंको सामने रख कर हम आगे बढ़ते हैं। उनके कथनानुसार[१७] आत्मा, इन्द्रियाँ, मन और अर्थोंके सन्निकर्षसे उसी समय जो बुद्धि (ज्ञान किंवा बोध) व्यक्त होती है वह प्रत्यक्ष-ज्ञान कहाती है। प्रत्यक्ष भी दो प्रकारका है—सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष आदि आत्म (मानस) प्रत्यक्ष हैं और शब्द, स्पर्श आदि अर्थोंका ज्ञान इन्द्रिय प्रत्यक्ष है। ये विचार न्याय-वैशेषिकसे बहुत कुछ साम्य रखते हैं, जिनमें प्रत्यक्ष-की चर्चा विस्तारसे और पद्धतिपुरःसर की गई है, जो आधुनिक मानस शास्त्रियोंके मतोंका भी अपनेमें समावेश कर लेती है। मानस-रोग-विज्ञानकी दृष्टि से भी प्रत्यक्ष-ज्ञानकी चर्चा महत्त्वकी है, क्योंकि भ्रम, विभ्रम, प्रत्यभिज्ञान आदिकी चर्चा मानसिक रोगोंको समझनेमें सहायभूत होती है।

चरक भगवान द्वारा दिया गया प्रत्यक्ष ज्ञानका लक्षण बहुत सरल है। अब इस विषयके दार्शनिक मन्तव्यको देखें। प्रत्यक्ष (इन्द्रिय-ग्राह्य किंवा ऐन्द्रियक) ज्ञान दो प्रकारका (कुछ आचार्योंके मतमें तीन प्रकारका) है। लौकिक और अलौकिक (ऐश्वर)। अलौकिक (एवं ऐश्वर) प्रत्यक्ष की चर्चा छोड़कर हम लौकिक प्रत्यक्ष का ही विचार करेंगे।

लौकिक प्रत्यक्षको उसके करण (साधन) के अनुसार

छः भागोंमें विभक्त कर सकते हैं, क्योंकि लौकिक या व्यावहारिक दृष्टिसे देखनेपर वाह्य जगत्को हम पाँच ज्ञानेन्द्रियों और छठे मन, इन साधनों द्वारा जान सकते हैं। अर्थात् पाँच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा पाँच इन्द्रियार्थोंका और मन द्वारा सुख-दुःख आदिका प्रत्यक्ष ज्ञान हम प्राप्त करते हैं *।

यहाँ एक अन्य अनुभवका भी विचार करना आवश्यक है। यह हमारा नित्यका अनुभव है कि इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्य ज्ञान किंवा प्रत्यक्ष ज्ञानसर्वदा एक ही प्रकारका नहीं होता। कभी हमको किसी वस्तुके विषयमें, यह कुछ है, इतना ही ज्ञान होता है और कभी किसी वस्तुके विषयमें हमको बहुत अधिक ज्ञान भी होता है। इस बातको लक्ष्यमें रखकर प्रत्यक्षज्ञानके दो भेद किये गये हैं, जो निर्विकल्पक (Indeterminate perception) और सविकल्पक (Determinate perception) नामसे प्रसिद्ध हैं। कहनेकी शायद ही आवश्यकता होगी कि प्रत्येक इन्द्रिय द्वारा प्राप्त होनेवाला प्रत्यक्ष ज्ञान निर्विकल्प या सविकल्प इनमें किसी एक प्रकारका हो सकता है। कान द्वारा कुछ सुनाई देता है, यह ज्ञान निर्विकल्प भी होता है और भैरवी राग गाया जा रहा है, इस प्रकारका निश्चयात्मक (सविकल्पक)

* इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम्। तद्द्विविधम्। निर्विकल्पकं सविकल्पकं च। निष्प्रकारकं ज्ञानं निर्विकल्पकम्। यथेदं किञ्चित्। सप्रकारकं ज्ञानं सविकल्पकम्। यथा डित्थोऽयं, ब्राह्मणोऽयं श्यामोऽयमिति। तर्कसंग्रह–प्रत्यक्षखण्ड)।

ज्ञान भी होता है। इस प्रकार चाक्षुष, घ्राण, रासन आदि ज्ञानोंके भी उदाहरण दिये जा सकते हैं *।

अब हम न्यायसूत्रमें दिये हुए प्रत्यक्षज्ञानके लक्षणको सम्मुख रखते हुए इस विषयका जरा विस्तारसे विचार करते हैं। भगवान गौतम कहते हैं कि "इन्द्रियों और अर्थोंके सन्निकर्षके फलस्वरूप होनेवाला, शब्दों द्वारा वर्णन न किया जा सके ऐसा, भ्रम रहित और निश्चयात्मक (संशयरहित) जो ज्ञान होता है वह प्रत्यक्षज्ञान कहा जाता है †।" इस सूत्रमें 'अव्यपदेशम्' इस शब्द प्रयोगसे सूचित होता है कि प्रत्यक्ष ज्ञानके प्रारंभमें इन्द्रियों और अर्थोंका सन्निकर्ष होनेपर हम वस्तुको नाम सहित भी पहचान सकते हैं या उसका नाम हम न जानते हों तो भी उसका ज्ञान होता है। यह कुछ है, इतना मात्र ज्ञान हो तो भी यह तो माना ही जाता है कि इससे कुछ की उपलब्धि हुई।

---

* टीका—अथ प्रत्यक्ष षड्विधम् । घ्राणजरासनचाक्षुषश्रौत्र-स्पार्शनमानसभेदात् । घ्राणजत्वादिकं तु जिघ्रामि, आस्वादयामि, पश्यामि, शृणोमि, स्पृशामि, मनसा सुखं साक्षात्करोमि, इत्यनुभव साक्षिकाजाति विशेषः तर्कसंग्रह-प्रत्यक्षखण्ड ।

† इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नंज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम् । न्यायसूत्र १-१-४

वात्स्यायनभाष्य—ग्रीष्मे मरीचयो भौमेनोष्मणा संसृष्टाः स्पन्दमाना दूरस्थस्य चक्षुषा सन्निकृष्यन्ते । तत्रेन्द्रियार्थसन्निकर्षादुदकमिति ज्ञान-मुत्पद्यते । तच्च प्रत्यक्षं प्रसज्यत इत्यत आह अव्यभिचारीति× × × दूराच्चक्षुषा

फिर चाहे उस वस्तु के नाम का—यथा फूल, रँग या ऊँट के नाम का—हमको पता न भी हो। अव्यभिचारी और व्यवसायात्मक, इन दोनों विशेषणों से भ्रम और संशय का निषेध सूचित होता है। उदाहरणतया, रेगिस्तान में दृष्टिगोचर होनेवाली मृग-मरीचिका से होनेवाला भ्रम अथवा आकाश में दिखाई देनेवाला पदार्थ धुएँ का चक्र है या धूलिका बवंडर है, इस प्रकार का हमको होनेवाला संशय प्रत्यक्षज्ञान में न होना चाहिये।

ह्ययमर्थं पश्यन्नावधारयति धूम इति वा रेणुरिति वा। तदेतदिन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नमनवधारणज्ञानं प्रत्यक्षं प्रसज्यत इत्यत आह व्यवसायात्मकमिति ॥

खद्योतटीका—वस्तुतो निर्विकल्पमेव ज्ञानं प्रत्यक्षत्वेन सूत्रभाष्याभ्यामिष्टमिति प्रतिभाति। × × × वाचस्पतिमिश्रास्तु सविकल्पमपि ज्ञानं सौत्र लक्षणेऽन्तर्भावयितुं यतन्ते। × × × भाष्यकारेण वार्तिककारेण च सविकल्पकज्ञानस्य चर्चाऽपि नैव कृता। इत्यादि वचन।

और देखो—प्रत्यक्षज्ञान-विषयक वैशेषिक मतको।

आत्मेन्द्रियार्थ सन्निकर्षाद्यन्निंष्पद्यते तदन्यत् ॥ वै० सू० ३-१-१८

आत्मन्यात्ममनसोः संयोग विशेषादात्म प्रत्यक्षम् ॥ वै० सू० ७-१-११

प्र० पा० भाष्य—अथवा सर्वेषु पदार्थेषु चतुष्टयसन्निकर्षादवितथमव्यपदेश्यं यज्ज्ञानमुत्पद्यते तत्प्रत्यक्षं प्रमाणम्। गुणग्रन्थ

कन्दलीटीका—सर्वेषु पदार्थेषु चतुष्टयसन्निकर्षाच्चतुष्टयग्रहणमुदाहरणार्थं, द्वयसन्निकर्षात् त्रयसन्निकर्षादवितथं संशयविपर्ययरहितमव्यपदेश्यं, व्यपदेशे भवं व्यपदेश्यं, नव्यपदेश्यमव्यपदेश्यं शब्दाजन्यं यद्विज्ञानं जायते तत्प्रत्यक्षं प्रमाणम् (पृ० १७७)।

इस सूत्र में निर्विकल्पक और सविकल्पक दोनों प्रकार के प्रत्यक्ष-ज्ञान का अन्तर्भाव है, ऐसा कुछ आचार्यों का मत है। परन्तु अन्य आचार्यों का कहना है कि यहाँ केवल निर्विकल्पक ज्ञान का निर्देश किया है। वात्स्यायन और उद्योतकर ने इन दोनों प्रकारों का निर्देश नहीं किया है। वाचस्पति मिश्र ने अपने गुरु त्रिलोचन के मत का अनुसरण करते हुए प्रत्यक्ष ज्ञान के इन दोनों प्रकारों का सबसे प्रथम उल्लेख किया है। बाद के नैयायिकोंने भी सर्वज्ञ, केशव मिश्र, अन्न भट्ट आदि ने एवं अन्य दार्शनिक पंडितों ने इन दोनों प्रकारों को स्वीकार किया है। निर्विकल्पक और सविकल्पक दोनों मिलकर सारा दर्शन व्यापार (Perception) सम्पूर्ण होता है। मिथिला के प्रसिद्ध नैयायिक पंडित केशव मिश्र ने सविकल्पक एवं निर्विकल्पक ज्ञान की बहुत सुन्दर व्याख्या की है। निर्विकल्पक (Indeterminate perception) प्रत्यक्ष में, इन्द्रियार्थ-सन्निकर्ष के परिणाम-स्वरूप अर्थ के नाम, जाति इत्यादि का परिचय नहीं मिलता। सिर्फ यह कुछ वस्तु है, इतना ही ज्ञान होता है। सविकल्पक (Determinate perception) में हमको इन्द्रियार्थ-सन्निकर्ष के परिणाम स्वरूप अर्थ के नाम, जाति, विशेषण या गुण और उनका संबंध, इन सब का ज्ञान होता है। इसके बाद बुद्धि की प्रवृत्ति शुरु होती है *। यथा दान, उपादान, उपेक्षा आदि कार्य होते हैं

* ततोऽर्थसन्निकृष्टेनेन्द्रियेण, निर्विकल्पकं नाम जात्यादियोजना-हीनंवस्तु मात्रावगाहि किञ्चिदिदमिति ज्ञानं जन्यते। ××× यदा निर्वि-

अर्थात् सविकल्प प्रत्यक्ष ज्ञान के व्यापार का पृथक्करण करने पर उसमें, अर्थ विषयक संपूर्ण विचारों और उन विचारों के फलस्वरूप हम अर्थ के विषय में जो कुछ निश्चित करते हैं इन सब बातों का समावेश हो जाता है ※। (इन्द्रियार्थों के सन्निकर्ष के छः प्रकार एवं अलौकिक प्रत्यक्ष और ऐश्वर ज्ञान की चर्चा यहाँ ग्रन्थ की क्षेत्र मर्यादा को ध्यान में रख कर छोड़ दी है।)

अब आधुनिक मानस-शास्त्रियोंके मतकी आलोचना करें। उनके मतके अनुसार ज्ञानेन्द्रियोंमें स्थित प्रान्तिक यन्त्रिकाओं (End organs) पर विविध प्रकारके उद्दीपनों या उत्तेजनाओंके टकरानेपर उन-उन ज्ञानेन्द्रियोंके साथ सम्बन्धित नाड़ियोंमें वेग (Nervous impulses) उत्पन्न होते हैं, जिनके मस्तिष्क (Brain) में पहुँचनेपर वहाँ विशिष्ट प्रकारका भाव, संवेदन किंवा संस्कार (Sensation) उत्पन्न होता है। विविध प्रकारके

कल्पानन्तरं सविकल्पकं नाम जात्यादियोजनात्मकं डित्थोऽयं, ब्राह्मणोऽयं, श्यामोऽयमिति विशेषणविशेष्यावगाहि ज्ञानमुत्पद्यते × × × यदोक्त सवि-कल्पकानन्तरं हानोपादानापेक्षाबुद्धयो जायन्ते तदा निर्विकल्पकं ज्ञानंकरणम्। सविकल्पकज्ञानमवान्तरव्यापारः। हानादिबुद्धयः फलम्।

तर्कभाषा—पृ० ५

※ The analysis of determinate perception brings out the elements of conception and judgment involved in the act of perception. (Indian Philosophy Vol. II 58)

By Sir S. Radhakrishnan

संवेदनों किंवा संस्कारोंके इकट्ठा होनेपर उस-उस वस्तुकी—अर्थकी प्रतीति (Perception) (दर्शन किंवा ज्ञान) उत्पन्न होती है। आधुनिकोंका यह मत प्राचीनोंके निर्विकल्पक और सविकल्पक प्रत्यक्ष-ज्ञानसे पूर्ण समानता रखता है। जैसा कि हम निर्विकल्पक ज्ञानमें देख चुके हैं यहाँ भी केवल संस्कारों द्वारा कुछ ज्ञान मिलता है, किन्तु उसमें जाति, नाम या विशेष्य-विशेष-भाव जैसा कुछ भी नहीं होता। किन्तु जब एक या अधिक इन्द्रिय-स्रोतों द्वारा अनेक संस्कार एकत्रित होते हैं तब निश्चयात्मक-विशिष्ट प्रकारका—सविकल्पक-ज्ञान उत्पन्न होता है। संस्कारोंके विषयमें थोड़ी चर्चा पहले की जा चुकी है। (देखो मनो-विज्ञान अध्याय) साम्प्रत कालमें शरीर-क्रिया-विज्ञानवादियोंने (Physiologists) प्रयोगशालामें प्रयोगों द्वारा सिद्ध करके दिखाया है कि इन्द्रियों और बाह्य उत्तेजनाओंका (अर्थों का) सन्निकर्ष होने पर, मन पर जो प्रभाव (उपलब्धि) होते हैं, वे इस बात पर अवलम्बित होते हैं कि उत्तेजनायें (किंवा अर्थ) कबतक (Duration) बनी रहती हैं, उनका तरतम भेद से प्राबल्य (Intensity) कितना है ? उनका कौनसा प्रकार (Quality)—शब्द, स्पर्श या रूप—है ? और उनका विस्तार (Extensity) कितना है ? यद्यपि इस प्रकार के प्रयोग करके निर्धारित किये गये संपूर्ण सिद्धान्त, भौतिक शास्त्र के सिद्धान्तों की भाँति सफल नहीं हुए हैं, क्योंकि मनके सब धर्म—दृष्ट एवं अपरिदृष्ट—भौतिक सिद्धान्तों (Physical Laws) के अधीन नहीं हैं। प्रत्यक्ष

ीना के परिणाम-स्वरूप जो संस्कार मन पर होते हैं वे परस्पर संयुक्त होकर संस्कार-पिण्ड बनते हैं और सविकल्पक प्रत्यक्षज्ञान के फलस्वरूप हम बाह्य पदार्थों के अस्तित्व, रूप, गंध, आकार, दिक्, स्थान आदि को निश्चयात्मक स्वरूप से जान सकते हैं। इसका नाम प्रमा (Cognition) अथवा यथार्थ ज्ञान है।

प्रत्यक्षज्ञानमें, आत्मा, मन, इन्द्रियाँ और अर्थ, इन सबकी आवश्यकता होने पर भी, इन्द्रियार्थ-सन्निकर्ष सबसे * अधिक महत्त्वका है इसलिये न्यायसूत्रकारने उस सन्निकर्षको प्रमुख स्थान दिया है। आधुनिक मन्तव्य भी उसी प्रकारका है। इस चतुष्टयमें अर्थोंको हम देख चुके हैं और उनके प्रकार एवं उनके प्राबल्य या दौर्बल्यसे मनमें होनेवाले संस्कारों के प्रत्यक्ष ज्ञानपर जो प्रभाव होते हैं उनको भी देख आये हैं। अब यह देखें कि इन्द्रियां अर्थोंका ग्रहण करती हैं या अर्थ इन्द्रियोंका ग्रहण करते हैं। इसका संक्षिप्त उत्तर यों है कि दोनों बात हो सकती हैं। जब आत्मा बाह्य पदार्थों का ज्ञान करनेकी इच्छासे प्रयत्नवान् होता है तब इन्द्रियों द्वारा वह इन्द्रियार्थोंका उपभोग करता है। परन्तु जब मन सुषुप्त होता है या व्यासक्त होता है, तब भी प्रबल अर्थों का इन्द्रियोंके साथ सन्निकर्ष होनेपर ज्ञान होता है, यथा विद्युत का चमक उठना, मेघकी गर्जना या किसी कीटका दंश। आधु-

* प्रत्यक्षनिमित्तत्वाच्चेन्द्रियार्थयोः सन्निकर्षस्य स्वशब्देन वचनम् ॥ सुप्तव्यासक्तमनसां चेन्द्रियार्थयोः सन्निकर्षनिमित्तत्वात् ॥

न्या० सू० २, १-२६-२७

निक विज्ञानवेत्ता भी 'वोलन्टरी सेन्सेशन' और 'इन्वोलन्टरी सेन्सेशन' (Voluntary sensation and Involuntry sensation) नामों द्वारा इन दोनों परिस्थितियोंका स्वीकार करते हैं। परन्तु प्रत्यक्षज्ञानकी भी सीमा होती है। इन्द्रियों और इन्द्रियार्थोंके रहते हुए भी कुछ विशेष परिस्थितियोंमें इन्द्रियार्थोंका ग्रहण नहीं हो सकता। भगवान् चरकने कहा है कि (१७) "अतिसन्निकर्ष, अतिविप्रकर्ष, आवरण, इन्द्रियोंकी कमजोरी, मनका विक्षिप्त होना, समान रूप-रँगवाली वस्तुओंका परस्पर मिल जाना, अभिभव (जैसे सूर्यके प्रकाशमें दिनमें तारे नहीं दिखाई देते) तथा अतिसूक्ष्मता—इन कारणोंसे वस्तुओंका सामने आनेपर भी प्रत्यक्षज्ञान नहीं होता"। इन कारणोंमें सब कारणोंकी सूत्ररूपमें संकलना की गई है। आँखका दृष्टान्त देकर इन कारणोंका स्पष्टीकरण किया गया है। ये कारण प्रत्येक इन्द्रियको लागू हो सकते हैं। भगवान् पतञ्जलिने महाभाष्यमें उक्त आठ कारणोंके स्थानमें छः कारण दिये हैं *। जिससे सूचित होता है कि भगवान चरक और महाभाष्यकार पतञ्जलिको एक ही व्यक्ति मान लेनेकी परंपरागत रूढ़ि निर्मूल है। सांख्य-

* यदातु तीव्रौ ध्वनिस्पर्शौ प्रबोधकारणं भवतः, प्रसुप्तस्येन्द्रियसन्निकर्ष-निमित्तं प्रबोधज्ञानमुत्पद्यते। तत्र न ज्ञातुर्मनसश्च सन्निकर्षस्य प्राधान्यं भवति, किंतर्हि ? इन्द्रियार्थयोः सन्निकर्षस्य। न ह्यात्मा जिज्ञासमानः प्रयत्नेन मनस्तदा प्रेरयति। वा० भाष्य

नार्थविशेषप्राबल्यात्। न्या० सू० २-१-३०

कारिकामें आठ कारण दिये हैं जब कि सांख्यसूत्रोंमें केवल पाँच दिये हैं। सांख्यकारिका की जयमंगला-टीकामें इन आठ कारणोंको* चार विभागोंमें समाविष्ट कर दिया है।

इनमें इन्द्रियोंकी कमजोरी और मानसिक व्यग्रता विशेष माहत्त्वके हैं। इन्द्रियोंको आहंकारिक मानने वालोंको भी इन्द्रियोंको भूताधिष्ठान मानना अनिवार्य हो गया, क्योंकि भूतों को हानि पहुंचने पर उन भूतोंसे अधिष्ठित इन्द्रियोंकी कार्य-क्षमता पर भी प्रभाव होता देखा जाता था† ।

अर्थविशेष-प्राबल्याद्धि, सुप्तव्यासक्तमनसांज्ञानोत्पत्तिरेकदाभवति । अर्थविशेषः कश्चिदेवेन्द्रियार्थः । तस्य प्राबल्यं तीव्रतापटुते । तश्चार्थविशेषप्राबल्यमिन्द्रियार्थ-सन्निकर्षविषयं, नात्ममनसोःसन्निकर्षविषयम्। तस्मादिन्द्रियार्थसन्निकर्षः प्रधानमिति।

वात्स्यायन भाष्य

षड्भिः प्रकारैः सतां भावानामनुपलब्धिर्भवति—अतिसन्निकर्षादति विप्रकर्षान्मूर्त्यन्तर व्यवधानात् तमसाऽऽवृतत्वादिन्द्रियदौर्बल्यातिप्रमाणादिति ।

महा भाष्य ४-१८३

* सांख्यकारिकामें दिये आठ कारण, जयसंगला-टीकामें निम्नानुसार चार विभागोंमें समाविष्ट किये गये हैं।

(१) देशदोष=अति दूरी तथा अति सामीप्य ।

(२) इन्द्रियदोष=इन्द्रियघात तथा मनोऽनवस्थान ।

(३) विषयदोष=सौक्ष्म्य ।

(४) अर्थान्तरदोष=व्यवधान, अभिभव और समानाभिहार ।

अन्य मतसे इन चार विभागोंके स्थानमें 'इन्द्रियदोष' और 'विषयदोष' इन दो मुख्य विभागोंमें ही आठ कारणोंका समावेश कर सकते हैं।

† आहंकारिकमपि घ्राणरसनत्वक्चक्षुःश्रोत्रंभूताधिष्ठानमेव भूतोपकारा-पकाराभ्यां घ्राणादीनामुपकारापकारदर्शनात्।

वाचस्पति मिश्र, योगभाष्य टीका, योगसूत्र ३-४१

चौथा अध्याय

प्रमाण-संग्रह

१—करणानि मनो बुद्धिर्बुद्धिकर्मेन्द्रियाणि च।
कर्तुः संयोगजं कर्म वेदना बुद्धिरेव च॥ च. शा. १-५४
करणं त्रयोदशविधं तदाहरणधारणप्रकाशकरम्।
कार्यं च तस्य दशधाऽहार्यं धार्यं प्रकाश्यं च॥ सां. का. ३२
१—(अ) सात्त्विक एकादशकः प्रवर्तते वैकृतादहंकरात्।
भूतादेस्तन्मात्रः स तामसस्तैजसादुभयम्॥ सां. का. २५

तत्र वैकारिकादहंकारात् तैजससहायात्, तल्लक्षणान्येवैकादशेन्द्रियाणि उत्पद्यन्ते॥ सु० शा० १. ४.

२—यतःसर्वपारिषदमिदंशास्त्रं तेनायुर्वेदाविरुद्धवैशेषिकसांख्यादिदर्शनभेदेन, विरुद्धार्थोऽभिधीयमानो न पूर्वापरविरोधमावहतीत्यर्थः॥ च. टीका सू. ४-३

३—एकैकाधिकयुक्तानि खादीनामिन्द्रियाणि तु।
पञ्चकर्मानुमेयानि येभ्यो बुद्धिः प्रवर्तते॥ च. शा. १-२२

चक्र०—यद्यपि सांख्ये आहङ्कारिकाणीन्द्रियाणि, यदुक्तम—"सात्त्विक एकादशकः प्रवर्तते वैकृतादहङ्कारात्" इति। तथापि मतभेदाद्भौतिकत्वमिन्द्रियाणां ज्ञेयम्। किंवा औपचारिकमेतद्भौतिकत्वमिन्द्रियाणां ज्ञेयम्। उपचारबीजं च, यद्गुणभूयिष्ठं यदिन्द्रियं गृह्णाति, तत्तद्भूयिष्ठमुच्यते। चक्षुस्तेजोगृह्णाति, तेन तैजसमुच्यते॥

भौतिकानि चेन्द्रियाणि आयुर्वेदे वर्ण्यन्ते तथेन्द्रियार्थाः।

सु. शा, १-१४

४—पंचेन्द्रियद्रव्याणि, खं वायुर्ज्योतिरापोभूरिति।

च. सू. ४-९

तत्र चक्षुः श्रोत्रंघ्राणंरसनंस्पर्शनमिति पञ्चेन्द्रियाणि।

च. सू. ८-८

५—तत्र यद्यदात्मकमिन्द्रियंविशेषात्तत्तदात्मकमेवार्थमनु
गृह्णाति, तत्स्वभावाद्विभुत्वाच्चेति।

च. सू. ८-१४

६—इन्द्रियेणेन्द्रियार्थं तु स्वं स्वं गृह्णाति मानवः।
नियतं तुल्ययोनित्वान्नान्येनान्यमिति स्थितिः॥

सु. शा. १-१५

७—पंचेन्द्रियाधिष्ठानानि—अक्षिणीकर्णौनासिकेजिह्वात्वकूचेति।

चक्र०—इन्द्रियाधिष्ठानमिन्द्रियाश्रयः। यद्यपि चाक्षिणी कर्णौ
नासापुटे द्वे, तथाप्येकेन्द्रियाधिष्ठानत्वेनैकत्वमेवेति कृत्वा 'पञ्च'
इत्युक्तम्।

च. सू. ८-९ १०

८—तत्रानुमानगम्यानां पञ्चमहाभूतविकारसमुदायात्म-
कानामपि सतामिन्द्रियाणाम्।

च. सू. ८-१३

यैरेवेन्द्रियैः प्रत्यक्षमुपलभ्यते, तान्येव सन्ति चाप्रत्यक्षाणि।

च. सू. ११-७

एकैकाधिकयुक्तानि खादीनामिन्द्रियाणितु।
पञ्चकर्मानुमेयानि येभ्यो बुद्धिः प्रवर्तते॥

च. शा. १-२२

९—मनःषष्ठानामिन्द्रियाणां त्रीणि त्रीणि विप्रकृष्टसन्निकृष्ट-
वृत्तीनि। मनश्चक्षुःश्रोत्रमिति विप्रकृष्टवृत्तीनि, घ्राणंरसनंत्वगिति
सन्निकृष्टवृत्तीनि।

का. शा. पृ. ४६

१०—तत्रैकंस्पर्शनेन्द्रियमिन्द्रियाणामिन्द्रियव्यापकंचेतः सम-
वायि। स्पर्शनव्याप्तेर्व्यापकमपि च चेतः। च. सू. ११-३८

चक्र०—ननु चक्षुरादीनि पंचेन्द्रियाणि, अतस्तेषां प्रतिनियता:
पञ्चासात्म्येन्द्रियार्थसंयोगाः। तत्कथमेकोऽसात्म्येन्द्रियार्थसंयोग
इत्याख्यात इत्याशंक्य, स्पर्शनेन्द्रियस्य सर्वव्यापकत्वंदर्शयित्वा
सर्वेन्द्रियानुगतं स्पर्शमर्थग्रहणकारणमेकरूपंदर्शयति, ततश्च तस्यैक-
रूपस्यासात्म्येन्द्रियार्थेनसंयोगादुत्पन्न एकरूपोऽसात्म्येन्द्रियार्थ-
संयोग इति दर्शयति × × ×।

तत्सर्वं स्पर्शनलक्षणमाहुः। का. शा. पृ. ४६

११—तत्रवागिन्द्रियन्त्वेकं द्विधा भिन्नं यथा करौ।
अर्द्धेन शब्दं वदति गृह्णात्यर्द्धेन तं पुनः॥ ७॥
तस्माच्च मूका भूयिष्ठं भवन्ति बधिरा नराः
वाङ्मूलं हि स्मृतं श्रोत्रं वाग्भ्रंशे भ्रश्यते हि तत्॥ ८॥

का. सं. पृ. १०

१२—पंचेन्द्रियार्थाः। शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः॥ च. सू. ८-

तत्र बुद्धीन्द्रियाणां शब्दादयो विषयाः॥ सु. शा. १-

१३—आयुर्वेदाचार्योंने 'कास' रोगकी सम्प्राप्ति समझाते हु
खांसीकी विभिन्न आवाजोंको इसी तरह समझाया है—

अधः प्रतिहतो वायुरूर्ध्वं स्रोतः समाश्रितः।
उदानभावमापन्नः कण्ठे सक्तस्तथोरसि॥ ४॥

* * *

प्रतिघातविशेषेण तस्यवायोः सरंहसः।
वेदनाशब्दवैषम्यं कासानामुपजायते॥ ७॥ च. चि. अ. १

१४--त्रिविधं खलु रोगविशेषविज्ञानं भवति तद्यथा—आप्तो-
देशः प्रत्यक्षमनुमानं चेति । च. वि. अ. ४-३

१५—द्विविधं खलु सर्वं सच्चासच्च, तस्य चतुर्विधा परीक्षा—
आप्तोपदेशः प्रत्यक्षमनुमानं युक्तिश्चेति । च. सू. ११-१७

इमानि खलु पदानि वादमार्गज्ञानार्थमधिगम्यानि भवन्ति×××
शब्दः प्रत्यक्षमनुमानमैतिह्यमौपम्यम् ××× । च. वि. ८-६।१६

१६--प्रत्यक्षं खलु तत्, यत् स्वयमिन्द्रियैर्मनसा चोपलभ्यते ।
च. वि. ४-५

अथ प्रत्यक्षम् । प्रत्यक्षं नाम तद्यदात्मना पंचेन्द्रियैश्च स्वयमुपलभ्यते, तत्र आत्मप्रत्यक्षाः सुखदुःखेच्छाद्वेषादयः शब्दादयस्त्विन्द्रियप्रत्यक्षाः । च. वि. ८-६।३१

आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानां सन्निकर्षात्प्रवर्तते ।
व्यक्ता तदात्वे या बुद्धिः प्रत्यक्षं सा निरुच्यते ॥ च. सू. ११-२०

इसकी उपयोगिता भगवान् सुश्रुतने अन्य प्रसंग में बताये हैं । उदाहरणके तौरपर देखें—

प्रत्यक्षतो हि यद्दृष्टं शास्त्रदृष्टं च यद्भवेत् ।
समासतस्तदुभयं भूयो ज्ञानविवर्धनम् ॥ सु. शा. ५-६०

१७–सतांचरूपाणामतिसन्निकर्षादतिविप्रकर्षादावरणात् करणदौर्बल्यान्मनोऽनवस्थानात्समानाभिहारादभिभवादतिसौक्ष्म्याच्च प्रत्यक्षानुपलब्धिः ॥ च. सू. ११-८

पांचवां अध्याय

मनोव्यापार-विज्ञान

मन और इन्द्रियोंके विषयमें थोड़ा विचार करलेनेके बाद अब हम मनके व्यापारोंका वर्णन प्रारम्भ करते हैं। मनके व्यापारोंके वर्णनमें विभिन्न दार्शनिक विद्वानोंने अनेक पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग किया है, इसलिये यह विषय सामान्य विद्यार्थियोंके लिये बहुत जटिल हो गया है। इस विषयके लिये आधुनिक पाश्चात्य साहित्य में भी यही परिस्थिति है, क्योंकि मनोव्यापार कई प्रकारके हैं और मनुष्यकी वाणी सीमित है, इसलिये उनके वैविध्यको प्रकट करनेमें असमर्थ है।

शारीरिक रोगोंको समझनेके लिये जैसे शरीर-विचय आवश्यक है वैसे ही मानसिक रोगोंके ज्ञानके लिये मनो-विचय आवश्यक है। परन्तु शरीरके अंगोंपांगों एवं उनके व्यापारोंका जैसी सरलताके साथ हम अध्ययन कर सकते हैं वैसी सरलतासे मनोव्यापारोंका अध्ययन नहीं कर सकते; क्योंकि शरीर दृश्य है और उसके प्रायः सभी व्यापार ज्ञेय हैं, परन्तु मन स्वयं अतीन्द्रिय है, और उसके व्यापार किंवा धर्म दृष्ट एवं अदृष्ट दोनों प्रकारके होते हैं, अतएव बिना योगाभ्यासके शायद ही समझमें आ सकते हैं।

इस सूक्ष्म एवं अतीन्द्रिय मनके व्यापारोंको समझनेका प्रयत्न करनेके पहले एक बातका स्पष्टीकरण कर लेना आवश्यक है। मन, बुद्धि, अहंकार आदिका और उनके व्यापारोंका वर्णन पढ़कर यह

नहीं मान लेना चाहिये कि हाथ, पैर आदि शारीरिक अवयवोंकी भांति ये भी मनके विभाग किंवा अङ्ग हैं, क्योंकि मन एक और अविभाज्य है। वह इतना सूक्ष्म है कि उसके विभागोंकी कल्पना ही नहीं की जा सकती। उसके व्यापार भी यद्यपि चित्त, बुद्धि आदि विभिन्न नामों द्वारा बताये ज़ाते हैं, फिर भी वह एक ही है। कुछ आधुनिक मानसशास्त्रियोंने भी उसके ज्ञेय और अज्ञेय (Conscious and Unconscious Mind) इस प्रकार दो विभाग माने हैं, पर वे भी काल्पनिक ही हैं।

तब इस अतीन्द्रिय मनका वर्णन कैसे किया जाय? शरीर दृश्य होनेसे उसका संघटन (रचना) और उसके व्यापार छात्रोंकी समझमें आ जाते हैं। उसीका उदाहरण लेकर अदृश्य मन, उसका संघटन (रचना) और उसके व्यापारोंका भी वर्णन करनेकी प्रथा विद्वानोंने अपनाई है। यहां भी उसी पद्धतिका अनुसरण किया गया है।

मनका स्वरूप समझनेके लिये हमें शरीर-शास्त्रका पुनरवलोकन करना आवश्यक होगा। स्थूलदेहमें, कई सूक्ष्मकोषों(cells)के मिलने से धातुएँ (Tissues) बनती हैं। धातुओंके रस, रक्त, मांस आदि के मिलनेसे शरीरके विभिन्न अङ्गोंउपांगों, आशयों, तंत्रों (Systems), यन्त्रों (Organs) आदि की रचना होती है। यह सम्पूर्णसमुदाय देह अथवा शरीरके नामसे पुकारा जाता है। और भी गम्भीर विचार करनेसे मालूम होगा कि यह सम्पूर्ण स्थूल शरीर, केवल एक अतिसूक्ष्म फ़लित बीज-कोष Fertilised

ovum) के विभाजन (Division) के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। गर्भाधानसे लेकर बालकका जन्म होनेतक शरीर कितना बढ़ता है और कैसे पोषण प्राप्त करता है, यह चिकित्सा शास्त्रके अभ्यासियोंको सुविदित है। जन्म होनेके बाद उसका विकास कैसे होता है, यह तो सामान्य मनुष्य भी जानता है।

मनका स्वरूप समझनेके लिए कुछ ऐसे ही शब्दोंका प्रयोग किया जा सकता है। क्या मनका भी कुछ संघटन (रचना) है? विद्वान् और द्रष्टा लोग भी मनके संघटन (रचना) का वर्णन शिष्योंकी सुविधाके लिये कुछ इसी प्रकार करते हैं, जिससे शिष्योंको उसकी कल्पना करनेमें सुविधा हो।

मनके संघटन (रचना) (Structure of mind) में भी संस्कार, या संस्कार-पुञ्ज अथवा वासनाएँ किंवा वासना-पुञ्ज रहते हैं। मन अनादि कालसे संस्कारों किंवा वासनाओंसे घिरा हुआ है। उनमें प्रत्येक जीवनके अनुभवोंके अनुसार न्यूनाधिक होता ही रहता है। शरीरकी रचनामें जो स्थान कोषोंका है वही स्थान मनकी रचनामें वासनाओं किंवा संस्कारोंका है* । इस

---

* मनकी रचना (संघटन) के विषयमें कुछ पाश्चात्य विचार—

The structure of the normal adult mind comprises many such sentiments of all degrees of strength and complexity, from what is called a passing fancy or aversion to strong, enduring, and highly complex sentiments of love and hate. In the structural basis of a complex sentiment, a number of conative dispositions may be comprised.

[Mc. Dougall—Psyology p. 118]

तुलनाको और भी आगे बढ़ाने पर यह बहुत रसप्रद हो जाती है। उदाहरणतया, देखो 'दोषधातुमलमूलं हि शरीरम्' अर्थात् शरीर=दोष+धातु+मल

=वातपित्तकफ+रस, रक्त, आदि+

पुरीष, मूत्र, स्वेद आदि

इसी प्रकार—मन=गुण+वासना समूह किंवा संस्कार+क्लेश

=(सत्व, रजस्, तामस्,)+विविध प्रकारकी

वासनायें+राग द्वेष मोह आदि क्लेश।

जैसे शरीरका मल स्वाभाविकतया बाहर निकल जानेपर शरीर निर्मल हो जाता है उसी प्रकार मनके भी मल बाहर निकल जाने पर मन अधिक स्वच्छ हो जाता है। "भाति सत्त्वं तथाऽमलम्" भगवान् चरकके ये शब्द यथार्थ ही हैं।

मनकी रचनाके विषयमें अभी तो इतनी चर्चा पर्याप्त है। उसके व्यापारोंके वर्णनके प्रसङ्गमें अधिक चर्चा आगे आती रहेगी।

मनकी रचनाका विचार करके उसके कर्म किंवा व्यापारोंका

यही प्रसिद्ध लेखक अन्य स्थानपर लिखता है कि—

The primitive cycle of purposive or mental activity seems to be (as said above) cognition, evoking feeling and conation, which conation, issuing in bodily activity, brings about a new cognition, that in turn brings a feeling of satisfaction and terminates the conation.

[Mc. Dougall—Psychology p. 104]

इन शब्दोंमें वृत्ति-संस्कार-चक्रका वर्णन किया गया है। संस्कारोंसे मनकी वृत्तियाँ बनती हैं, वृत्तियोंके परिणामस्वरूप मनके संस्कार बनते हैं।

विचार प्रारम्भ करते हैं। पहले यह जान लेना आवश्यक है कि मन कार्य कैसे करता है? भगवान् चरक कहते हैं कि[२] "मन अचेतन होनेपर भी क्रियाशील है। उसको चेतना देनेवाला आत्मा है। इसलिये मनके साथ संयुक्त आत्मा की क्रियाएँ (औपचारिक तौरपर) आत्माकी क्रियाएँ कही जाती हैं", अर्थात् जड़ (अचेतन) मन कार्य करनेकी शक्ति आत्मासे ही प्राप्त करता है। सचेतन होनेसे आत्मा कर्त्ता कहा जाता है और अचेतन होनेसे मन कार्य करनेपर भी कर्ता नहीं कहा जाता। यहां मन शब्द अन्तःकरणके अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। सांख्यमतके अनुसार भी पुरुष ही चेतन माना जाता है। बुद्धि, अहंकार, मन आदि प्रकृतिके विकार पुरुषके प्रभावसे ही कार्य करते हैं, क्योंकि वे तो जड़ प्रकृतिमें से ही उत्पन्न हुए हैं। न्यायमें भी मनको आत्माकी ज्ञानप्राप्तिका साधनरूप बताया है। वैशेषिक दर्शनमें भाष्यकार प्रशस्तपाद मनकी क्रियाओंका हेतु समझाते हुए कहते हैं कि* "जागृत पुरुषके शरीर-युक्त मनमें, आत्मा

---

* हस्तकर्मणा मनसः कर्म व्याख्यातम् ॥ वै० द० अ० ५-२-१४

सविग्रहे मनसि, इन्द्रियान्तरसम्बन्धार्थं जागृतः कर्म, आत्ममनःसंयोगादिच्छाद्वेषपूर्वकप्रयत्नापेक्षात्, अन्वभिप्रायमिन्द्रियान्तरेण विषयोपलब्धिदर्शनात्।

प्र० पाद० भाष्य (पृ० ३०८) कर्मग्रन्थ

मनसि कर्मकारणमाह × × × इच्छाद्वेषपूर्वकः प्रयत्नो जायते मनसि क्रियाहेतुरिति। —श्रीधराचार्य-कन्दली टीका

मनःक्रिया, इच्छादिविशिष्टप्रयत्नसाध्या, जागराद्यवस्थायामभिप्रायानति-

और मनका संयोग होने पर, इच्छा और द्वेषमूलक प्रयत्नों के फलस्वरूप, विभिन्न इन्द्रियोंके साथ संयुक्त होनेके लिये, कर्म उत्पन्न होता है।" अर्थात् इच्छा-द्वेषमूलक प्रयत्न मनकी क्रियाओंका हेतु है, क्योंकि आत्माकी इच्छानुसार विभिन्न इन्द्रियों द्वारा विभिन्न विषयोंका ज्ञान होता है। इस प्रकार वैशेषिक मत भी आत्मा पर अधिक जोर देता है। इच्छा, द्वेष प्रयत्न आदि आत्माके लिङ्ग हैं, इस कथनको आयुर्वेदने भी स्वीकार किया है यह हम पहले देख चुके हैं। योग दर्शन भी चित्तको प्राकृतिक मानता है। सांख्याचार्योंने जिसे 'महत्' कहा है उसीका योग दर्शनमें चित्त नामसे वर्णन किया जाता है परन्तु वे चित्त शब्दका प्रयोग बहुत विशाल अर्थमें करते हैं और उसीमें अन्तः करण बुद्धिका समावेशकर देते हैं। *इस त्रिगुणात्मक चित्तकी क्रियाओंका योग दर्शनमें बहुत सुन्दर वर्णन आया है जिसे हम आगे जाकर लिखें। योग दर्शनने भी चित्तको अचेतन माना है†।

क्रमेण चाक्षुषादिसाक्षात्कारात्, एवञ्चान्तःकरणसम्बन्धमन्तरा बाह्येन्द्रियस्यविषय-ग्राहकत्वं नास्ति, इति इच्छाद्वेषपूर्वकात्प्रयत्नान्मनसिक्रियोत्पद्यत इति।

उदयनाचार्य—किरणावली

* चित्तस्य धर्म इति—चित्तशब्देनान्तःकरणं बुद्धिमुपलक्षयति।

वाचस्पतिमिश्र, तत्त्ववशारदी, योगसूत्र, व्यासभाष्य १-१

† तदेतच्चित्तमेव द्रष्टृदृश्योपरक्तं, विषयविषयिनिर्भासं, चेतनाचेतन-स्वरूपमापन्नं विषयात्मकमप्यविषयात्मकमिवाचेतनं चेतनमिवस्फटिकमणिकल्पं

इस प्रकार विभिन्न मतों का अवलोकन करनेके बाद अब आत्माके साथ संयोग द्वारा शरीरका प्रेरण और धारण करनेवाले इस मनके व्यापारों किंवा कर्मोंको देखें [३]। भगवान चरक कहते हैं कि "चिन्तन, विचार, ध्यान, ऊह, संकल्प और अन्य जो कुछ भी, इन्द्रियनिरपेक्ष मनका ज्ञेय होता है, वह सब मनका विषय है। इन्द्रियोंका नियन्त्रण करना, अपने आपका स्वयं नियन्त्रण करना, ऊह और विचार करना यह भी मनका कार्य है। इनसे परे बुद्धिकी प्रवृत्ति होती है।" इस बुद्धिका कार्य क्या है ? इसका उत्तर देते हुए आगे चलकर विषयग्रहणकी सारी प्रक्रिया भगवान चरक निम्न प्रकारसे देते हैं।—"मन के सहित इन्द्रियों द्वारा उन उन अर्थोंका—शब्द, स्पर्श, आदिका—ग्रहण होता है। इसके बाद मन द्वारा (उस अर्थके) गुण या दोषकी विवेचना होती है। इस प्रकार मन द्वारा विवेकदृष्टिसे सोचे गये इस अर्थके विषयमें जो निश्चयात्मक बुद्धि होती है उससे (पुरुष) बुद्धिपूर्वक बोलनेमें या कार्य करनेमें प्रवृत्त होता है। जिस-जिस इन्द्रियका आश्रय करके जो-जो बुद्धि, ज्ञान, प्राप्त होता है; उस-उस इन्द्रियके नामसे उस-उस ज्ञानका निर्देश होता है, यथा चक्षु-बुद्धि, नासा-बुद्धि इत्यादि। मनके द्वारा प्राप्त हुई बुद्धि (ज्ञान) को मनोबुद्धि

सर्वार्थमित्युच्यते। तदनेन चित्तसारूप्येण भ्रान्ताः केचित्तदेव चेतनमित्याहुः। अपरे चित्तमात्रमेवेदं सर्वं, नास्ति खल्वयं गवादिर्घटादिश्च सकारणोलोकइति। अनुकम्पनीयास्ते। कस्मात्, अस्ति हि तेषां भ्रान्तिबीजं सर्वरूपाकारनिर्भासं चित्तमिति। योः सूत्र० ४-२३ व्यासभाष्यो

कहा जाता है। (यहाँ 'बुद्धि' 'शब्द' ज्ञानके अर्थमें प्रयुक्त हुआ है; और सूत्रस्थानमें इन्द्रियोपक्रमणीय अध्यायमें कही हुई बातका पुनरुल्लेख किया है।) आत्मा, मन, इन्द्रियां और अर्थोंके सन्निकर्ष-से बहुतसी बुद्धियाँ (कई प्रकारके ज्ञान) उत्पन्न होती हैं। इनका कारण विभिन्न इन्द्रियाँ, विभिन्न अर्थ और उनसे होनेवाले विविध प्रभाव हैं[४]। इस प्रकार एक दृष्टिसे "बुद्धिषट्कत्व" और अन्य दृष्टिसे "बुद्धिबहुत्व" दिखाकर भगवान चरक इसी बातको वीणाका उदाहण देकर और भी स्पष्ट करते हैं, "जिस प्रकार अंगु-लियों और वीणाके तन्तुओंके सन्निकर्षके परिणामस्वरूप बहुतसे स्वर उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार मनसे संयुक्त पाँच इन्द्रियोंके साथ उन इन्द्रियोंके अर्थोंका संयोग होनेसे विविध ज्ञान उत्पन्न होते हैं, और उनसे मनुष्य पर होनेवाले प्रभाव—सुख, दुःख, हर्ष, शोक, आदि-भी विविध प्रकारके होते हैं।"

अब इनके विचारोंकी विस्तारपूर्वक समीक्षा देखें--

इन्द्रियाभिग्रह—मन ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों पर अधिकार चलाता है। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा वह बाह्य जगतके साथ सम्पर्क में आकर विविध प्रकारका ज्ञान संपादन करता है और कर्मेन्द्रियों द्वारा विविध प्रकारके शारीरिक व्यापार चलाता है। इन सब व्यापारोंके लिये वह शरीरान्तर्गत नाड़ीतन्त्र (Nervous System) का उपयोग करता है। ज्ञानेन्द्रियोंके साथ संलग्न संज्ञावह नाड़ियाँ (Sensory Nerves) विविध प्रकारकी संज्ञाओं, शब्द, स्पर्श, रूप आदिको मस्तिष्कमें ले जाती हैं, जिस

(मस्तिष्क) के द्वारा मनको उनका भान किंवा प्रतीति (Perception) होती है। इसके अनुसार जब हमको कुछ इच्छा या अभिलाषा होती है, तब मन मस्तिष्क और चेष्टावह नाड़ियों द्वारा कर्मेन्द्रियोंको अपने-अपने कार्योंमें प्रवृत्त करता है। साधारण तौर पर दोनों प्रकारकी इन्द्रियोंका इस प्रकार नियंत्रण होनेसे हमारा जीवन सरलतापूर्वक चलता है।

स्वनिग्रह—मन इतर इन्द्रियोंका नियन्त्रण तो करता ही है, साथ ही खुद अपना भी नियन्त्रण स्वयं ही करता है, यद्यपि यह कार्य मुश्किल अवश्य है। जब मन इधर-उधर कहीं स्वैर वृत्तिसे न जाकर किसी एक विचार या वस्तुमें स्थिर होता है तब, उसने स्वयं अपना निग्रह या नियन्त्रण किया है, ऐसा कहा जाता है। ध्यान, धारणा, समाधि आदि व्यापार मनके द्वारा स्वयं अपने आपके किये हुए निग्रहको द्योतित करते हैं।

ऊह, विचार—संकल्प, चिन्तन आदि मनके इन्द्रिय-निरपेक्ष व्यापार हैं। इन व्यापारोंके परिणाम-स्वरूप ही मनको यथार्थ ज्ञान या विषयोपलब्धि (Cognition) होती है।

मनके कर्मोंके विषयमें भगवान चरकके इन विचारोंका इतना उल्लेख करके अब भगवान पतञ्जलिके विचार देखें, क्योंकि मानस-शास्त्रकी दृष्टिसे उनका बहुत महत्त्व है।

एक होने पर भी, मनुष्यका चित्त विभिन्न परिस्थितियोंमें संक्रान्त होता है। क्योंकि वह त्रिगुणात्मक है, इसलिये विभिन्न

समायोंमें विभिन्न गुणोंका उसपर आधिपत्य होता है* । ये चित्तभूमियाँ (चित्तभूमयः)† या चित्तकी अवस्थाएँ क्षिप्त (Restless), मूढ़ (Blinded), विक्षिप्त (Distracted), एकाग्र (Single-pointed) तथा निरुद्ध (Restricted) नामसे प्रसिद्ध हैं। पहली तीन अवस्थायें तीन प्रकारकी हैं और मानस-रोग-विज्ञानकी दृष्टिमें महत्त्वकी हैं, शेष दो अवस्थाएँ उच्च कोटिकी हैं और शान्तिप्रिय सात्त्विक मनुष्योंमें और योगाभ्यासियोंमें देखी जाती हैं। मनुष्यका चित्त कभी एकाग्र मालूम होता है, तो कभी विक्षिप्त, और कभी दुःख या शोक के प्रसंगमें या व्याधिके परिणामसे मूढ़ भी हो जाता है।

चित्तके धर्म भी दो प्रकारके हैं—परिदृष्ट और अपरिदृष्ट ! परिदृष्ट या प्रत्यक्ष धर्मोंमें चित्तकी पाँच वृत्तियोंका समावेश होता है। इनके नाम—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति हैं‡ । निद्राको छोड़कर शेष चार वृत्तियां हमारे जागृतवस्थाके

* चलं च गुणवृत्तमिति क्षिप्रपरिणामि चित्तमुक्तम् । इसकी भगवान चरकके शब्दोंके साथ तुलना कीजिए—स्वार्थेन्द्रियार्थ सङ्कल्पव्यभिचरणाच्चानेकमेकस्मिन्पुरुषे सत्त्वं रजस्तमः सत्त्वगुणयोगाच्च, सूत्र० अ० ८

† क्षिप्तं मूढं विक्षिप्तमेकाग्रं निरुद्धमिति चित्तस्य भूमयः ।

व्यासभाष्य-योगसूत्र १–१

‡ वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः ॥ प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ॥ प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥ विपर्ययो मिथ्याज्ञानमत

चित्तव्यापारोंका— मानोव्यापारोंका— स्पष्टीकरण करतीं हैं। उनमें प्रमाणवृत्ति या व्यापार द्वारा मन ज्ञान प्राप्त करता है। योगदर्शनमें प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम ये तीन प्रमाण माने हैं। इन्हीं तीनों प्रमाणों (Sourcees of knowedge) द्वारा मन ज्ञान प्राप्त करता है। यह यथार्थ ज्ञान किंवा प्रमा की बात हुई। पर कभी उसको विपर्यय किंवा मिथ्या ज्ञान (भ्रम, Delusion) होता है। उसके कारणों की चर्चा यहां पर अप्रासंगिक है। कभी चित्त उपर्युक्त दोनों व्यापारोंको छोड़कर विकल्प-व्यापारमें— कल्पना (Imagination) में–लीन हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप शब्दज्ञान होता है परन्तु किसी वस्तुविशेषका बोध नहीं होता। वह सिर्फ कल्पनाके प्रदेशमें विहार करता है। वास्तविक जगत्के साथ उसका मानो कोई सम्बन्ध ही नहीं रहता। स्मृतिव्यपार सबको सुविदित है। उसके द्वारा चित्त अपने अनुभवोंको जागृत करके उनसे लाभ उठाता है। निद्रा भी योगदर्शनके मतके अनुसार चित्तव्या-पार है। इन पाँच प्रकारके व्यापारोंमें प्रमाण और स्मृति जितने अधिक प्रबल होते हैं, उतना ही मानसिक स्वास्थ्य अधिक अच्छा माना जाता है। पागल मनुष्योंमें विपर्यय और विकल्पवृत्तियां अतिशय प्रबल हो जाती हैं, यद्यपि स्वस्थ चित्तवालोंमें भी ये

द्रूपप्रतिष्ठम् ॥ शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ॥ अभावप्रत्ययाव-लम्बना वृत्तिर्निद्रा ॥ अनुभूतविषयासंप्रमोषः स्मृतिः ॥ योगसूत्र० १—८,—११

न्यूनाधिक मात्रामें देखी जाती हैं। निद्रावृत्ति कुछ मानसिक रोगोंमें कम हो जाती है और कुछ रोगोंमें बढ़ जाती है। संक्षेपमें, मानसिकरोगविज्ञानकी दृष्टिसे रोगीकी चित्त वृत्तियोंका अध्ययन करना परम आवश्यक है।

ये चित्त व्यापार सर्वदा शुद्ध स्वरूपमें नहीं होते रहते। वे भी अन्य कई प्रकारके क्लेशोंसे पीड़ित होते हैं। यहाँ पाठक प्रश्न करेंगे कि "इन चित्तवृत्तियोंको तो जाना, परन्तु उन चित्त व्यापारोंका कारण क्या है?" योगदर्शनमें इसका उत्तर दिया है। इतर दर्शनोंने भी उसका समर्थन किया है कि चित्त-व्यापारोंका कारण चित्तके संस्कार हैं *। हर एक चित्त व्यापार से मनपर विशेष प्रकारका संस्कार किंवा छाप (Trace) पड़ती है। ये ही संस्कार फिर एकत्र होकर चित्तमें व्यापारोंको उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार संस्कारोंसे वृत्तियाँ और वृत्तियोंसे संस्कार—बीजसे वृक्ष और वृक्षसे बीज—उत्पन्न होता है। यह वृत्ति-संस्कार चक्र अनादिकालसे चला आरहा है। दूसरे शब्दोंमें कहा जाय, तो जैसे संस्कार वैसी वृत्तियाँ और जैसी चित्तवृत्तियाँ वैसे संस्कार होते हैं। "तथा जातीयकाः" विशेषण बहुत महत्त्वका है। अच्छी वृत्तियों द्वारा अच्छे संस्कार उत्पन्न होते हैं और अच्छे संस्कार चित्तमें उत्तम प्रकारकी प्रवृत्तियोंको पैदा करते हैं। उदाहरणतः श्रवणेन्द्रियसे अच्छे भाषण या संगीत के उच्च

* तथा जातीयकाः संस्काराः वृत्तिभिरेव क्रियन्ते संस्कारैश्च वृत्तय इति ॥ एवं वृत्तिसंस्कारचक्रमनिशमावर्तते। योगसूत्र—व्यासभाष्य १-५

संस्कार उत्पन्न होते हैं या गालीके—अपशब्दोंके—नीच संस्कार भी उत्पन्न होते हैं। इन संस्कारोंसे उनके समान ही उच्च किंवा नीच चित्तव्यापारों की उत्पत्ति होती है। इसी सिद्धान्त को ख्यालमें रखते हुए शिक्षण-शास्त्रके पंडित, बालकोंमें शिक्षण द्वारा उच्च प्रकारके संस्कार उत्पन्न करनेके प्रयत्न करते हैं, जिससे बालकके चित्तव्यापार उच्चकोटिके बने। मानस-रोग-विज्ञानमें रोगीके जीवनका इतिवृत्त जानते समय उसके संस्कारोंके विषयमें भी ख्याल करना पड़ता है, जिससे उसकी चित्त वृत्तियोंको भली प्रकार समझ सकें और उनकी कमियोंका भी ज्ञान प्राप्त कर सकें।

अब तक हमने चित्तकी पाँच वृत्तियों किंवा परिदृष्ट धर्मों (Perceivable)—प्रत्यक्ष धर्मों–की विवेचना की। अब उसके अपरिदृष्ट—परोक्ष (Inferable)—धर्मोंकी विवेचना करेंगे। "निरोध, धर्म, संस्कार, परिणाम, जीवन, चेष्टा और शक्ति, ये सात चित्तके परोक्ष धर्म हैं *।" अर्थात् हम आगम (आप्तोपदेश)

* चित्तस्य द्वौ धर्मौ परिदृष्टाश्चापरिदृष्टाश्च। तत्र प्रत्ययात्मकाः परिदृष्टाः। वस्तुमात्रात्मका अपरिदृष्टाः। ते च सप्त भवन्त्यनुमानेन प्रापितवस्तुमात्रसद्भावाः।

निरोधा धर्मसंस्काराः परिणामोऽर्थ जीवनम्।
चेष्टा शक्तिश्च चित्तस्य धर्मा दर्शनवर्जिताः॥ इति॥

योगसूत्र—व्यासभाष्य ३-१५

चित्तस्येति—परिदृष्टाः प्रत्यक्षाः। अपरिदृष्टाः परोक्षाः। तत्र प्रत्ययात्मकाः प्रमाणादयः। × × × सप्तापरिदृष्टात्कारिकया संगृह्णाति—

थवा अनुमान द्वारा उनका अस्तित्व अवश्य है (वस्तु मात्रा-
तकाः), इतना ही जान सकते हैं। इनका क्रमशः विचार
रते हैं।

निरोध—यह मनकी एक विशेष अवस्था है जिसमें बहुत ही
म संस्कार शेष रहते हैं और जिसमें नयी वृत्तियाँ नहीं उत्पन्न

रोधेति। निरोधो वृत्तीनामसंप्रज्ञातावस्था चित्तस्यागमतः संस्कारशेष
वोऽनुमानतश्च समधिगम्यते। धर्मग्रहणेन पुण्यापुण्ये उपलक्षयति।
चित्तकर्मेति पाठः। तत्रापि तज्जनिते पुण्यापुण्ये एव गृह्येते। ते
गमतः सुखदुःखोपभोगदर्शनाद्वानुमानतो गम्येते। संस्कारस्तु स्मृते-
मीयते। एवं त्रिगुणत्वाच्चित्तस्य चलं च गुणवृत्तमिति प्रतिक्षणं परिणामोऽनु-
यते। एवं जीवनं प्राणधारणं प्रयत्नभेदोऽसंविदितश्चित्तस्य धर्मः श्वास-
श्वासाभ्यामनुमीयते। एवं चेतसश्चेष्टक्रिया यथायथा तैस्तैरिन्द्रियैः
रिरप्रदेशैर्वा संप्रयुज्यते। सापि तत्संयोगादेवानुमीयते। एवं शक्तिरप्यु-
तानां कार्याणां सूक्ष्मावस्था चेतसोधर्मः स्थूलकार्यानुभवादेवानुमीयत इति।

वाचस्पति मिश्र—तत्त्ववैशारदा—व्यास भाष्य ३—१५

निरोधो वृत्तिनिरोधः। स संस्कारजनकत्वेन निवृत्तियत्नवद्भावरूपो
मीयते इति प्रागुक्तम्। धर्मोऽदृष्टसामान्यं भोगवैचित्र्यादनुमीयते।
कारश्च स्मृत्या। परिणामश्चित्तस्योपचयादित्र्युत्कर्षादिभिरनुमीयते।
वनं प्राणनादिरूप व्यापारः। स सुषुप्तावपि श्वासप्रश्वासाभ्यामनुमीयते।
या चित्तस्य संचारः सच जाग्रत्स्वप्न सुषुप्त्यादौ चित्तस्य चक्षुरादि देश
योगवियोगाभ्यामनुमीयते। × × × शक्तिर्ध्यानादिसामर्थ्यम्।
त्कार्यानुमेयमिति दिक्॥ नागोजीभट्ट—योगसूत्रवृत्ति-३-१५

होतीं। परिणामतया अन्य संस्कार भी उत्पन्न नहीं होते। इस अवस्था तक मनको नियन्त्रण किंवा निरोध (Restriction) में लाया जा सकता है, यह हम आगम एवं अनुमान द्वारा जान सकते हैं, क्योंकि सामान्य मनुष्यका मन इस उच्च भूमिका तक नहीं पहुँच सकता है।

धर्म—चित्तपर धर्म-अधर्म, पुण्य-पाप आदिका प्रभाव होता है। इसका आगम अथवा अनुमान द्वारा—मनुष्यको अनुभव होता है या सुखदुःख इस बातसे जाना जा सकता है।

संस्कार—चित्तके संस्कारोंका मनुष्यकी स्मरण-शक्तिसे अनुमान हो सकता है, क्योंकि बिना संस्कारके स्मृतिका अस्तित्व नहीं होता। इन संस्कारों (अच्छे—या बुरे) से मनुष्यके चित्तका संघटन (रचना) प्रकारका सूचित होता है।

परिणाम—चित्त त्रिगुणात्मक होनेके कारण अतिशय चंचल है। प्रतिक्षण सत्त्व, रज और तम ये तीनों गुण बारी-बारीसे उसपर आधिपत्य जमाकर उसकी वृत्तियोंपर भी प्रभाव डालते हैं। इन वृत्तियोंके उत्कर्ष किंवा अपकर्षसे, किस क्षण कौन सा गुण चित्तपर आधिपत्य जमाये हुए हैं, इसका हम अनुमान कर सकते हैं।

जीवन अथवा प्राणधारण भी चित्तका एक परोक्ष धर्म है। श्वास प्रश्वास द्वारा इसका अनुमान हो सकता है। आयुर्वेद और वैशेषिक दर्शनमें इसको आत्मलिङ्ग कहा है। यहां श्वासोच्छ्वास क्रियापर चित्तका जो प्रभाव होता है उसका निर्देश किया गया है।

मन उत्तेजित होता है तब श्वासोच्छ्वास बढ़ते हैं। इसके ीत जब मन विषादग्रस्त होता है तब यह क्रिया मन्द हो ती है। उन्मत्तता, क्रोध, भय आदि मानसिक भावोंका श्वास-ापर प्रत्यक्ष प्रभाव होता है। इस प्रकार न केवल प्राणवायु की, ंतु समान, उदान, आदि वायुओंकी क्रियाके साथ भी मनका ब्न्ध होता है। इस मानसिक धर्मका हम केवल अनुमान कर सकते हैं।

चेष्टा—से शारीरिक व्यापार दृष्टिगोचर होते हैं, परन्तु चित्त चेष्टा किंवा प्रयत्नको तो हम अनुमानसे ही जान सकते हैं। उदा-रणतया, चित्त किस इन्द्रिय—चक्षु, नासिका या कर्ण—द्वारा विषय ी ग्रहण करता है, या चेष्टावह नाड़ियों द्वारा शरीरके किस भाग ो चलाता है, यह जानकर हम मनकी चेष्टा जान सकते हैं।

शक्ति—जिस प्रकार शारीरिक शक्ति किंवा सामर्थ्यका अनु-ान, दौड़ना, भार उठाना, कुश्ती लड़ना इत्यादि शारीरिक यापारोंसे हो सकता है, उसी प्रकार मानसिक शक्ति किंवा मनो लका अनुमान ध्यान जैसे मनोव्यापारसे हो सकता है। जिस कार प्रत्येक मनुष्यके शरीरमें एक-सी शारीरिक शक्ति Physical strength) नहीं होती, उसी प्रकार प्रत्येक नुष्यके मनमें भी एक-सी मानसिक शक्ति नहीं होती। कई ार दुर्बल शरीर वाले पुरुषोंका मन सबल होता है, तो कई बार बल शरीर वाले मल्ल-तुल्य मनुष्योंकी मानसिक शक्ति कम ती है। ऐसी हालतमें इस परोक्ष चित्त-धर्मका माप कैसे

निकाला जा सके? इसका उत्तर है—उसकी ध्यान करनेकी शक्तिसे। उसके चित्तकी एकाग्रता कब तक टिकी रहती है, इससे उसकी शक्तिका माप निकलता है। कारण, दीर्घकाल तक एकाग्र चित्तसे कार्य करनेवाले मनुष्य महापुरुष और सत्त्वशाली रूपसे प्रसिद्ध हो चुके हैं।

मनके व्यापारों किंवा कर्मोंके विषयमें भगवान चरक एवं पतञ्जलिके विचार जान लेनेके बाद अब उन (मानसिक) व्यापारोंके विषयमें हम विशेष विचार करते हैं, क्योंकि कई विद्वानों द्वारा विचार किये जानेपर भी इस विषयमें अब भी बहुत मत-भेद चला आ रहा है। भारतवर्षके दार्शनिकों एवं पाश्चात्य मानस-व्यापार-शास्त्रियोंके बीच मनोव्यापारके विषयमें मत-भेद है। ऐसी स्थितिमें सामान्य विचारकोंकी तो इस विषयमें गति ही कैसे हो सकती है। फिर भी छात्रोंके लिये उपयुक्त थोड़ी-सी बातोंका यहाँ संग्रह करेंगे। ऐसा करनेमें माधवकारकी सदुक्तिका हमने अनुपालन किया है।

मानस व्यापारोंके विषयमें विवेचना करनेमें पूर्व और पश्चिमके विचारकोंमें महत्त्वपूर्ण अन्तर यह देखनेमें आता है कि पूर्वके विचारक मूलसे शाखाओंकी ओर चलते हैं, जब कि पश्चिमके विचारक शाखाओंसे मूलकी ओर जाते हैं। शरीर-शास्त्र एवं मानस-शास्त्र इन दोनोंके इतिहास इस कथनका समर्थन करते हैं। पूर्वके शरीर शास्त्री (Anatomists) पुरुष और प्रकृति, सर्गोत्पत्ति, राशिपुरुष, गर्भोत्पत्तिकर भावों, धातुओं और शरीरके अङ्ग-

उपाङ्गोंकी गिनती करके शेष बातोंका विस्तार गुरु और शिष्यके जिम्मे छोड़ देते हैं। उधर पाश्चात्य शारीर-वेत्ता स्थूल देहकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातोंको इकट्ठा करके उनका विस्तृत वर्णन करते हैं, जिसमें शरीरकी अस्थियों, सन्धियों, मांसपेशियों, आशयों, धातुओं तथा मस्तिष्क, हृदय जैसे महत्त्वके अङ्गोंके वर्णनका समावेश होता है। इसी प्रकार पूर्वके दार्शनिक मनका वर्णन करते हुए, आत्मा, मन, इन्द्रियों और अर्थोंमें आत्मापर प्रधानतः और मनपर गौण रूपमें जोर देते हैं तथा इन्द्रियोंके विषयमें थोड़ा विचार करके और अर्थोंका नाम-निर्देश करके शेष सब विचार गुरु-शिष्यपर छोड़ देते हैं। परन्तु पाश्चात्य मानस शास्त्री-अर्थोंके वैविध्यको पहले देखकर इन्द्रियोंकी विस्तृत परीक्षा परीक्षणोंसहित प्रारम्भ करते हैं और मन, इन्द्रियों और अर्थोंके सम्बन्धपर विवेचना करते हुए नहीं थकते। उनके लिये मनसे भिन्न आत्मा माना जाय या नहीं, यह एक प्रश्न है। इसके अतिरिक्त ज्ञाताकी अपेक्षा ज्ञेयपर वे लोग विशेष जोर देते हैं; इतना ही नहीं, वे इन्द्रियों और अर्थोंके बीचके सम्बन्धका स्पष्टीकरण यथासम्भव गणित-शास्त्रके सिद्धान्तोंके अनुसार करना चाहते हैं* ।

इतनी भूमिकाके बाद अब हम मानस-व्यापारोंकी विस्तारसे आलोचना करते हैं। सब विचारकोंकी सम्मतिके अनुसार मानस-व्यापारोंकी तीन विभागोंमें विचारणा कर सकते हैं, यद्यपि सामान्य संयोगोंमें मन इतने वेगसे काम करता है कि उसके व्यापारोंको

*—देखो वेबरका नियम (Weber's Law)

एक-दूसरेसे भिन्न करना और पौर्वापर्य (Sequence) का निश्चय करना बहुत मुश्किल होता है। गुल्मकी भाँति वे अन्तर्ग्रथित हैं इसलिये बिना प्रबल आन्तर निरीक्षण (Introspection) के सामन्य मनुष्य उनको नहीं समझ सकते। मानस व्यापारोंके इन तीन विभागोंका वर्णन करनेके पूर्व उनका एकाध उदाहरण दे देना उपयुक्त होगा। कल्पना कीजिये, मुझे खबर मिलती है कि मेरा पुत्र परीक्षामें उत्तीर्ण हो गया। इस समाचारको सुनते ही मुझे हर्ष होता है और खबर लानेवालेको, अपने पुत्र और अपने नौकरोंको में विविध प्रकारके पारितोषिक बाँटता हूं। इसके विपरीत एक उदाहरण देखें। "मेरा पुत्र मर गया" इस आशयके तारके सन्देशको पाते ही मैं विषादग्रस्त हो जाता हूं, मेरी आँखोंसे आँसू बहने लगते हैं और सब काम छोड़कर मैं बिस्तरपर जा पड़ता हूं। इन दोनों उदाहरणोंमें अर्थोपलब्धिके परिणामस्वरूप मुझपर होनेवाले प्रभावों और उनके परिणामस्वरूप होनेवाली मेरी प्रवृत्तियांका वर्णन आ जाता है। मनको अर्थोपलब्धि होते ही तुरन्त ही,—विभिन्न प्रकारकी भावनाओंका उद्भव होता है और मनकी प्रवृत्ति—चेष्टा किंवा प्रयत्न—विभिन्न रूपोंमें प्रकट होती है।

मानसिक व्यापारोंके तीन विभाग अब सरलतासे समझमें आ सकेंगे। ये विभाग निम्न हैं—

(१) ज्ञानप्रधान व्यापार (Cognitive processes)

(२) भावनाप्रधान व्यापर (Affective processes)

(३) चेष्टाप्रधान व्यापार (Conative processes)

इन तीनों व्यापारोंमें भी अवान्तर गौण व्यापार होते हैं; परन्तु "प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति" इस न्यायके अनुसार केवल तीन विभागोंमें मनोव्यापारोंको समावेश करनेका यह प्रयास है। हमारी सामान्य जागृत अवस्थाके मनोव्यापारोंका इनमें समावेश हो जाता है। सुषुप्त, सुप्त या निरूद्ध मनके व्यापारोंका किंवा रूग्ण मन (Diseased mind) के व्यापारोंका इनमें समावेश नहीं होता *। अब क्रमशः इनका विशेष विवरण करते हैं।

ज्ञान प्रधान व्यापार—इस व्यापार समूहमें अन्य कई गौण व्यापारोंका समावेश हो जाता है। उदाहरणतया, एञ्जिनीयर, घर

* निद्रा और स्वप्न-विषयक विवेचन आगे आयेगा। शेष रहा मनकी निरूढ़ावस्थाके व्यापारों किंवा वृत्तियोंका ज्ञान जो केवल योगियोंको ही होता है। पहले योगदर्शनमें कही हुई पाँच चित्त-भूमियों किंवा मनकी अवस्थाओंका उल्लेख किया है। उनमें मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त एवं एकाग्र इन चार अवस्थाओंके चित्तके व्यापारोंका वर्णन आधुनिक मानस-विज्ञान करता है परन्तु निरूढ़ावस्थाका वर्णन योगदर्शनको छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। हाँ, कुछ एक निगूढ़तत्त्ववादी (Mystces) अपने अनुभवोंका कभी-कभी शिष्योंके सामने वर्णन करते हैं। इस तत्त्वोपप्लव वादियों (Agnostics) के जमानेमें उस अवस्थाका शायद ही किसीको अनुभव है। इसलिये जिज्ञासुओंको उन ग्रन्थोंका अवलोकन करना चाहिए या योगके प्रखर अभ्यासियोंकी शरण लेनी चाहिए। योगसिद्धियाँमन के सामान्योत्तर (Supranormal) व्यापार हैं, जिनकी चर्चा अन्यत्र आवेगी। (देखो—अध्याय आठवाँ)

बनानेके पहले, ईंट, चूना, बालू, पानी, लकड़ी आदि इकट्ठी करता है और उनको सुरक्षित स्थानमें रखता है। इसके बाद एक निश्चित योजनाके अनुसार उन सब पदार्थोंको विचारपूर्वक इस तरह रखता है कि जिससे घर तैयार हो जाता है। इसी प्रकार मन इन्द्रियों द्वारा अर्थोंको जान कर उनका संग्रह करता है और उनके विषयमें विशेष विचार करके एक विशिष्ट प्रकारका निश्चय करता है। इन ज्ञानव्यापारोंमें अर्थसंग्रह, विचार, चिन्तन, ऊह (तर्क), कल्पना, स्मृति, प्रमाण-परीक्षा, निर्णय, प्रमा, बुद्धि आदिकी तात्त्विक चर्चाका समावेश हो जाता है।

परन्तु दर्शनोंमें इन व्यापारोंके विषयमें थोड़ा मत-भेद है। आयुर्वेदने "सार्वपरिषद शास्त्र" होनेके नाते विभिन्न स्थानोंसे कुछ न कुछ ग्रहण किया है, ऐसा माना जाय अथवा यह माना जाय कि भगवान चरकने जब अग्निवेशतन्त्रका प्रतिसंस्कार किया तब वायु-मण्डलमें इस प्रकारके विचार व्याप्त थे और दार्शनिक विचारणा, विशेष प्रकारकी विचारशृङ्खलाओंके कारण दर्शनोंके आधुनिक स्वरूपमें मर्यादित नहीं हो गयी थी, यह बात हम पाठकों के स्वयं-निर्णयके लिये छोड़ देते हैं। किसने किससे लिया और कितना लिया इसका निर्णय करना कठिन है और इस ग्रन्थके उद्देश्यकी सिद्धिके लिये उसकी आवश्यकता भी नहीं है।

ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंके विषयमें मतभेद नहीं है, परन्तु अन्तःकरण और विषयों किंवा अर्थोंका ज्ञान किसको और कैसे होता है, इस विषयमें दर्शनोंमें मतभेद है। आयुर्वेदके छात्रोंके

लिये थोड़ी जानकारी यहाँ दी है। सांख्यदर्शनके मतानुसार बुद्धि, अहंकार और मन ये तीनों जड़ प्रकृतिके विकार हैं। इन तीनोंके मिलनेसे अन्तःकरण बनता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ बाह्य करण हैं। इनमें बाह्यकरण वर्तमान कालका ग्रहण कर सकते हैं, जबकि अन्तःकरण तीनों कालोंका ग्रहण करता है। बाह्यकरण अन्तःकरणके विषय-रूप अर्थात् भोग-साधन-रूप हैं*। अन्तःकरणके कार्योंका निर्देश करनेके पूर्व कहा गया है...“इसलिये उसके (पुरुषके) संयोगसे अचेतन बुद्धि चेतनसी हो जाती है। सब कुछ गुणोंसे ही होता है, फिर भी पुरुष कर्ताजैसा हो जाता है, यद्यपि वह उदासीन है†। बुद्धि, अहङ्कार और मन--ये सब त्रिगुणात्मक हैं। इनमें बुद्धि सबसे अधिक महत्त्वकी है, क्योंकि उसीके द्वारा पुरुष सब अर्थोंका ज्ञान प्राप्त करता है। यहाँ पाठकोंको ख्यालमें रखना चाहिये कि बुद्धि, अहंकार और मन—ये तीनों सांख्यमतानुसार त्रिगुणात्मक होनेपर भी एक दूसरेसे भिन्न हैं और उनके कार्य भी विशिष्ट होते हैं।

---

* अन्तःकरणं त्रिविधं दशधा बाह्यं त्रयस्य विषयाख्यम्।
साम्प्रतकालं बाह्यं त्रिकालमाभ्यन्तरं करणम्॥

† तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम्।
गुणकर्तृत्वे च तथा कर्तेव भवत्युदासीनः॥

गौडपादभाष्य—तेन चेतनावभाससंयुक्तं महदादि लिङ्गं **चेतनावदिव** भवति। यथा लोके घटः शीतसंयुक्तः शीतः, उष्णसंयुक्त उष्णः, एवं महदादि लिङ्गं तस्य संयोगात् पुरुषसंयोगाच्चेतनावदिव भवति। तस्माद्गुणा अध्यवसायं कुर्वन्ति न पुरुषः॥ सांख्यकारिका

बुद्धि अध्यवसायस्वरूप अर्थात् निश्चयात्मक है। अन्तःकरण-समेत बुद्धि सब विषयोंको ग्रहण करती है। इसलिये (यह) त्रिविध करण द्वारपालकी तरह हैं और शेष करण द्वारतुल्य हैं। दीपकके समान एक दूसरेसे विलक्षण ये गुणविशेष (अन्यकरण=ज्ञानेन्द्रियाँ+कर्मेन्द्रियाँ+मन+अहंकार) अपने सम्पूर्ण अर्थोंको बुद्धिको देते हैं--बुद्धिस्थ करते हैं और बुद्धि इन अर्थोंको पुरुषको देती है। अर्थात् बुद्धिद्वारा सम्पूर्ण अर्थोंका ज्ञान पुरुषको होता है *। यह घट है, यह पट है, इस प्रकार का निश्चयात्मक ज्ञान करनेवाली बुद्धिके दो भेद हैं। सात्त्विक और तामसिक। धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य—यह सात्त्विक बुद्धि है और अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य—यह उसका तामसिक स्वरूप है †। बुद्धि

---

* सान्तःकरणा बुद्धिः सर्वं विषयमवगाहते यस्मात्।
तस्मात्त्रिविधं करणं द्वारि द्वाराणि शेषाणि ॥
एते प्रदीपकल्पाः परस्परविलक्षणा गुणविशेषाः।
कृत्स्नं पुरुषस्यार्थं प्रकाश्य बुद्धौ प्रयच्छन्ति ॥ सां० कारिका

यथा हि ग्रामाध्यक्षः कौटुम्बिकेभ्यः करमादाय विषयाध्यक्षाय प्रयच्छति, विषयाध्यक्षश्च सर्वाध्यक्षाय, स च भूपतये, तथा बाह्येन्द्रियाण्यालोच्य मनसे समर्पयन्ति, मनश्च सङ्कल्प्याहंकाराय, अहंकारश्चाभिमत्य बुद्धौ सर्वाध्यक्षभूतायां तदिदमुक्तम्, "पुरुषस्यार्थं प्रकाश्य बुद्धौ प्रयच्छन्ति"।
वाचस्पति मिश्र—सां० त० कौमुदी

† अध्यवसायो बुद्धिर्धर्मो ज्ञानं विराग ऐश्वर्यम्।
सात्त्विकमेतद्रूपं तामसमस्माद्विपरीतम् ॥ -सां. का. २३

सात्त्विक होनेपर भी व्यक्तिविशेषमें पूर्वजन्मके संस्कारोंके अनुसार राजसिक और तामसिक भी हो सकती है। बुद्धि ही सब संस्कारोंका अधिष्ठानस्वरूप है। इन्द्रियाँ, मन और अहंकार संस्कारोंके अधिष्ठान नहीं होते। तत्त्वज्ञान द्वारा अहंकार और मनके लय होनेपर भी स्मृति बनी रहती है* । इसलिये त्रिविध अन्तःकरणमें भी बुद्धि ही सबसे विशेष महत्त्वकी है।

अथग्रहण किस ढंगसे होता है, इसकी प्रक्रिया दर्शानेवाला एक सुन्दर उदाहरण वाचस्पति मिश्रने दिया है। "जिस प्रकार गाँवका मुखिया या चौधरी घरानेके बड़ोंसे कर वसूलकर प्रान्तके बड़े अधिकारीको देता है और वह सर्वाध्यक्षको—सबसे बड़े कोषाध्यक्षको—और वह फिर राजाको वह कर सौंप देता है, इसी प्रकार बाह्येन्द्रियाँ (ज्ञानेन्द्रियाँ) पदार्थोंका आलोचन करके मनको देती हैं, मन संकल्प करके उनको अहंकारको देता है और अहंकार उनका अभिमान करके सबके अध्यक्ष-स्वरूप बुद्धिको देता है। इस तुलनामें कर अर्थज्ञानका और कौटुम्बिक (घरका वृद्ध), ग्रामाध्यक्ष, विषयाध्यक्ष, और सर्वाध्यक्ष ये क्रमशः ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, अहंकार और बुद्धिके उपमान हैं।

* तथाऽशेषसंस्काराधारत्वात् ॥४३॥ बुद्धेरेवाखिलसंस्काराधारता, न तु चक्षुरादेरहंकारमनसोर्वा, पूर्वदृष्टश्रुताद्यर्थानामन्धबधिरादिभिः स्मरणानुपपत्तेः। तत्त्वज्ञानेनाऽहंकारमनसोर्लयेऽपिस्मरण दर्शनाच्च। अतोऽशेषसंस्काराधारतयाऽपि बुद्धेरेव सर्वेभ्यः प्रधानत्वमित्यर्थः॥

विज्ञान भिक्षुः—सांख्यप्रवचनभाष्य—२-४३

मानसशास्त्रकी दृष्टिसे इन उदाहरणोंका तात्पर्य यही होता है कि विभिन्न इन्द्रियोंद्वारा होनेवाली संज्ञाओं (Sense-impressions) का एकीकरण करके मन एक या अधिक संकल्प करता है। अहंकार (Self-sense) इनमें ममत्वका अभिमान उत्पन्न करके इनको बुद्धिकी ओर आगे बढ़ाता है। और बुद्धि (Intellect) इन विभिन्न संकल्पोंमेंसे किसी एक विशेष का निश्चयात्मक विचार करती है। इसलिये अर्थग्रहणमें बुद्धिका कार्य अन्तिम निर्णय (Judgment) करनेका है। सांख्यके मतमें ज्ञान-व्यापार बुद्धिके अधीन है और पुरुषको उसकी "उपलब्धि" होती है; क्योंकि पुरुषद्रष्टा और अकर्ता होनेपर भी भोक्ता होता है। (सांख्याचार्य उपलब्धि और ज्ञान इन दोनों शब्दोंको एकार्थवाची नहीं मानते) चेतनरूप पुरुष और जड़ अन्तःकरणके बीच सम्बन्ध दिखानेके लिये उन्होंने जो बिम्ब-प्रतिबिम्ब-वाद उपस्थित किया है, वह सामान्य पाठकोंकी समझमें आसके ऐसा नहीं है*। हमारे लिये त्रिविध अन्तःकरणके कार्य ही महत्त्वके हैं। इसके अतिरिक्त सांख्यमें माना है कि यद्यपि मन

---

* अन्तःकरणस्य तदुज्ज्वलितत्वाल्लोहवदधिष्ठातृत्वम् ॥

बुद्धौ चैतन्यप्रतिबिम्बश्चैतन्यदर्शनार्थं कल्प्यते; दर्पणे मुखप्रतिबिम्बवत्। अन्यथा कर्मकर्तृविरोधेन स्वस्य साक्षात्स्वदर्शनानुपपत्तेः × × × यश्चैतन्ये बुद्धेः प्रतिबिम्बः स चारूढ़विषयैः सह बुद्धेर्भानार्थमिष्यते। × × ×। स चायमन्योऽन्यप्रतिबिम्बो योगभाष्ये व्यासदेवैः सिद्धान्तितः ॥

विज्ञानभिक्षुः—सांख्य प्र० भाष्य—सांख्यसूत्र १-९९

मध्यम परिमाणका है, इसलिये एक साथ विविध प्रकारके ज्ञान उत्पन्न हो सकते हैं; परन्तु सामान्य परिस्थितिमें ऐसा नहीं होता। उदाहरणके तौरपर—जंगलमें बाघ देखनेपर मनुष्यकी अनेक इन्द्रियाँ एकसाथ मनःसंयोगपूर्वक कार्य करने लगती हैं *। सांख्य-शास्त्रमें 'पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं पाँच कर्मेन्द्रियाँ' इस प्रकार दस करणों को 'इन्द्रिय' संज्ञा दी है (मन तो इन्द्रिय है ही) और उनको आहंकारिक माना है। इसके अतिरिक्त सांख्यमें पांच प्राणोंको अन्तःकरणका सामान्य कर्म † और मनको नित्य द्रव्य माना है। वह प्रकृतिसे उत्पन्न होनेके कारण उसीमें लय हो जाता है।

दर्शनोंमें सांख्य बहुत प्राचीन और प्रतिष्ठित माना जाता है। परन्तु वेदान्त, न्याय और वशेषिकने उसके विरुद्ध प्रबल आंदोलन खड़ा किया है। नैयायिक प्रमाणसिद्ध वास्तववाद (Logical-Realism) को दृढ़तासे माननेवाले हैं। इसलिये उन्होंने सांख्यों के उपरिनिर्दिष्ट मन्तव्यांका कई युक्तियोंसे खंडन किया है। नैयायिक केवल पाँच ज्ञानेन्द्रियोंको ही 'इन्द्रिय' मानते हैं। मनको

---

* क्रमशोऽक्रमशश्चेन्द्रियवृत्तिः सां० सू० २-३२

युगपच्चतुष्टयस्य तु वृत्तिः क्रमशश्च तस्य निर्दिष्टा।
दृष्टे तथाऽप्यदृष्टे त्रयस्य तत्पूर्विका वृत्तिः॥ सां. का. ३०

† स्वालक्षण्यं वृत्तिस्त्रयस्य सैषाभवत्यसामान्या।
सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च॥ सां. का. २९

तथा देखो—सांख्य सूत्र २-३१

अणु-परिमाणका मानते हैं और "युगपत्ज्ञानाभाव" को मनका लिङ्ग कह कर, एक साथ अनेक मनोव्यापार-ज्ञानात्मक किंवा क्रियात्मक नहीं हो सकते, ऐसा दृढ़तासे कहते हैं। वे इनव्यापारोंको क्रमिक ही मानते हैं, फिर चाहे हमको उन व्यापारोंके बीचका अन्तर मालूम हो सके या अलातचक्रदर्शनकी भाँति न भी हो सके। इसके सिवाय नैयायिक त्रिविध अन्तःकरण नहीं मानते किन्तु आत्माके समान ही मनको भी द्रव्य मानते हैं। जिसकी उत्पत्ति नहीं होती उसके विनाशकी चर्चा वे क्यों करें? बुद्धिके अर्थमें 'ज्ञान' शब्दको प्रयुक्त करके और इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञानको आत्माके लिङ्ग कहकर नैयायिकोंने सांख्योंके 'पुरुष' की अपेक्षा आत्माको अधिक उन्नत बनाया है। आयुर्वेदमें आत्माके लिङ्ग गिनाते हुए न्यायवैशेषिकका आश्रय लिया है; मनको प्रकृतिजन्य और त्रिगुणात्मक माननेके साथ ही साथ उसको अणुपरिमाणका मानकर साथमें बुद्धि और अहंकारको भी स्वीकार किया है; 'बुद्धि' शब्दको ज्ञानके समान अर्थमें भी प्रयुक्त किया है और निश्चयात्मिका बुद्धिको भी स्वीकार किया है, प्राणापान आदिको आत्माका लिङ्ग बताया है। इस प्रकार आयुर्वेदमें विभिन्न दर्शनोंकी विचार-धाराएँ एकत्रित होती मालूम होती हैं। राशिपुरुषकी कल्पनामें बहुत-सी वस्तुओंका समावेश हो जाता है।

भगवान चरककी दी हुई विषयग्रहणकी प्रक्रिया हम देख चुके हैं। नैयायिकोंकी भाँति उन्होंने भी ज्ञानको आत्माका लिङ्ग

माना है। इसलिये न्यायवैशेषिकको दृष्टिगत रखते हुए ज्ञान या बुद्धिके विषयमें उन (चरक) के विचारोंको हम देखें। ये अत्यन्त व्यावहारिक और आयुर्वेदके विद्यार्थियोंके लिये बहुत उपयोगी सिद्ध होंगे।

बुद्धिका लक्षण देते हुए न्यायसूत्रकार कहते हैं कि "बुद्धि, उपलब्धि-ज्ञान आदि पर्याय-वाचक शब्द हैं *। सांख्यके बुद्धि-विषयक विचारोंका विरोध करते हुए महर्षि वात्स्यायन कहते हैं कि "अचेतन करण बुद्धिका व्यापार ज्ञान है और चेतन होनेपर भी अकर्ता पुरुषको उपलब्धि होती है, यह कथन युक्ति-विरुद्ध है। अचेतन बुद्धि जड़ प्रकृतिसे उत्पन्न हुई है, इसलिये उसको ज्ञान कैसे हो सकता है? यदि उसको ज्ञान हो सकता है, तो वह चेतन होनी चाहिए। और देहेन्द्रिय-संघातसे भिन्न चेतन तो एक ही है।" अर्थात् दो चेतन द्रव्य माननेका प्रसंग उपस्थित होता है †। जयन्त भट्ट सांख्यका उपहास करते हुए कहते हैं कि

---

* अचेतनस्य करणस्य बुद्धेर्ज्ञानं वृत्तिः चेतनस्याकर्तुरुपलब्धिरिति युक्तिविरुद्धमर्थं प्रत्याचक्षाणक इवेदमाह—

—बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम्। वा० भा० १-१५

—नाचेतनस्य करणस्य बुद्धेर्ज्ञानं भवितुमर्हति, तद्धि चेतनंस्यात्। एकश्चायं चेतनो देहेन्द्रियसंघातव्यतिरिक्त इति।

† "चेतनत्वं ज्ञानादियोगिन्या अपियत्त्वस्यांनाभ्युपगतं सोऽयमतीव तपस्विनां भ्रमः। य एव बुद्ध्यते जानात्यध्यवस्यति स एव पश्यति चेतयते च, नखल्वत्र वस्तुरूपभेदं पश्यामः, तत्र बुद्धिर्बुध्यते जानात्यध्यवस्यति पुरुषस्तु पश्यति चेतयतेचेतिवञ्चनयैवमुच्यते मुग्धतया वा॥

न्यायमञ्जरी—बुद्धिपरीक्षा

११

"ज्ञानयुक्त इस बुद्धिको चेतन नहीं मानना तपस्वियोंका (सांख्यों का) बड़ा भारी भ्रम है। जिसका बोध होता है, जो जानता है, जो निश्चय करता है, वही द्रष्टा भी हो सकता है और चेतना देनेवाला भी हो सकता है। हम तो इन दो वस्तुओंमें कुछ भी भेद नहीं देख सकते। ऐसी परिस्थितिमें बुद्धिको बोध होता है, बुद्धि जानती है, बुद्धि निश्चय करती है और पुरुष तो द्रष्टा है और चेतयिता भी है, यों कहनेमें या तो वचना हैं या अज्ञता है।" इसीसे मिलती-जुलती दलीलें न्यायवार्तिकमें उद्योतकरने दी हैं *।

न्याय-वैशेषिकके मतको ध्यानमें रखते हुए अब हम बुद्धिका वर्णन आगे चलाते हैं। बुद्धि या ज्ञान (Knowledge) के दो प्रकार हैं † स्मृति और अनुभव। इनमें संस्कारमात्रसे

---

* आत्मोपलभते बुद्धिर्जानीत इति ब्रुवाण उभयोश्चैतन्यं प्रतिपद्यते। उभयचैतन्ये च प्रत्ययव्यवस्थानुमानं न स्यात्॥ न्यायवार्तिक

और देखो प्रशस्तपादका मत—

बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानं प्रत्यय इति पर्यायाः। प्र. पादभाष्यः—गुण ग्रन्थ

† संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृतिः। तद्भिन्नं ज्ञानमनुभवः। स द्विविधो यथार्थोऽयथार्थश्च। तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवो यथार्थः। यथा रजत इदं रजतमिति ज्ञानम्। सैव प्रमेत्युच्यते। तदभाववति तत्प्रकारकोऽनुभवोऽयथार्थः। यथार्थानुभवश्चतुर्विधः। प्रत्यक्षानुमित्युपमितिशब्दभेदात्। तत्करणमपि चतुर्विधम्। प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दभेदात्। XXX। अयथार्थानुभवस्त्रिविधः संशयविपर्ययतर्कभेदात्। तर्कसंग्रह

त्पन्न होनेवाला ज्ञान स्मृति (Memory) है। इससे भिन्न न्य ज्ञान अनुभव (Experience) कहा जाता है। अनुभव और स्मृतिके संबंधको समझनेके लिये हम एक घरेलू दृष्टान्त ते हैं। घरमें थोड़ा अन्न या कपड़ा पहले खरीदकर रखलेने पर फर भी हम नया खरीदनेके लिये जाते हैं। यहाँ घरमें रखा आ अन्न या कपड़ा स्मृतिके तुल्य हैं, और जो नया खरीदते हैं ह अनुभवके समान है।

यह अनुभव भी दो प्रकारका होता है। यथार्थ (True) और अयथार्थ (False)। परन्तु हमारा अनुभव ठीक है या गल्लत, इसकी परीक्षा क्या है ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि जो वस्तु जैसी होती है वैसा ही उसका अनुभव होना यह यथार्थ (अर्थके अनुरूप) अनुभव कहा जाता है। इसीका दूसरा नाम प्रमा (यथार्थ अनुभव या ज्ञान) है। उदाहरणके तौरपर

का पुनः प्रमा यस्याः करणं प्रमाणम्। उच्यते। यथार्थानुभवः प्रमा। यथार्थ इत्ययथार्थानां संशयविपर्ययातर्कज्ञानानां निरासः। अनुभव इति स्मृतेर्निरासः। ज्ञातविषयंज्ञानंस्मृतिः। अनुभवो नाम स्मृतिव्यतिरिक्तं ज्ञानम्।

तर्कभाषा

बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानं प्रत्यय इति पर्यायाः। सा चानेकप्रकाराऽर्थानन्त्यात्, प्रत्यर्थनियतत्वात्। तस्याः सत्यप्यनेकविधत्वे समासतो द्वेविधे विद्या चाविद्या चेति। तत्राविद्या चतुर्विधा संशय विपर्ययानध्यवसायस्वप्नलक्षणा। XX विद्यापिचतुर्विधा प्रत्यक्ष लैङ्गिक स्मृत्यार्षलक्षणा।

प्रशस्तपादभाष्य—गुणग्रन्थ

रजतके विषयमें यह रजत ही है ऐसा अनुभव होना यथार्थ अनुभव है। इसके विपरीत "ज़िस वस्तुके विषयमें वह जिस प्रकारकी हो उस प्रकारका अनुभव न होना यह अयथार्थ अनुभव (अप्रमा, भ्रम, विपर्यय किंवा मिथ्या ज्ञान) है। यथा शुक्ति (सीपी) में रजत (चाँदी) का ज्ञान होना। यथार्थानुभव अथवा प्रमा भी चार प्रकारकी है और वह प्रत्यक्ष, अनुमान, उप-मान और शब्द-प्रमाण द्वारा उत्पन्न होती है। अयथार्थानुभव भी तीन प्रकारका है--संशय, विपर्यय और तर्क। स्वप्न मानस विपर्यय होनेसे उसका विपर्ययमें ही अन्तर्भाव हो जाता है।

इसीसे करीब-करीब मिलता-जुलता बुद्धिका वर्णन वैशेषिकों ने थोड़े शब्द-परिवर्तनके साथ दिया है। आचार्य प्रशस्तपाद कहते हैं कि "बुद्धि (ज्ञान, उपलब्धि, प्रत्यय) कई प्रकारकी होती है, क्योंकि अर्थ असंख्य होते हैं और प्रत्येक अर्थके अनुसार बुद्धि या ज्ञान निष्पन्न होता है। उसके अनेक प्रकार होने पर भी संक्षेपमें उसको दो विभागोंमें विभक्त कर सकते हैं—विद्या और अविद्या। इनके चार भेद हैं--प्रत्यक्ष, लैङ्गिक, स्मृति और आर्ष ये चार विद्याके हैं; और संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय और स्वप्न ये चार अविद्याके हैं। संक्षेपमें दोनों दर्शनोंके वर्गीकरणमें बहुत कम अन्तर है। इसी प्रकार दूसरे दर्शनोंमें भी थोड़ा-सा मतभेद देखनेमें आता है।

प्रमा या अप्रमा, विद्या या अविद्या, ज्ञान किंवा अज्ञान इन सब शब्द-द्वन्द्वोंकी लीलाको छोड़कर हम ज्ञान व्यापारोंके विषयमें ही विशेष विचार करते हैं।

प्रमा किंवा यथार्थानुभवका प्रधान साधन (Source of Knowledge) प्रमाण है। उसकी संख्या विभिन्न दर्शनोंके अनुसार भिन्न-भिन्न होती है, क्योंकि प्रत्येक दर्शनमें अपने मतके अनुकूल अपने ही प्रमाणोंकी संख्या दी है। उदाहरणतया चार्वाक केवल एक प्रत्यक्ष प्रमाणको ही मानते हैं। बौद्ध प्रत्यक्ष और अनुमान इन दो प्रमाणोंको मानते हैं। सांख्य और वैशेषिक प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम इन तीन प्रमाणोंको मानते हैं। नैयायिक प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द इन चार प्रमाणोंको मानते हैं। मीमांसक इस प्रमाणचतुष्टयमें अर्थापत्ति को बढ़ा देते हैं और भट्टमतानुयायी और वेदान्ती इनके अतिरिक्त अभावको भी प्रमाण-पंक्तिमें स्थान देते हैं। पौराणिक इनके अतिरिक्त ऐतिह्य और संभवको भी प्रमाण कहते हैं। परन्तु नैयायिक केवल चार प्रमाणोंको ही मानते हैं और शेष प्रमाणोंका इन्हींमें अन्तर्भाव कर देते हैं*।

प्रमाणों द्वारा होनेवाले यथार्थानुभवकी चर्चा यहीं समाप्त करते हैं। अयथार्थानुभवकी समीक्षा आगे चलकर करेंगे क्योंकि ज्ञानका दूसरा भेद—स्मृतिका विचार करना बहुत आवश्यक है। अनुभव

* अप्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणमिति चार्वाकाः (प्रमाणद्वैविध्यं × × यथाहुः सौगताः प्रत्यक्षमनुमानञ्च) प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणमिति वैशेषिकाः। तान्येवेति सांख्याः। सहोपमानेन चत्वारीति नैयायिकाः। सहार्थापत्त्या पञ्चेति प्राभाकराः। सहाभावेन षडिति भाट्टाः।

हेमचन्द्राचार्य—प्रमाण मीमांसा पृ० ७

व्यापारमें मनुष्य नये-नये विषयोंको ग्रहण करता है और वर्तमान कालके साथ संबन्ध रखता है; जब कि स्मरण व्यापारमें वह भूतकालीन संस्कारोंको ऐसे अनुभव करता है मानो वे फिर जाग्रत हुए हों। यदि मनुष्यमें स्मरण शक्ति न होती तो उसका भूतकाल के साथ कोई संबन्ध ही न रहता। स्मरणशक्ति द्वारा ही हम अपने चर्मचक्षुओंसे दूरवर्ती अपने मित्रों, भूतकालमें देखे हुए सुन्दर स्थलों, शिल्पके नमूनों या मरे हुए संवन्धियोंको अपनी मानस सृष्टिमें उपस्थित करके उनके परिचयको ताजा करते हैं। कभी भयानक घटनाओंकी स्मृति हमको घबड़ा भी देती है।

इस स्मृतिका लक्षण क्या है? अनेक विद्वानोंने इसकी निरुक्तियां दी हैं, जिनमें केवल थोड़ासा शाब्दिक अन्तर मालूम होता है, वास्तविक अन्तर नहीं दिखाई देता। उदाहरणतया भगवान पतञ्जलि कहते हैं कि "अनुभूत विषयोंके—अनुभवजन्य संस्कारोंका विलोप न होना : इसका नाम स्मृति है*। भगवान

प्रत्यक्ष—(Perception or Direct Knowledge)

अनुमान—(Inference), उपमान (Comparison , शब्द (Verbal Knwledge), अर्थापत्ति (Presumption), अभाव (Non-Existence), ऐतिह्य (Tradition), संभव (Subsumption), अनुभव (Experience or Presentative Cognitions), स्मृति (Memory or Representative Cognition)

वर्णितानि चत्वारि प्रमाणनि। एतेभ्योऽन्यन्नप्रमाणं, प्रमाणस्य सतोऽत्रैवान्तर्भावात्। तर्कभाषा

* अनुभूत विषयाऽसम्प्रोषःस्मृतिः ॥ योगसूत्र० १-११

कणाद कहते हैं कि आत्मा और मनके संयोग-विशेषके परिणाम एवं संस्कारोंसे स्मृति उत्पन्न होती है*। वैशेषिक सूत्रोंके भाष्यकार मुनि प्रशस्तपादने इस सूत्रके भाष्यमें स्मृतिके कारणों, स्मृतिके विषय एवं कार्य इन सबकी एक साथ चर्चाकी है †। कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्रने‡ संस्कारोंके प्रबोधके कारण उत्पन्न हुए "वही यह है" इस प्रकारके ज्ञानको स्मरण कहा है। सुप्रसिद्ध पाश्चात्य मानस शास्त्रज्ञ जेम्स कहते हैं कि पहले "उत्पन्न हुए किसी भी मनोव्यापारका एकबार मनमें लीन हो जानेके बाद जो फिर भान होता है उसे स्मरण कहते हैं×।"

* आत्ममनसोः संयोगविशेषात् संस्काराच्च स्मृतिः वैशे० सू० ७-२-६

† लिङ्गादर्शनेच्छानुस्मरणाद्यपेक्षादात्ममनसोः संयोगविशेषात्, पट्वाभ्यासादरप्रत्ययजनिताच्च संस्काराद् दृष्टश्रुतानुभूतेष्वर्थेषु, शेषानुव्यवसायेच्छानुस्मरणद्वेषहेतुरतीतविषया स्मृतिः। प्रशस्त० गुणग्रन्थ० पृ० २५६

‡ वासनोद्‌बोधे हेतुका तदित्याकारा स्मृतिः॥
वासना संस्कार स्तस्याः "उद्‌बोधः" प्रबोधस्तद्धेतुका तन्निबन्धना।
प्रमाणमीमांसा—पृ०-३३

× Then we may say that experience modifies the structure of the mind, that it is through the persistence of these modifications that past experience influences present behaviour and present mental process. Some part of the structure of the mind is innately determined or inherited and all that is added to it or changed in it by the course of experience is usually and conveniently included under the term Memory (Mc. Dougall—Body and Mind Chapter XXIV)

इन निरुक्तियोंसे स्पष्ट हो जाता है कि भगवान पतञ्जलि और अन्य दार्शनिक विद्वानोंने संस्कारोंपर विशेष जोर दिया है।

स्मृतिका स्वरूप जटिल है कुछ विशेष विचार करनेपर ही समझा जा सकता है। ऐसा स्मरण, मनन, चिन्तन, विचारणा आदि शब्द मानसिक व्यापारोंके सूचक हैं और स्मृति, मति, चिन्ता, विचार आदि शब्द इन व्यापारोंके फल-सूचक हैं। यह मर्यादा केवल भाषाकी दृष्टिसे है। स्मृतिके स्वरूपका सूक्ष्म विचार करने पर मालूम होगा कि उसमें अन्य भी कई गौण व्यापारोंका समावेश हो जाता है।

चित्तकी वृत्तियोंके फलस्वरूप—मानसिक व्यापारोंके फलस्वरूप मनमें संस्कार उत्पन्न हैं और ये संस्कार (Mental Traces) वहाँ ठीक ज्योंके त्यों सुरक्षित रहते हैं। यदि संस्कार उत्पन्न ही न हों या वे मनमें ठीक सुरक्षित न रहें, तो चाहे जितना भी स्मरण या प्रयास किया जाय तो भी, उन (संस्कारों) की याद नहीं आती और स्मृति भी उत्पन्न नहीं होती। इसलिये सबसे महत्त्वका व्यापार संस्कारग्रहण (Learning) है और दूसरा महत्त्वका व्यापार संस्कारोंकी यथावत् रक्षा (Retention अवधारणा) है। संस्कारोंका संग्रह होनेके बाद उनके फिर स्मरण होनेतककी अवधिमें वे सुरक्षित रहने पर फिर उद्बोधके (Recollection) फलस्वरूप भूतकाल हमारे सामने आकर खड़ा हो जाता है। ये तीनों गौणव्यापार (संस्कारग्रहण, अवधारणा, स्मरण) इकट्ठे

होकर स्मृति नामक चित्त व्यापारको जन्म देते हैं। स्मृतिका यह मानसिक विश्लेषण है। स्मृतिके स्वरूपके विषयमें सूक्ष्म विचार करनेके लिये महर्षि व्यास और पंडित वाचस्पति मिश्रके विचार हमारे लिये अतिशय महत्त्वके हैं। योगसूत्रके भाष्यमें स्मृतिका निरूपण करते हुए महर्षि व्यास इस महत्त्वपूर्ण विषयकी चर्चा की है*।

"चित्त ज्ञानका स्मरण करता है या (ज्ञानके) विषयका? जब हम अश्वका स्मरण करते हैं तब हम केवल अश्वको ही याद करते हैं या उसके साथ, उसको हमने कहाँ देखा था, कैसे देखा, कहाँ

---

* अनुभूतविषयाऽसम्प्रमोषः स्मृतिः। योग सूत्र—१-१-११

व्यास भाष्य—किं प्रत्ययस्य चित्तं स्मरति आहोस्विद्विषयस्येति। ग्राह्योपरक्तः प्रत्ययः ग्राह्यग्रहणोभयाकारनिर्भासस्तज्जातीयकं संस्कारमारभते। स संस्कारः स्वव्यञ्जकाञ्जनस्तदाकारामेव ग्राह्यग्रहणोभयात्मिकां स्मृतिं जनयति। तत्र ग्रहणाकारपूर्वा बुद्धिः। ग्राह्याकारपूर्वा स्मृतिः। सा च द्वयी भावितस्मर्तव्या चाभावित स्मर्तव्या च। स्वप्ने भावितस्मर्तव्या। जाग्रत्समये-त्वभावितस्मर्तव्या। सर्वाश्चैताः स्मृतयः प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतीनामनुभवात्प्रभवन्ति॥

तत्त्ववैशारदी टीका—एतदुक्तं भवति। सर्वे प्रमाणादयोऽनधिगतमर्थं सामान्यतः प्रकारतो वाऽधिगमयन्ति। स्मृतिः पुनर्नपूर्वानुभवमर्यादामतिक्रामति। तद्विषया तदनविषया वा न तु तदधिकविषया। सोऽयं वृत्त्यन्तराद्विशेषः स्मृतेरिति × × × तदनेनानधिगतबोधनं बुद्धिरित्युक्तम्॥ तदनेन वृत्त्यन्तरविषयीकृतगोचरा स्मृतिरित्युक्तम्॥

देखा आदि बातें विषय ग्रहण को भी याद करते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए स्वयं ही कहते हैं कि हम इन दोनोंको-ग्राह्य विषय अश्व और उसके ग्रहण-व्यापार कहाँ, कैसे देखा आदिको--एक साथ ही याद करते हैं, क्योंकि स्मृतिमें ये दोनों अंग (ग्राह्यग्रहणोभयात्मिकाम् स्मृतिम्) रहते हैं। ज्ञान ज्ञानके विषयसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता, इसलिये अश्वकी याद आते ही तद्विषयक सारा अनुभव हमको याद हो जाती है, क्योंकि ग्राह्यविषय और उसका अनुभव ये दोनों मिलकर विशेष प्रकारके एक या अनेक संस्कारोंको उत्पन्न करते हैं और ये ही संस्कार फिर जागृत होनेपर उनके अनुरूप ही स्मृति उत्पन्न करते हैं* ।

यहाँ प्रश्न उठता है कि कारणको दृष्टिके सामने रखकर सोचें तो बुद्धि (अनुभव) और स्मरणका स्वरूप एक-सा प्रतीत होता है, तो फिर इन दोनोंके बीच भेद कैसे होता है ? अश्वको (विषयको) देखते ही उसका यथार्थ अनुभव होता है ; इस यथार्थ अनुभवके संस्कार मनमें उत्पन्न होते हैं और ये ही संस्कार पुनः जागृत होनेपर उनकी यथार्थ स्मृति होती है। इन दोनोंमें—अनुभव एवं स्मृतिमें—मूल कारण तो अश्व ही है, तब फिर अनुभव और स्मृतिमें भेद कैसे होता है ? इसका प्रत्युत्तर देते हुए कहते हैं कि पहले न ज्ञात हुए विषयका बोध होनेका नाम अनुभव है और अनुभूत विषयका बोध होना-इसका नाम स्मृति है। सरल शब्दों में कहा जाय तो स्मृतिको छोड़कर शेष चित्त व्यापार--प्रमाण,

* देखो व्यास भाष्यका अभिप्राय—ग्राह्योपरक्तः प्रत्ययः ॥

विपर्यय, विकल्प आदि--कुछ-न-कुछ नवीन विषयको ग्रहण करते हैं परन्तु स्मरण-व्यापारमें पहले जाने हुए विषयका ही बोध होता है। यदि क्वचित् स्मृति यथार्थरूपमें उत्पन्न नहीं होती तो ज्ञात विषय भी यथार्थरूपमें याद नहीं होता। परन्तु ज्ञात विषयसे अधिक विषयका बोध स्मृति द्वारा नहीं होता। उदाहरतणया-जिसने कभी अश्व न देखा हो वह जब उसको प्रथम बार ही देखता है तब उसको अश्वका अनुभव हुआ, ज्ञान हुआ, माना जाता है। जब वह अश्वको याद करता है तब उस अश्व-विषयक सारी बातें याद आयें या थोड़ी याद आयें परन्तु केवल स्मृति द्वारा, उसको अश्वके विषयमें जितना ज्ञान था उससे अधिक ज्ञान नहीं होता। इस तरह स्मृति चित्तकी दूसरी वृत्तियोंसे भिन्न होती है। यहाँ यह याद दिलाना आवश्यक है कि स्मृति-समेत चित्तकी सब वृत्तियाँ—व्यापार--मनपर विविध संस्कार उत्पन्न करते हैं और ये संस्कार फिर अपने समान ही स्मृति उत्पन्न करते हैं। अर्थात् स्मरण व्यापार भी संस्कार उत्पन्न करते हैं। मतलब कि स्मरणका भी स्मरण हो सकता है। हमारा प्रति दिनका अनुभव भी इसका समर्थन करता है।

अनुभवके समान स्मृति भी दो प्रकारकी है—यथार्थ और अयथार्थ। स्वप्नमें अयथार्थ स्मरण होता है और जागृतावस्थामें यथार्थ। दोनों प्रकारकी स्मृति हो सकती है*।

---

* स्मरणमपि यथार्थमयथार्थं चेति द्विविधम्। तदुभयं जागरे। स्वप्ने तु सर्वमेव ज्ञानं स्मरणमयथार्थं च। तर्क भाषा

व्यासभाष्यमें भी स्मृत्तिके दो भेद कहे हैं।

स्मृतिके स्वरूपकी विवेचनाके बाद अब स्मृतिके कारणोंका विचार करते हैं। थोड़ा विषयान्तर होते हुये भी यहाँ यह कहना योग्य प्रतीत होता है कि स्मृतिके स्वरूप एवं उसके कारणोंके विषयमें जितना सूक्ष्म विचार भारतवर्षमें किया गया है उतना अन्य किसी स्थानमें नहीं हुआ है। हजारों वर्षोंसे—प्रागैतिहासिक कालसे ही आर्य प्रजाने अपने प्राणोंके समान प्रिय वैदिक साहित्यको स्मृतिके बलपर ही जीवित रखा है। अर्थात् स्मरणशक्तिका यह अद्भुत चमत्कार एक अद्भुत ऐतिहासिक घटना है। जब लेखन कलाका विकास हुआ तब इस प्रजाने सूत्रशैलीका अन्वेषण किया। कण्ठस्थ साहित्य और सूत्रारूढ़ साहित्य ये दोनों भारतीय साहित्यके विरल लक्षण हैं।

अब हम पुनः मूल विषयकी ओर आते हैं। स्मृति संस्कार-जन्य ज्ञान होता है यह सिद्ध बात है। तो फिर भूतकालीन सम्पूर्ण संस्कारोंके मनमें रहनेपर भी उनका एक ही साथ स्मरण नहीं होता, इसका क्या कारण है? न्याय सूत्रकार इस प्रश्नका उत्तर देते हैं और साथ-ही-साथ स्मरण व्यापारके कारणोंका भी निर्देश करते हैं। स्मरण व्यापारके आन्तरिक कारण-आत्मा और मनका संयोग एवं संस्कार हैं; और प्रणिधान, लिङ्गादि ज्ञान आदि इसके बाह्य किंवा उत्तेजक कारण हैं*। आत्मा, मन, और

---

* कःखल्विदानीं कारणयौगपद्यसद्भावे, युगपदस्मरणस्यहेतुरिति। सू०-प्रणिधानलिङ्गादिज्ञानानामयुगपद्भावादयुगपत्स्मरणम्। ३३

वात्स्यायन भाष्य—यथा खल्वात्ममनसोः सन्निकर्षः संस्कारश्चस्मृतिहेतुरेवं

संस्कारके एक साथ रहनेपर भी प्रणिधान, लिङ्गादि-ज्ञान आदि बाह्यकारण एक साथ नहीं रहते इसलिये सब संस्कारोंकी स्मृति एक साथ न होकर क्रमिक होती है। फिर कुछ मनुष्योंमें स्मरण व्यापारका वेग अधिक होता है और कुछ में कम होता है। उदाहरणतया पण्डित मालवीयजीके चित्रको देखते ही, हम उनके विषयकी सारी बातोंको एक साथ नहीं याद कर सकते परन्तु स्मरण-व्यापारके चालू रहनेपर अधिकाधिक बातें याद आने लगती हैं।

इन बाह्य कारणोंका शास्त्रीय नाम स्मृतिहेतु किंवा उद्बोधक "स्मृतिहेतवः, उद्बोधकाः—Causes of Recall or-Recollection है। ये स्मृतिहेतु एककालमें अर्थात् एक साथ हमारे सामने नहीं आते, इसलिये युगपत्स्मरण नहीं होता किन्तु क्रमिक स्मरण होता है। ये स्मृतिहेतु कौनसे हैं? इसके उत्तरमें न्याय सूत्रकारने स्मृतिहेतुओंकी एक लम्बी सूची दी है। इनका विस्तृत विवेचन किया जाता है*।

प्रणिधानं-लिङ्गादिज्ञानानि। तानि च न युगपद् भवन्ति। तत्कृतास्मृतीनां युगपदनुत्पत्तिरिति ॥ न्यायसूत्र ३-२-३३+व्यासभाष्य

* स्मृतिहेतूनामयौगपद्याद् युगपदस्मरणमित्युक्तम्। अथ केभ्यः-स्मृतिरुत्पद्यत इति। स्मृतिः खलु—

प्रणिधान निबन्धाभ्यासलिङ्गालक्षणसादृश्यपरिग्रहाश्रयाश्रितसम्बन्धानन्तर्य-वियोगैककार्यविरोधातिशयप्राप्तिव्यवधान सुखदुःखेच्छाभयार्थित्वक्रियासमधर्माधर्म-निमित्तेभ्यः ॥ न्यायसूत्र ३-२-४१

(१) प्रणिधान (Attention)—जिस वस्तुको याद करना होता है उसका एकाग्रतापूर्वक ध्यान करनेसे वह शीघ्र याद हो जाती है। यदि एकाग्रतामें विक्षेप आ जाता है तो अनुभूत वस्तुका यथार्थरूपसें स्मरण नहीं हो सकता। यह हेतु मनकी एक विशेष प्रकारकी स्थितिको सूचित करता है। एकाग्रता जितनी अधिक होती है उतनी ही स्मरणमें अधिक सरलता होती है।

(२) निबन्ध (Context, Association)—एक ग्रन्थमें ग्रथित विविध विषय एक-दूसरेकी याद करा देते हैं। फिर चाहे हम उसको क्रमपूर्वक पढ़ें या व्युत्क्रमसे पढ़ें। यथा चरक संहिता के निदान स्थानको पढ़ते समय बादके चिकित्सा स्थानमें पढ़ी हुई चिकित्साकी याद आती है और यदि चिकित्सा स्थान पढ़ते हैं तो निदान स्थान याद हो आता है। इसके अतिरिक्त निबन्धका एक और भी अर्थ होता है—ज्ञात वस्तुओंमें स्मर्तव्य अर्थोंका समारोपण करना। धारणा शास्त्रमें स्मर्तव्य देवताओंका देहके विविध अङ्गोंमें-नाड़ीचक्रों, हृदय, नासाग्र, तालु, ललाट, ब्रह्मरन्ध्र आदिमें-न्यास किया जाता है जिससे उन-उन अङ्गोंका स्पर्श करने पर उन-उन देवताओंका स्मरण होता है। कुछ लोग किसी बातको याद रखनेके लिये कपड़े या रूमालमें गांठ लगाकर रखते हैं जिससे गांठका स्पर्श होते ही उनको उस बातकी याद आ जाय। यहाँ निबन्धका अर्थ एक प्रकारका साहचर्य सम्बन्ध (Association) है।

(३) अभ्यास (Resetitition)—जिस वस्तुका हमने

बार-बार अनुभव किया हो उसके संस्कार मनमें अधिक प्रबल होते जाते हैं इससे उस वस्तुका शीघ्र स्मरण हो जाता है। एकाध बार पढ़ी या सुनी हुई कहानी या श्लोक याद रहता है या नहीं भी रहता, परन्तु एक ही ग्रन्थ या श्लोकको बार-बार पढ़नेपर-उसका पुनरावर्तन करनेपर-वह पूर्णतया याद हो जाता है। विद्यार्थियोंका यह सामान्य अनुभव है। प्राचीन अध्ययन पद्धतिमें पुनरावर्तन का स्थान बहुत महत्त्वका था। छात्रोंको यदि पहले पढ़ाया गया पाठ कण्ठस्थ नहीं होता था तो गुरूजन आगेका पाठ पढ़ानेसे मना करते थे। आजकी घोटनेकी प्रथाको उत्तेजन देनेवाली परीक्षा पद्धतिकी प्रचीन पद्धतिके साथ तुलना करनी चाहिए।

(४) लिङ्ग (Sign)—न्याय शास्त्रकी परिभाषाके अनुसार जिससे परोक्ष पदार्थका ज्ञान हो उसका नाम लिङ्ग है। लिङ्गके दृष्टिगोचर होनेपर—साहचर्य नियम—(व्यप्ति—Universal relation) के आधारपर लिङ्गका स्मरण होता है। उदाहरणतया धुएँको देखकर अग्निका स्मरण होता है परन्तु यह नियम तभी हो सकता है जब कि धुएं और अग्निके साहचर्य नियमका हमको ज्ञान हो। उस ज्ञानका मनपर जो संस्कार होता है वह, लिङ्ग-धूम-के दृष्टिगोचर होनेपर, फिर जागृत होता है, इससे लिङ्गी-अग्निका-स्मरण होता है।

(५) लक्षण (Descriptive sign) संकेत या चिह्नको देखकर उस संकेत या लक्षणको धारण करनेवाले पदार्थका स्मरण होता है, जैसे तिरंगे राष्ट्रध्वजको देखते ही कांग्रेसका

स्मरण होना। किंवा स्वस्तिकका चिह्न देखते ही आर्यसंस्कृतिका स्मरण होना।

(६) सादृश्य (Similarity)—महात्मा गाँधीके चित्रको देखते ही उनका स्मरण होता है; किंवा किसी मनुष्यको देखनेपर उसीके समान आकृतिवाले दूसरे मनुष्यका स्मरण होता है।

(७) परिग्रह (Ownership)—किसी वस्तुको देखकर उसके मालिकका स्मरण होता है या उस मालिकको देखकर उसकी वस्तुका स्मरण होता है।

(८-९) आश्रयाश्रित (Relation of Corolatives)—आश्रयको देखकर उसके आश्रितोंका स्मरण होता है और अश्रितोंको देखकर उनको आश्रय देनेवालेका स्मरण होता है।

(१०) सम्बन्ध (Close Relation)—गाढ़ सम्पर्कमें रहनेवाले व्यक्तियोंमें किसो एकको देखनेपर दूसरेका स्मरण होता है; यथा—गुरु-शिष्यमें।

(११) आनन्तर्य (Relation of Immediate Sequence) स्थान एवं कालके अनुसार एक-दूसरेके समीपमें रहनेवाली वस्तुओंका शीघ्र स्मरण होता है। यथा—एक मकानको देखते ही उसके पड़ोसका दूसरा मकान भी याद आता है, उषाको देखनेसे प्रभातका एवं सन्ध्याको देखनेसे रात्रिका स्मरण होता है।

(१२) वियोग (Separation)—जिस वस्तुका वियोग होता है उस वस्तुकी बार-बार याद आती है। मेघदूतका यक्ष रामगिरि

आश्रममें निवास करता हुआ अपनी प्रेयसीको क्षणभरके लिये भी नहीं भूल सकता ।

(१३) एककार्य (Identity of Function)—एक कार्यमें संलग्न एक आदमीको देखते ही उसी काममें संलग्न दूसरे आदमीका स्मरण होता है।

(१४) विरोध (Enmity)—परस्पर विरुद्ध पक्षोंमें एकको देखते ही दूसरेका स्मरण होता है। सांपको देखकर नेउलेका और चूहेको देखकर बिल्लीका स्मरण होता है।

(१५) अतिशय (Superiority)—जिससे किसी वस्तुकी प्रचुर मात्रामें प्राप्ति होती हो उसका स्मरण वस्तुकी विपुलताको देखनेपर होता है। युद्धसे पैसा कमानेवालोंको युद्धका और ईमानदारीका व्यापार या नौकरीसे धनिक हुए मनुष्योंको व्यापार या नौकरी या खेतीका स्मरण होता है।

(१६) प्राप्ति (Aquisition)—जिससे वाञ्छित पदार्थकी प्राप्ति होती है उसको लोग बारबार याद करते हैं यथा संकटके समयमें लोग बिड़ला कुटुम्ब या टाटा कुटुम्ब आदिको याद करते हैं।

(१७) व्यवधान (Intervention)—बाहरके ढकनको देखकर उसके भीतरकी वस्तुका स्मरण होता है। म्यान देखते ही तलवारका और धन रखनेके सन्दूकको देखकर धनका स्मरण होता है।

(१८) सुख-दुःख (Pleasure and pain)—सुख और दुःखके कारणोंका बारबार स्मरण होता है।

(१९) इच्छा-द्वेष (Desire and aversion)—इच्छित पदार्थोंका और द्वेषके कारणोंका बारबार स्मरण होता है।

(२०) भय (Fear)—भयका अनुभव होते ही भयके कारणोंका स्मरण होता है।

(२१) अर्थित्व (Need)—जिस वस्तुकी आवश्यकता होती है उस वस्तुका बार-बार स्मरण होता है। गरीबोंको लक्ष्मीका बारबार स्मरण होता है।

(२२) क्रिया (Action)—किसी क्रियाको देखते ही उसके कारणोंकी याद आती है, यथा हिलते हुए वृक्षोंके पत्तोंको देखकर वायुका और चलती हुई ट्रेनको देखकर भापका स्मरण होता है।

(२३) राग (Affection)—स्नेहके परिणामसे स्नेह भाजनका स्मरण होता है। पति पत्नीको और माता बालकको बराबर याद करती है।

(२४) धर्म (Merit)—धार्मिक जीवन द्वारा मनुष्यकी स्मरण शक्ति बढ़ती है और वह अपने पूर्व जन्मके संस्कारोंका भी साक्षात्कार कर सकता है

(२५) अधर्म (Demerit)—अधर्म द्वारा दुःख होता है। इससे उसके कारणोंका स्मरण होता है।

स्मृतिके इन निमित्त कारणोंका वर्णन करनेके बाद भाष्यकार वात्स्यायन कहते हैं कि ये सब कारण एक साथ नहीं होते, इस लिये सबका एक साथ स्मरण नहीं होता। साथ ही इन स्मृति

ओंका वर्णन यहां उदाहरणके रूपमें किया है; वास्तवमें इनकी
या पचीससे भी अधिक है।

चारक संहितामें भी स्मृतिके विषयमें थोड़ी चर्चाकी है।
तिभ्रंश, धृतिभ्रंश, बुद्धिभ्रंश आदिकी चर्चाके साथ स्मृतिके
ल और कारणोंका उल्लेख किया है[५]।

चारक भगवान्ने स्मृतिके आठ निम्न कारण दिये हैं—

(१) निमित्तग्रहण (Relation of cause and effect)-
रणोंको देखकर कार्यका स्मरण होता है।

(२) रूपग्रहण (Shape)—अर्थात् आकार ग्रहण। आकारको
खकर उसीके समान आकारवाली दूसरी वस्तुका स्मरण
ता। यथा नीलगाय (गवय) देखकर गायका स्मरण
ता है।

(३) सादृश्य (Similarity)—पिताके समान मुखवाले
त्रको देखकर पुत्रको पिता का स्मरण होता है।

(४) सविपर्यय (Contrast)—अतिशय असादृश्यको देख
भी स्मृति उत्पन्न होती है, यथा कुरूप मनुष्यको देखनेपर
रूपवान् मनुष्यकी याद आती है।

(५) सत्वानुबन्ध (Attention)—स्मर्तव्य वस्तुका एका-
ग्रतापूर्वक ध्यान करनेपर उसका स्मरण होता है।

(६) अभ्यास (Repetition)—बारबार अध्ययनकी हुई
वस्तुका अभ्यासके बलसे ही स्मरण होता है। विना बारबार
अभ्यास किये उसके संस्कार बलवत्तर नहीं होते। फिर भी

एक ही बार देखी या सुनी हुई वस्तुका सदाके लिये स्मरण हो जाये तो यह श्रेष्ठ प्रकारकी स्मरण शक्तिका लक्षण है।

(७) ज्ञान योग (Divine Knowledge)—तत्वज्ञान द्वारा सब संस्कारोंकी स्मृति होती है।

(८) पुनः श्रुत (Repeated Hearing)—विस्मृत वस्तु का, उसके विषयमें थोड़ी भी बात पुनः सुननेपर, तुरन्त स्मरण हो जाता है।

इस सूचीसे मालूम होगा कि चरकोक्त कुछ लक्षणोंका न्यायसूत्रकारकी सूचीमें समावेश हो सकता है। ये दोनों सूचियाँ स्वतन्त्र हैं। चरक-संहिता आयुर्वेदका ग्रंथ है फिर भी इतनी दार्शनिक चर्चा भी उसमें आ गयी है। पहले प्रत्यक्षकी चर्चा करते समय भी हम चरक भगवान्‌का मत देख चुके हैं। न्याय-सूत्रकारकी सूची पर टीका करते हुए* सर राधाकृष्णन् कहते हैं कि "विचारोंके साहचर्य और स्मरणके सब कारण यहां इकट्ठे किये गये हैं।" यद्यपि भाष्यकार वात्स्यायन इस सूचीको केवल उदाहरण स्वरूप ही मानते हैं यह हम देख चुके हैं। जगत में हमें विविध प्रकारके कई अनुभव होते हैं किन्तु वे सबके सब याद नहीं रहते, क्योंकि मनोव्यापारों द्वारा होनेवाले संस्कारोंमें कुछ लुप्त होते हैं कुछ धुंधले या लुप्तप्राय हो जाते हैं और कुछ रूढ़ हो जाते हैं। स्मृतिके निमित्त कारणों द्वारा वे न्यूनाधिक मात्रामें

* All the causes of the association and recall of ideas can be brought under these Reads.

ागृत होते हैं ज़िससे पूर्ण या अपूर्ण स्मृति उत्पन्न होती है* । ...रण व्यापारोंकी इस कार्यप्रणालीमें क्या कुछ विशिष्ट नियम ...ष्टिगोचर होते हैं ? यह प्रश्न जरा गौरसे सोचने योग्य है। ...मारे चित्तपर जो-जो संस्कार उत्पन्न होते हैं अथवा उसमें जो ...ो विचार उत्पन्न होते हैं वे एक या दूसरी रीतिसे परस्पर ...म्बन्धित रहते हैं। जमीन पर गिरे हुए अन्नके कणोंकी भाँति ...बिखरे हुये नहीं होते। जिस प्रकार भौतिक सृष्टिमें (Phy ...ical world) परमाणु, विशिष्ट रीतिसे इकट्ठे होकर नये-नये ...समूहों किंवा मौलिक पदार्थों (Elements) की रचना करते ... उसी प्रकार मानस सृष्टिमें विविध संस्कारों द्वारा विशिष्ट प्रकार ...के संस्कार पिण्डोंकी रचना होती है और विचारोंसे विचार ...समूहोंकी (Association of Ideas) रचना होती है। ...ब इन संस्करोंको उत्पन्न करनेवाले हेतु या तत्तद् विचारोंके ...रक बल हमारे सम्मुख उपस्थित होते हैं तब हममें ये भूतकालीन

* बह्वर्थविषये वै चिन्ताप्रबन्धे कश्चिदेवार्थः कस्यचित्स्मृति हेतुः, तस्यानु...चिन्तनात् तस्यस्मृतिर्भवति, न चायं स्मर्ता सर्वं स्मृतिहेतुं संवेदयते।

वात्सा॰ भाष्य॰ ३-२-३३

खद्योत टीका—पुरुषस्यानेकविषया अनेकऽनुभवा जायन्ते। न च सर्व ...एवानुभवास्सर्वेषां स्व विषयाणां स्मरणजनका भवन्ति। न चैकानुभव सन्तान-...भूतेष्वर्थेषु, सर्व एव सर्वस्य स्मृति कारणं भवति, अपितु एतेषां मध्ये, कश्चिदेवार्थः कस्यचित्स्मरण जनने समर्थः। अस्यैव च स्मरणजननसमर्थ-...यार्थस्यानुचिन्तनप्रणिधानादिनां तत्सदृशाद्यर्थान्तरस्य स्मरणं भवति।

संस्कार-विचार फिर जागृत होते हैं। स्मरण व्यापारका य
सीधा-सादा निरूपण है। उदाहरणतया ताजमहल औ
शाहजहां।

पाश्चात्य मानस शास्त्रियोंने भी इस विषयमें ऊहापोह किय
है। सुप्रसिद्ध ग्रीक तत्त्वज्ञ एरिस्टोटलके मतानुसार हमारे मनमें
विचारोंके-संस्कारोंके-साहचर्यके तीन नियम हैं (Laws o
association of Ideas) ये निम्न हैं।

(१) सादृश्य (Similarity), (२) विरोध (Contrast
तथा (३) आनन्तर्य (Contiguity)।

इस मतके अनुसार इन तीन नियमोंके आधार पर ह
विचारोंके साहचर्यकी उत्पत्ति होती है। न्याय सूत्रकारकी सूच
में इन तीनोंका समावेश है। यद्यपि उदाहरण आधुनिक कालके
अनुरूप दिये हैं, फिर भी इससे सूत्रकारके मौलिक विचारोंमें
जरा भी न्यूनता नहीं आती। आधुनिक मानस शास्त्रियोंमें
कुछ साहचर्यके कोई दो और तो कोई एक ही नियम स्वीका
करते हैं। (इन नियमोंके विशेष ज्ञानके लिये पाठकोंको पाश्चात
लेखकोंके मानस शास्त्र विषयक आधुनिक ग्रन्थोंका अध्ययन
करना चाहिए)।

स्मृतिके उद्बोधक कारणोंमें प्राचीन दार्शनिकोंने इच्छा
(Will to remember) तथा प्रणिधान (Attention
पर विशेष जोर दिया है क्योंकि स्मरण व्यापार-कालमें मनकी
प्रवृत्तियां अविरत चालू रहती हैं। यदि इच्छा (Will)

होती तो स्मरण भी नहीं होता यह प्रत्येकका सामान्य अनुभव है। मनकी अवस्थाके सूचक और भी विशेष कारण है। द्वेष, भय, राग, धर्म, अधर्म, आदि का मनपर विशेष प्रभाव होता है। लिङ्ग, सादृश्य, विरोध, कार्य, रूप ग्रहण, निमित्त ग्रहण आदि बाह्य उद्बोधकोंको स्पष्ट करते हैं और अभ्यास आदि कारण, स्मृतिको जाग्रत रखनेका मार्ग दर्शन करते हैं। फिर भी स्मृतिके जटिल व्यापारोंको किसी विशेष नियमोंके साँचेमें बैठाना उन्होंने उचित नहीं माना है क्योंकि कभी-कभी स्मरणका कारण मालूम नहीं होता (न चायं स्मर्तासर्वं स्मृतिहेतुं संवेदयते)* ।

भिन्न-भिन्न मनुष्योंकी स्मरण शक्तिमें न्यूनाधिकता देखी जाती है। क्योंकि स्मरण शक्ति पर आनुवंशिक संस्कारों (Heri dity) एवं मस्तिष्क और ज्ञानतंतुओंके विकासका प्रभाव होत है ; और देहको मिलनेवाले पोषण तथा शारीरिक व्याधियांक भी इस शक्तिपर विशेष प्रभाव होता है।

(देखो—आगे स्मृति भ्रंशकी चर्चाको)

बाल्यावस्थासे बृद्धावस्था तक स्मरण शक्तिमें भी अवस्था-

* विस्मरण (Forget fulness or obliviscence) पाश्चात्य मानस शास्त्रियोंने विस्मरणकी तथा इसके कारणोंकी भी चर्चाकी है। परन्तु पूर्वके मानस शास्त्रियोंने इसको स्मृतिका अभाव मानकर चित्तवृत्तियोंमें स्थान नहीं दिया है। हमारे दार्शनिकोंने अभावको भी एक पदार्थ माना था, इसलिये उन्होंने विस्मृतिका अलग विवेचन नहीं किया था ऐसा मालूम होता है।

जन्य स्वाभाविक परिवर्तन होते हैं। बालक नये-नये संस्कार प्राप्त करता है और संस्कार प्राप्तिके लिये अपनी समस्त इन्द्रियोंका उपयोग करता है। इस अवस्थामें मुख पाठ (Ricitation) अभ्यास (Repetition), रूप ग्रहण, प्राप्ति आदि स्मृति पोषक तत्त्व बनते हैं। संक्षेपमें बालक याद रखता है या याद करनेके लिये कोशिश करता है, यद्यपि उसमें समझनेकी शक्ति (Understanding or Reason) किंवा बुद्धि कम होती है। प्रौढ़ावस्थामें वह अधिक विचारशील और बुद्धिप्रधान बनता है। इसलिये विभिन्न विचारों किंवा संस्कारोंका साहचर्य बनने लगता है और प्रत्येक घटनाका कार्य कारण भाव ढूढ़ कर उसको याद रखनेका प्रयत्न करता है। दूसरे शब्दोंमें कहा जाय तो वह केवल तोतेकी तरह अर्थ शून्य रटना छोड़कर, सहेतुक स्मृतिका विकास करता है। बुढ़ापेमें स्मरण शक्ति धीरे-धीरे क्षीण होने लगती है, तब उसको बाल्यावस्था या प्रौढ़ावस्थाके संस्कारोंका स्मरण होता है, परन्तु ताजे संस्कारोंको वह भूल जाता है। जहां-जहां उसको कुछ बातोंका विस्मरण हो जाता है वहां-वहां वह काल्पनिक बातों (Fabulations) को घुसेड़ देता है। इसीके कारण बूढ़े बहुत गप्पी (वाचाल) हो जाते हैं और उसकी एक सच्ची बातके चारों ओर काल्पनिक बातोंके स्तर लिपटे रहते हैं।

हमारे देशमें स्मरण शक्तिका विकास करने और उसको चिरस्थायी रखनेके लिये बहुत कुछ प्रयत्न किये गये हैं। शतावधान

साहस्रावधान आदि शब्द इस बातका समर्थन करते हैं। इस विषयमें स्वर्गीय पंडित गट्टुलालजी (बंबई) एवं स्व० पंडित रायचन्द्रजीके उदाहरण ताजे ही हैं।

प्रत्यभिज्ञान (Recognition) स्मृति व्यापार और प्रत्यक्ष ज्ञानके साथ सम्बद्ध इस चित्त व्यापारकी चर्चा अब शुरू करते हैं; क्योंकि इन दोनोंके साथ प्रत्यभिज्ञानका गाढ़ सम्बन्ध रहता है। प्रत्यभिज्ञानका अर्थ है पहिचान। एक बार अनुभूत—देखी, सुनी, सूँघी हुई आदि—वस्तुका फिर प्रत्यक्ष होनेपर जिसका मैं पहले अनुभव कर चुका हूं वही यह चीज है इस प्रकारका जो ज्ञान होता है उसका नाम प्रत्यभिज्ञान है। "जिसे मैंने देखा था वही यह घर है। जिसे मैंने देखा था यह वही देवदत्त है।" इत्यादि इसके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। यह प्रत्यभिज्ञान सामान्य या मिश्र प्रकारका हो सकता है*। वही यह घड़ा है यह सामान्य है और वही यह गुलाबका फूल है इस ज्ञानके साथ उसकी गंध, रंग, स्पर्श आदिका भी ज्ञान होना मिश्र प्रकारका प्रत्यभिज्ञान है।

प्रत्यभिज्ञानके स्वरूपके विषयमें भारतीय दार्शनिकोंमें तीव्र मतभेद है। स्मृति और प्रत्यभिज्ञानके बीचमें कुछ भेद है। यद्यपि वह स्मृति व्यापारोंके साथ सम्बद्ध है। स्मृतिकी उत्पत्ति

* किं पुनरिदं प्रत्यभिज्ञानम्? पूर्वमज्ञासिषमर्थं तमिमं जानामीति ज्ञानयोः समानेऽर्थे प्रतिसन्धिज्ञानं प्रत्यभिज्ञानम्। वात्स्या० भा० ३-२-२

संस्कार द्वारा होती है और पहले अनुभूत पदार्थ एवं वर्तमान-कालमें जिसका अनुभव हो रहा है इन दोनोंके बीच साहश्य-एकताका दर्शन (Perception) होनेपर प्रत्यभिज्ञानकी उत्पत्ति होती है।

जिसे मैंने पहले देखा था वही यह ताजमहल है यह प्रत्यभिज्ञान है। इस उदाहरणमें "मैंने पहले जिसको देखा था" यह स्मृति है और "वही यह ताजमहल है" यह प्रत्यक्ष अनुभव है। ऐसी स्मृतिमें प्रत्यभिज्ञान स्मृति और अनुभव इन दोनों मानसिक व्यापारोंके संयुक्त होनेसे बना हुआ विशिष्ट व्यापार है या केवल स्मृति या केवल अनुभव है? इन प्रश्नोंके उत्तर निम्न हैं।

बौद्ध कहते हैं कि प्रत्यभिज्ञा नामका कोई स्वतन्त्र ज्ञान नहीं है, किन्तु स्मृति और अनुभवके मिलनेसे निष्पन्न हुए ज्ञानका इस शब्दसे व्यवहार होता है। अर्थात् बौद्धोंने प्रत्यभिज्ञानको स्मृति और अनुभवका समुच्चय रूप माना है। उनके इन विचारोंका न्याय, मीमांसक आदि वैदिक दर्शनोंने खंडन किया है। उनके अनुसार प्रत्यभिज्ञान एक विशिष्ट प्रकारका प्रत्यक्ष ज्ञान (अनुभव) है न कि स्मरण और प्रत्यक्षका समुच्चय। यह बर्तमानकालीन प्रत्यक्षज्ञान, भूत कालीन संस्कारोंकी स्मृतिका संयोग होनेसे अधिक समृद्ध होता है यही सिर्फ विशेषता है। जयन्त भट्ट कहते हैं कि स्मरण सहकृत इन्द्रिय जन्य प्रत्यक्षके बाद एक मानस ज्ञान उत्पन्न होता है, जिसका नाम प्रत्यभिज्ञान है।

अर्थात् वैदिक दर्शन उसको एक प्रकारका प्रत्यक्ष (Qualified perception) मानते हैं और स्मरणको उसका सहकारी अंश मानते हैं। जयन्त भट्ट* प्रत्यभिज्ञानके अवयवी भूत मानसिक व्यापारपर विशेष जोर देते हैं और इन्द्रियोंके कार्योंको गौण स्थान देते हैं। जैन दर्शनने अपने स्वभावके अनुसार इन दोनों विरोधी मतोंका मध्यवर्ती मार्ग ग्रहण किया है। वे प्रत्यभिज्ञानको परोक्ष ज्ञान मानते हैं और कहते हैं कि इन्द्रिय जन्य ज्ञान एवं स्मरणके बाद एक सङ्कलनात्मक विजातीय मानस ज्ञान पैदा होता है, जिसका नाम प्रत्यभिज्ञा है। सब जैन तार्किकोंने इस बातको स्वीकार किया है।

कल्पना (Imagination) कल्पना भी एक महत्त्वपूर्ण मनो व्यापार है। उसका भी स्मृति-प्रतीति (Memory and Perception) के साथ थोड़ा बहुत संबन्ध है। योग शास्त्रमें भगवान पतञ्जलि द्वारा बताई गयी पाँच चित्तवृत्तियोंमें कल्पना-विकल्प-भी उपयोगी मनोवृत्ति है। सांख्योंने भी संकल्प-विकल्प

---

* अपिच केयं प्रत्यभिज्ञानामेति नैपुण्येन निरुपयितुमर्हन्त्यत्रभवन्तः किं स एवायं कुम्भ इत्येकं ज्ञानमुत द्वे एते स्मृत्यनुभवज्ञाने ? यद्येकं तदस्य कारणं वाच्यं यत उत्पद्यते ? नेन्द्रियं स इत्यस्मिन्नंशेतस्यासामर्थ्यात्, न संस्कारस्तस्याप्ययमित्यंशे कौशलाभावात् × × × × एवं पूर्व ज्ञान विशेषितस्य-स्तम्भादेर्विशेषणमतीते विषय इति मानसी प्रत्यभिज्ञा।

आधुनिक मानस शास्त्रियोंने भी प्रत्यभिज्ञानका प्रत्यक्षमें ही समावेश किया है (Re-Cognition)।

करना मनका धर्म है ऐसा कहा है। भगवान चरकने भी मनके अर्थ गिनाते हुए इसी प्रकारका मत प्रदर्शित किया है (सङ्कल्प्यमेवच)।

कल्पनाका स्वरूप क्या है ? प्राचीन कालमें कल्पना शब्दके * विभिन्न अर्थ थे। अंग्रेजीमें भी कल्पना-वाचक 'इमेजिनेशन' (Imagination) शब्द तीन अर्थोंमें प्रयुक्त किया जाता है। ये मतभेद कल्पनाके स्वरूपके विषयमें हैं, इसलिये स्वाभाविक हैं। यहाँ सबसे अधिक प्रचलित अर्थमें ही उसका प्रयोग किया है।

विकल्प किंवा कल्पना-व्यापार, शुद्ध प्रतीत या प्रत्यक्ष व्यापार नहीं है क्योंकि इसमें हमारी इन्द्रियोंके सामने कोई इन्द्रियग्राह्य पदार्थ नहीं होता। वह शुद्ध स्मृति भी नहीं है क्योंकि स्मृतिकी उत्पत्ति तो भूतकालीन संस्कारोंसे होती है और कल्पनाका तीनों कालके साथ संबंध है। वह विपर्यय किंवा भ्रम भी नहीं है क्योंकि भ्रममें भी इन्द्रियोंके सामने पदार्थ तो रहता है परन्तु उसका स्वरूप उलटा समझा जाता है यह हम आगे चल कर लिखेंगे।

---

* केयं कल्पना ?—किं गुणचलनजात्यादिविशेषणोत्पादितं विज्ञानं कल्पना, आहो स्मृत्युत्पादकं विज्ञानं कल्पना, स्मृतिरूपं वा स्मृत्युत्पाद्यं वा, अभिलापसंसर्गनिभासो वा, अभिलापवती प्रतीतिर्वा कल्पना, अस्पष्टाकारा वा, अतात्त्विकार्थगृहीति रूपा वा, स्वयं वाऽतात्त्विकी,, त्रिरूपाल्लिङ्गातोऽर्थदृग्वा, अतीताऽनागतार्थनिर्भासा वा ?। जयराशिभट्ट-तत्त्वोपप्लवसिंह-पृष्ठ३२

भगवान पतञ्जलि* कहते हैं कि "जिसमें कोई (इन्द्रियग्राह्य) वस्तु नहीं होती किन्तु जो शब्द ज्ञानके परिणाम स्वरूप उत्पन्न होता है उस चित्त व्यापारका नाम विकल्प या कल्पना है।" †सुविख्यात बौद्ध तार्किक भदन्त धर्मकीर्ति कहते हैं कि जिस प्रतीतिमें वाचक शब्दों द्वारा व्यवहार हो सके ऐसे पदार्थोंका आभास हो उसका नाम कल्पना है।" अर्थात् पदार्थके न होने पर भी उसका आभास इतना प्रबल होता है कि हम उसको इन्द्रियग्राह्य पदार्थ मानकर उसी रूपमें व्यवहार करते है।

कल्पना द्वारा भेदमें अभेद और अभेदमें भेद दिखाई देता है। इसमें सत्य वस्तु हमारे सामने न होने पर भी उसको वास्तविक सत्य ही है ऐसा मानकर हम व्यवहार करते हैं। यहाँ प्रश्न होगा कि जब वस्तु होती ही नहीं तो फिर केवल शब्द प्रयोगसे मन पर इतना अधिक प्रभाव कैसे होता है? होता है यह तो सबको विदित है। व्यास भाष्यमें उत्तर दिया है कि इस प्रकारका

---

* शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः॥ योगसूत्र-१०१०९.
व्यास भाष्य—सन प्रमाणोपारोही। न विपर्ययोपारोहीवस्तुशून्यत्वेऽपि शब्दज्ञान माहात्म्यनिबन्धनो व्यवहारो दृश्यते।

† अभिलापसंसर्ग योग्य प्रतिभासा प्रतीतिः कल्पना।

टीका—अभिलप्यतेऽनेनेत्यभिलापः शब्दः। अभिलापेन संसर्गः एकस्मिन्-ज्ञानेऽभिधेयाकारस्याभिधानाकारेणसहग्राह्याकारतयामिलनम्। अभिलापसंसर्गाय योग्योऽभिधेयाभासो यस्य प्रतीतौ सा तथोक्ता। धर्मकीर्ति-न्याय बिन्दु

प्रभाव होनेका कारण शब्दज्ञान है। शब्दके संस्कार तो मन पर होते ही हैं; वे जाग्रत होते हैं और वस्तुके अभावमें भी वह मौजूद हो ऐसा व्यवहार होता है। "शब्दोंका अनुसरण किये विना किसी भी ज्ञानकी जगत्में होनेकी सम्भावना नहीं है। ज्ञान और शब्द एक दूसरेमें ओतप्रोत हो गये होते हैं। "प्रसिद्ध वैयाकरण भर्तृहरिके* ये शब्द अक्षरशः सत्य हैं।

कल्पना नामक मानस व्यापार-चित्तवृत्ति—द्वारा हम अपने मनमें उत्पन्न हुए संस्कारोंको एक नवीन स्वरूपमें रखकर, नये-नये पदार्थों किंवा वस्तुओंका, जिनका हमने पहले अनुभव न किया हो, निर्माण करते हैं। स्मृति द्वारा पुराने संस्कार जाग्रत होते हैं और कल्पना द्वारा वे नये-नये आकारोंमें प्रस्तुत किये जाते हैं†। इस प्रकार स्मृति और कल्पना दोनों व्यापार भूतकालीन संस्कारोंका उपयोग करते हैं फिर भी दोनों एक नहीं हैं। स्मृति तो केवल किसी पदार्थका, जसा जिस स्थानमें और जिस समय में हमको अनुभव हुआ था, उसका वैसा ही फिरसे ज्ञान कराती और कल्पना व्यापार उसका नये-नये सिरेसे ज्ञान कराती है। यथा-एक मनुष्य (देवदत्त) को हमने किसी स्थान पर किसी दिन

* नसोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते। भर्तृहरि—वाक्यपदीय

† When the individual records facts, previously observed in reality and then proceeds to rearrange these facts into a new pattern, he is said to show imagination
(Woodworth-Psychology-chapter XVII

जैसा देखा होता है वैसाही वह हमारे स्मृति प्रदेशमें उपस्थित होता है और नृसिंह भगवानका स्वरूप कल्पना प्रदेशमें ही उपस्थित होता है क्योंकि उसमें हमारे नर और सिंहके भूतकालीन संस्कार इकट्ठे होकर एक नये स्वरूपकी कल्पना की जाती है। हम लोगोंने स्वर्ग देखा नहीं है फिर भी जितने सुखके साधनोंका हमको अनुभव हुआ हो उन सबको एक स्थानमें एकत्रित करके हम उसको स्वर्ग कहते हैं। इस प्रकार कल्पना व्यापारका पृथक्करण करनेसे उसकी मर्यादाओंका भी पता चलता है। जिसका कभी भी अनुभव न हुआ हो उस वस्तुके विषयमें कल्पना नहीं हो सकती। उदाहरणतया अंधे और बहिरे मनुष्य क्रमशः मेघ धनुषके रंग या स्वर सप्तकके विषयमें किसी भी प्रकारकी कल्पना नहीं कर सकते। अनुभूत विषयकी स्मृति ही लुप्त हो जाय तो उसके विषयकी भी कल्पना नहीं हो सकती। अर्थात्-स्मृतिके व्यापार कल्पना व्यापारके प्रबल पोषक तत्त्व हैं। जैसे अपने पूर्वजन्मका हमको कुछ भी स्मरण नहीं होता, इसलिये उसके विषयमें हम कुछ भी सुसंगत कल्पना नहीं कर सकते। कल्पना द्वारा प्रेमी युगल, पति और पत्नीको (दंपतिको) एक मानकर भेदमें अभेद मानते हैं और कल्पना द्वारा ही, भक्त, एक अद्वितीय परमात्माको भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकार कर अभेदमें भेद मानते हैं। यह आभास है फिर भी इससे व्यवहारमें बाधा नहीं होती*। हम बर्फ एवं चन्द्रमाको शीतल मानते हैं कविकी

* एतदुक्तं भवति-क्वचिदभेदे भेदमारोपयति, क्वचित्पुनर्भिन्नानामभे-

कल्पनाने तो चन्द्रको भी अंगारोंसे भरी अंगीठी कहा है*।

सब मनुष्योंकी कल्पना शक्ति एकसी नहीं होती। वह किसीमें अधिक तो किसीमें कम विकसित हुई देखनेमें आती है। कवियों, शिल्पिओं, स्थपतियों, चित्रकारों इत्यादिमें उसका अधिक विकास देखा जाता है। कला और कल्पनाके बीच गाढ़ सम्बन्ध है। बुद्धिके नियन्त्रणमें चलनेवाले कल्पना-व्यापारों द्वारा जगतमें बहुतसे आविष्कार हुए हैं। केवल जब कल्पना व्यापारका अतियोग या मिथ्या योग होता है तब कठिनाईयाँ उत्पन्न होती हैं। स्वप्नमें या दिवास्वप्न (Day dreams) में कल्पना निरंकुश होकर विहार करती है। इस बातका वर्णन आगे आयगा।

आर्षज्ञान—प्रातिभज्ञान—(Intuition)—इन्द्रियों द्वारा मिलनेवाले ज्ञान-प्रत्यक्ष एवं अनुमान, स्मृति आदि द्वारा होनेवाले ज्ञानके अतिरिक्त भी एक विशेष प्रकारका ज्ञान होता है जिसका प्रतिभा, प्रज्ञा, आर्षज्ञान, सिद्धदर्शन, योगिप्रत्यक्ष आदि विभिन्न नामों से व्यहार होता है†। प्रशस्तपाद कहते हैं कि धर्मविशेषके फल

दम्। ततो भेदस्याभेदस्य च वस्तुनो भावात्तदाभासो विकल्पो न प्रमाणं नापि विपर्ययो व्यवहारविसंवादित्त्वात् ॥ वाचस्पतिमिश्र-तत्त्ववैशारदी—१०१०९

* रथाङ्गाह्वानानां भवति विधुरङ्गारशकटी—सुभाषितं।

† आर्षं सिद्ध दर्शनंच धर्मेभ्यः ॥ वै० सूत्र० ८-२-१३

प्रशस्तपाद भाष्य—आम्नायविधातृणामृषीणमतीतानागतवर्तमानेषु, अतीन्द्रियेष्वर्थेषु धर्मादिषु, ग्रन्थोपनिबद्धेष्वनुपनिबद्धेषु चात्ममनसोः संयोगाद् धर्म-

स्वरूप तथा आत्मा और मनका संयोग होनेपर संवेदनकर्ता ऋषियों को (Seers) भूत, भविष्य और वर्तमानकालका अतीन्द्रिय अर्थोंका-धर्म, अधर्म, दिशा, काल आदिका जो यथार्थ ज्ञान होता है वह आर्षज्ञान है; फिर चाहे उन अर्थोंका वर्णन आगमों में किया गया हो या न किया गया हो। यह ज्ञान विशेषतः देवर्षियों में रहता है और कभी जगत् के सामान्य मनुष्यों में भी देखा जाता है, जैसे कोई लड़की कहे कि भाई साहब कल घर आवेंगे ऐसा मेरा दिल (अन्तरात्मा) कह रहा है। भगवान पतञ्जलि*ने विवेकजन्य ज्ञानका उल्लेख किया है और न्यायदर्शन † में अलौकिक सन्निकर्षके (Transcedental Perception) वर्णनके सिलसिलेमें योगज सन्निकर्षकी गणना की है। अर्थात्

विशेषाच्च यत् प्रातिभं यथार्थनिवेदनं ज्ञानमुत्पद्यते तदार्षमित्याचक्षते। तत्तु प्रस्तारेण देवर्षीणां कदाचिदेव लौकिकानां यथा कन्यका ब्रवीति श्वो मेभ्राताऽऽगन्ते ति हृदयं मे कथयति। प्र० पा० गुणग्रन्थ

* तारकं सर्वविषयं सर्वथा विषयक्रमं चेति विकेकजं ज्ञानम्।
यो० सू० ३-५४

व्यास भाष्य—तारकमिति स्वप्रतिभोत्थमनौपदेशिकमित्यर्थः। सर्व विषयत्वान्नास्य किञ्चिदविषयोभूतमित्यर्थः। सर्वथा विषयमतीतानागत प्रत्युत्पन्नं सर्वं पर्यायैः सर्वथा जानातीत्यर्थः। अक्रममित्येकक्षणोपारूढं सर्वं सर्वथा गृह्णातीत्यर्थः। एतद्विवेकजं ज्ञानं परिपूर्णम्।

† अलौकिकस्तु व्यापारस्त्रिविधः परिकीर्तितः।
सामान्य लक्षणो ज्ञान लक्षणे योगजस्तथा॥ कारिकावली—६३

भारतीय दार्शनिकतत्त्ववेत्ता अपने दीर्घ कालीन अनुभवसे कहते हैं कि चित्तमें एक इस प्रकारकी गूढ़ शक्ति रहती है जिसके जाग्रत् होनेपर मनुष्यको तीनों कालका ज्ञान, किसी भी इन्द्रिय, उपदेश किंवा स्मरणकी सहायता के बिना भी हो सकता है। यह बात अनुभव गम्य है, इसलिये वैज्ञानिक प्रयोगों या प्रमाण शास्त्रकी दलीलों द्वारा उसका रहस्य नहीं समझा जा सकता* जिन्होंने उच्च-कोटिके धार्मिक जीवन द्वारा अपनी मानसिक शक्तियोंका विकास किया हो, उन मनुष्यों में इस तरह का प्रतिभा-जन्य ज्ञान देखा जाता है। जिनके पूर्वजन्मके संस्कार अति उच्चकोटिके हों ऐसे महा पुरुषों में भी प्रतिभाका दर्शन होता है। इस ज्ञानमें देश और कालकी मर्यादा नहीं होती और न उपदेशकी आवश्यकता होती है। वह संशय और विपर्ययसे भी मुक्त होता है एवं काल्पनिक ज्ञानसे भी भिन्न होता है। प्रतिभा द्वारा पारमार्थिक सत्यका ज्ञान होता है इसलिये उसको काल्पनिक नहीं कह सकते। जिस तरह चर्म चक्षुओं द्वारा रूप-रंग-युक्त पदार्थ दिखाई देते हैं वैसे ही प्रतिभाके बल से अतीन्द्रिय पदार्थोंका भी ज्ञान होता है†।

---

* प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक बुद्धघोष विज्ञान और संज्ञाकी अपेक्षा प्रज्ञाको उच्चस्थान देता है।

† The reality of the object is what distingwishes intuitive knowledge from mere imagination. xxx It is not fancy or make-believe but a bonafide discovery of reality. We can see not only with the eyes of the body, but with those of our souls. Things unseen become as evident to

अविद्या-अयथार्थानुभव-(अप्रमा) के भेद—अब तक हमने विद्याके प्रकारों का विचार किया। अब अविद्याके प्रकारों का विचार करते हैं। पदार्थ जैसे हों उनका वैसा ही अनुभव (यथार्था नुभव) जब होता है तब उन पदार्थोंका ज्ञान सत्य माना जाता है। परन्तु जब पदार्थका निश्चयात्मक ज्ञान नहीं होता उस समय मनके जो-जो व्यापार होते हैं उनका वर्णन अब किया जायगा। इन भेदों में संशय, ऊह, तर्क, अनध्यवसाय, विपर्यय, स्वप्न आदिका समावेश है।

संशय (Doubt)—संशय के दार्शनिकोंने जो लक्षण किये हैं उनको दो विभागों में बाँट सकते हैं। कुछ लोग संशयका लक्षण 'कारण मूलक' और कुछ लोग 'स्वरूप मूलक' मानते हैं। इसके भेदोंकी संख्याके विषयमें मत भेद देखनेमें आता है, परन्तु इसके स्वरूपके विषयमें सब एक मत हैं। जब मन किसी पदार्थ विशेषके विषयमें किसी भी प्रकारका निश्चयात्मक ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता तब अधिक प्रमाणोंके अभावमें वह सन्देहावस्थामें पहुंच जाता है। क्योंकि निश्चय नहीं होता है

---

the light in the soul as things seen to the physical eyes. Intuition in the extension of perception to regions beyond sense. × × × Intuitive truths as simple acts of mental vision are free from doubt. They do not carry conviction on the ground of their logical validity. We cannot help assenting to them, as soon as we intuit them. Doubts occur when reflection supervenes (Sir. S. Radhakrishnan—An Idealist View of Life p. 143-146)

दार्शनिकोंने इसके कारण भी न्यूनाधिक संख्यामें दि
हैं। "ईश्वर है" यह निश्चयात्मक ज्ञान है; "ईश्वर नहीं है" यह भ
उसके विपरीत प्रकारका निश्चयात्मक ज्ञान है। परन्तु "ईश्व
है या नहीं" यह सन्देहावस्था है। भगवान चरकने संश
के स्वरूपकी विवेचना करते हुए अकाल मृत्युका उदाहरण दिया है
जो वद्यकीय साहित्यके अनुरूप है[६]। स्वरूप*—आत्मा, मन, इन्द्रि

---

* समानानेकधर्मोपपत्तेर्विप्रतिपत्तेरुपलब्ध्यनुपलब्ध्यव्यवस्थातश्चविशेषापेक्षो विमर्शः संशयः। न्या० सू० १-१-२

समानानेकधर्मोपपत्तेरिति सूत्रम्। तत्रसमानधर्मोपपत्तेरनेकधर्मोपपत्तेर्वि प्रतिपत्तेश्च,त्रिविधएवसंशय इतरपदविशेषणाद्भवतीतिसूत्रार्थः। तत्र विषय स्वरू नव धारणात्मकःप्रत्ययः संशयः समानधर्मादिभ्यउत्पन्नोविषयस्यविशेषंनावधारय यः स संशयइत्युच्यते। उद्योतकर-न्यायवार्तिक १-१-२

सामान्यप्रत्यक्षाद्विशेषाप्रत्यक्षाद्विशेषस्मृतेश्चसंशयः। दृष्टंच दृष्टवत्। य दृष्टमयथादृष्टत्वाच्च। विद्याऽविद्यातश्चसंशयः। वै०सू०२-२-१७-२

संशयस्तावत् प्रसिद्धानेक विशेषयोः सादृश्यमात्रदर्शनादुभयविशेषानुस्मरणा धर्माच्चकिंस्विदित्युभयावलम्बीविमर्शः संशयः। सचद्विविधः। अन्तर्बहिश्च × × × × सामान्य विशेषानभिव्यक्तावुभयविशेषानुस्मरणादुभयत्राकृष्यमाणस्य त्मनः प्रत्ययो दोलायते किन्तुखल्वयंस्थाणुःस्यात्पुरुषोवेति।

प्र० पा० भाष्य—गुणग्र

साधकबाधकप्रमाणाभावादनवस्थितानेककोटिसंस्पर्शिज्ञानं संशयः।

देवसूरि०प्रमाण नयतत्त्वालोक १-१

र विषयके सन्निकर्ष होने पर, एक ही धर्मीमें (पदार्थमें). विध्यहेतुओंके कारण जब उसके यथार्थ स्वरूपकी अवधारणा निश्चित नहीं हो सकती तब जो चित्त व्यापार काम करते हैं का नाम संशय है। यह एक प्रकारका ज्ञान (प्रत्यय) है। न प्रमाण है न विपर्यय, किन्तु अपूर्ण ज्ञान है। जब तक विषय विशेष निश्चयात्मक ज्ञान नहीं होता तब तक मन "यह होगा या होगा" इस प्रकारकी संदेहावस्थामें एक ओरसे दूसरी ओर लीयमान होता रहता है। (प्रत्ययो दोलायते)।

कारणके अनुसार संशयके पाँच भेद हैं ऐसा भगवान त्स्यायन अपने भाष्यमें कहते हैं उद्योतकर, वाचस्पति मिश्र आदि सिद्ध नयायिक इसके तीन भेद मानते हैं। प्रशस्तपाद केवल दो द बताते हैं। इन सबकी विस्तृत चर्चा जिज्ञासुओंको तद्-तद् थोंमें देखना चाहिये।

वैद्योंके लिये संशयकी विवेचना उपयोगी है क्योंकि रोग निश्चय करनेमें उनको स्वयं संशय न हो इसका बहुत ख्याल खना पड़ता है। रोगीके लक्षणोंको देखकर उसको रक्त-पित्त है अर्श है, अतिसार है या ग्रहणी है इसका निश्चय करना होता और इसमें उसको खूब सोचना भी पड़ता है अन्यथा वे स्वयं सन्देहग्रस्त हो जाते हैं। दूसरी ओर रोगीका मन भी शङ्काशील बना जाता है। मानसिक रोगोंसे पीड़ित रोगियोंमें यह लक्षण अधिक प्रमाणमें देखा जाता है।

ऊह और तर्क (Conjecture and Hypothetical Argument)—वेद*, उपनिषद् एवं दर्शन ग्रन्थोंमें इन दोनों शब्दोंका थोड़ा बहुत अर्थभेदसे विविध प्रसङ्गोंमें प्रयोग हुआ दिखाई देता है। परन्तु इनके सम्पूर्ण अर्थोंमें एक सामान्य अंश देखा जाता है और वह है विचारात्मक ज्ञान व्यापार। भगवान् चरकने चिन्तन, विचार, ऊह आदि मनोव्यापारोंकी गणनामें ऊहको अलग गिनाया है। सुप्रसिद्ध टीकाकार चक्रपाणि ऊहका अर्थ निर्विकल्प आलोचन ज्ञान करते हैं और योगेन्द्रनाथ सेन उसको तर्क ही के अर्थमें समझते हैं। सप्तपदार्थीके लेखक शिवादित्यका मत कुछ भिन्न ही है।

शिवादित्यके कथनानुसार संशयमें एक ही धर्मीमें (पदार्थमें) एक समयमें विरुद्ध प्रकारके अनेक विशेष धर्मवाले दो या अधिक धर्मियोंकी प्रतीति होती है, इसलिये मन स्थिर निश्चय नहीं कर सकता। "यह मनुष्य है, खम्भा है या वृक्षका ठूँठ है" इसका निश्चयात्मक ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि दो-तीन कोटियाँ एक साथ याद आती हैं। ऊहमें दो कोटियोंमें एक अधिक प्रबल होती है और दूसरी दब जाती है। उदाहरणतः धानके खेतमें एक ऊँची वस्तुको देखकर विचार होता है कि यह आदमी है या खम्भा। यह संशयावस्था है। इससे आ

*—उपसर्गाद्ध्रस्व ऊहतेः ॥ पा० सू० ७-४-२
नैषातर्केणमतिरापनेया ॥ कठोपनिषद् २-
तर्काप्रतिष्ठानात् ॥ ब्रह्म० सू० २-१-१
त्रिविधश्च ऊहः। मन्त्र सामसंस्कार विषयः। शाबर भा० ९-१-

चलकर सोचनेपर मालूम होता है कि धानके खेतमें खम्भा क्वचित् ही देखा जाता है इसलिये वह मनुष्य ही होना चाहिये। संशयमें दोनों कोटियोंकी प्रबलता होती है और मनको परस्पर विरुद्ध दिशामें खींचती हैं, जब कि ऊहमें एक कोटि बलवत्तर होकर दूसरीको दवा देती है* और मन एक कोटिको स्वीकार कर लेता है। परन्तु न्याय सूत्रकार तर्कका लक्षण बतलाते हुए ऊहको एक प्रकारका विचारात्मक ज्ञान मानते हैं और लौकिक भाषामें भी हम किसी वस्तुका ऊहापोह करना यानी गुण-दोषकी विचारणा करना, चर्चा करना इस अर्थमें ऊह शब्दका प्रयोग करते हैं। तर्कके विषयमें नैयायिकोंने खूब चर्चा की है। न्याय सूत्रकार कहते हैं कि† "यथार्थरूपमें न जानी हुई वस्तुके तत्त्वको

---

*—सप्त पदार्थी पृष्ठ ६८

†—अविज्ञात तत्त्वेऽर्थे कारणोपपत्तितस्तत्त्वज्ञानार्थमूहस्तर्कः।

वा० भाष्य—अविज्ञायमानतत्त्वेऽर्थे जिज्ञासा तावज्जायते-जानीयेममर्थमिति। अथ जिज्ञासितस्यवस्तुनो व्याहतौधर्मौ विभागेन विमृशति—किस्विदित्थमाहोस्विन्नेत्थमितिविमृश्यमानयोर्धर्मयोरेकं कारणोपपत्याऽनुजानाति, संभवत्यस्मिन् कारणं प्रमाणं हेतुरिति—कारणोपपत्त्या स्यादेवमेतन्नेतरदिति × × × × यत्र कारणमनुपपद्यमानं पश्यति तन्नानुजानाति। सोऽयमेवंलक्षण-ऊहस्तर्क इत्युच्यते। कथं पुनरयं तत्वज्ञानार्थो न तत्वज्ञानमेवेति? अनवधारणात्। अनुजानात्ययमेकतरं धर्मं कारणोपपत्त्या, नत्ववधारयति, न व्यवस्यति, न निश्चिनोतिएवमेवेदमिति"। सू०१-१-४०

वा० भाष्य—तर्को न प्रमाणसंगृहीतो, न प्रमाणान्तरम्, प्रमाणानामनुग्राहकस्तत्त्वज्ञानाय कल्पते। सू० १-१-२

समझनेके लिये प्रमाणपूर्वक—कारण पुरःसर—विचारणा करना इसका नाम तर्क है।" इस सूत्रके अनुसार तर्क स्वयं प्रमाण नहीं है किन्तु प्रमाणानुकूल,—प्रमाणानुग्राहक—विचार-व्यापार है। उत्तर कालीन नैयायिकोंने तर्कके अर्थको और भी स्थिर और स्पष्ट किया है और निर्णय किया है कि तर्क कोई प्रमाणात्मक ज्ञान नहीं है फिर भी व्याप्ति-ज्ञानमें बाधक होनेवाली अप्रयोजकत्व शंकाको दूर करनेके लिये वह बहुत उपयोगी है और व्याप्ति-निर्णयमें बहुत सहायक होता है क्योंकि वह व्यभिचार-शङ्काको दूर करता है।

हमारी प्रतिज्ञा (Proposition) किंवा हमारा किया हुआ निर्णय ठीक है या नहीं ? इससे विरुद्ध पक्षका स्वीकार करनेपर किसी प्रकारका अनिष्ट प्रसङ्ग तो नहीं उपस्थित होगा ? इत्यादि विचार-तर्क- करनेपर हमको ज्ञातव्य वस्तुका निश्चयात्मक ज्ञान होता है। अर्थात् किसी प्रश्नके अनुकूल एवं प्रतिकूल सब पक्षोंका प्रमाण पुरःसर विचार करनेका अवसर हमको तर्क व्यापारमें मिलता है। मनुष्यका बुद्धि-बल जितना अधिक रहता है उतना ही उसका तर्क-बल भी अधिक होता है। उदाहरणतया आत्मा उत्पत्ति धर्मक है या अनुत्पत्ति धर्मक ? इस प्रश्नपर विचार करके उसको अनुत्पत्ति धर्मक माननेका निर्णय करते हुए हमें यह भी सोचना पड़ता है कि यदि उसको उत्पत्ति धर्मक माना जांय तो कौन अनिष्ट प्रसङ्ग उपस्थित होगा ? थोड़ी देरके लिये मान लें कि वह उत्पत्ति धर्मक है; तो फिर उसको अपने कर्मोंका फल

नहीं भोगना होगा, उसका पुनर्जन्म भी होगा और उसको मोक्ष भी नहीं होगी, इसलिये वह अनुत्पत्ति धर्मक किंवा शाश्वत (Eternal) है। अर्थात् हमारे मतसे विपरीत मतको स्वीकार करनेसे कैसा अनिष्ट या हास्यास्पद प्रसङ्ग उपस्थित होता है, इसको हेतु-पुरस्सर बतानेमें तर्क-व्यापार बहुत सहायक होता है। विज्ञानके क्षेत्रमें भी तर्कका काफी उपयोग किया जाता है।

फिर भी तर्क स्वयं यथार्थज्ञान—तत्त्वज्ञान नहीं है किन्तु तत्त्वज्ञानके लिये किया हुआ विचार—व्यापार है। उससे केवल इतना ही मालूम होता है कि पूर्वकृत प्रतिज्ञा किंवा निर्णयके विरुद्ध मत धारण करना अशक्य है। तर्क न संशय है न निर्णय। संशयमें दोनों कोटियां मनको एक साथ आकर्षित करती हैं और तर्क एक कोटिको असंभवित किंवा अशक्य प्रमाणित करके दूसरी कोटिको स्थिर करता है। अर्थात् वस्तुका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने में वह अप्रत्यक्षतया सहायक होता है। यद्यपि वस्तुके यथार्थ ज्ञानके लिये (प्रमाणके लिये)—प्रमाण ही उपयोगी शस्त्र है, और तर्क स्वयं स्वतन्त्र प्रमाण नहीं है फिर भी तर्क एक विशिष्ट प्रकारका अनुमान है ही। भगवान चरकने युक्त्यपेक्षी तर्कको अनुमान कहा है। उद्योतकरने इस मतका उल्लेख करके उसको केवल संज्ञा भेद ही कहा है, क्योंकि भगवान चरकके शब्दोंसे भी यही बात सूचित होती है। उद्योतकर आगे कहता है कि आत्माके विषयमें तर्क करने पर भी हम यह नहीं सिद्ध कर सकते कि आत्मा अनुत्पत्ति धर्मक ही है। हम इतना ही बतला सकते

हैं कि वह अनुत्पत्ति धर्मक होना चाहिए और यहीं तर्ककी सीमा किंवा मर्यादा समाप्त हो जाती है* ।

भगवान शङ्कराचार्यने अपने ब्रह्मसूत्रके भाष्यमें तर्कके विषयमें बहुत सूक्ष्म विचार किया हैं। उनके कथनका तात्पर्य यह है कि आगम रहित तर्क जो पुरुषोंकी उत्प्रेक्षाके फलस्वरूप हैं, उनको प्रतिष्ठित नहीं मान सकते, क्योंकि उत्प्रेक्षाका अंकुश (नियन्त्रण) नहीं होता। एक मनुष्यके तर्कको दूसरा विशेष चतुर मनुष्य गलत सिद्ध करता है और तीसरा दूसरेके तर्कोंको गलत सिद्ध करता है, यह सामान्य मनुष्योंकी तो बात है ही, परन्तु प्रतिष्ठित पुरुषोंकी भी यही दशा है। तीर्थंकर स्वरूप कपिल, कणाद आदि महात्माओं के तर्क भी परस्पर दूषण-युक्त मालूम हुए हैं। पर सब तर्क झूठे होते हैं ऐसा मानना भी उचित नहीं है क्योंकि ऐसा माननेसे लोक-व्यवहार नष्ट होनेका प्रसंग उपस्थित होता है। तब क्या करना चाहिए ? तर्ककी प्रतिष्ठा स्वीकार किया जाय या नहीं ? श्रुतियोंके अर्थोंके विषयमें कठिनाई उपस्थित होनेपर गलत अर्थोंको दूर कर सत्य-अर्थ करनेमें तर्क सहायक होता है।

---

* नन्वेतत्तत्त्वज्ञानमेव, किमुच्यते तत्त्वज्ञानार्थमिति। नेदं तत्त्वज्ञानमनवधारणात्। न ह्ययमवधारयत्येवमेवेति। किन्त्वनुत्पत्ति धर्मकेनज्ञात्रा भवितव्यमिति प्रमाण विषयमनुजानाति × × × यत्तावन्निर्णय संशयाभ्यां नोहो भिद्यत इति तन्न। प्रत्ययस्वरूपानवबोधात्। युक्तिः प्रमाणोपपत्तिः प्रमाणोपपत्तिमपेक्षमाणो यः प्रत्ययः स तर्क इति केवलं संज्ञाभेदमात्रम्।

न्यायवार्तिक १-१-४०

अर्थात् वेदशास्त्र विरोधी तर्कोंका समर्थन करते हुए, शुष्क तर्कोंके विरुद्ध ही वह अपनी आवाज उठाता है और मनुके मतसे अपने मतका समर्थन करता है*।

प्राचीन नैयायिकोंने तर्कके ११ भेद किये हैं। आधुनिक नैयायिकोंने उनका पाँच भेदोंमें अन्तर्भाव किया है†।

अविद्याका एक दूसरा प्रकार अनध्यवसाय नामसे प्रसिद्ध है, जिसका कुछ लोग संशयमें अन्तर्भाव करते हैं और कुछ उसको संशयसे भिन्न ही अविद्याका एक प्रकार विशेष मानते हैं। सप्तपदी के रचयिता शिवादित्य उसको संशयका प्रकार-विशेष मानने के पक्षमें हैं। प्रशस्तपाद और उनके दोनों टीकाकार उदयन और श्रीधर अनध्यवसायको अनवधारणात्मक ज्ञान तो मानते हैं

---

* तर्काप्रतिष्ठानादप्यन्यथानुमेयमिति चेदेवमप्यविमोक्ष प्रसङ्गः।

शां० भाष्य—यस्मान्निरागमाः पुरुषोत्प्रेक्षामात्र निबन्धनास्तर्का अप्रतिष्ठिता भवन्ति। उत्प्रेक्षाया निरङ्कुशत्वात्। तथा हि कैश्चिदभियुक्तैर्यत्नेनोत्प्रेक्षितास्तर्का अभियुक्ततरैरन्यैराभास्यमाना दृश्यन्ते। तैरप्युत्प्रेक्षिताः सन्तः ततोऽन्यैराभास्यन्त इति न प्रतिष्ठितत्वं तर्काणां शक्यमाश्रयितुं, पुरुष मतिवैरूप्यात्। ××। प्रसिद्ध माहात्म्यानुमतामपि तीर्थंकराणां कपिलकणभुक्प्रभृतीनां परस्पर विप्रतिपत्ति दर्शनात्। ×××। सर्वतर्काप्रतिष्ठायां च लोकव्यवहारोच्छेद प्रसङ्गः॥

ब्रह्मसूत्र—२-१-११

† यहाँ तर्कके सिर्फ प्रथम ही—भेदका वर्णन किया है। इन पाँच भेदोंके नाम पाश्चात्य नैयायिकोंकी संज्ञा सहित निम्न लिखित हैं।

परन्तु संशयसे उसका भेद बताते हैं। प्रशस्तपादका मत* निम्नलिखित है।

चित्तके कार्यान्तरमें व्याप्त होनेसे, या अधिक जाननेकी इच्छासे, ज्ञात या अज्ञात पदार्थोंका 'यह क्या है?' इतने ही केवल आलोचनात्मक ज्ञान होनेका नाम अनध्यवसाय है। प्रत्यक्ष और अनुमान इन दोनों व्यापारोंमें जैसे भ्रम या विपर्यय (Delusion or Error) होता है वैसे ही इन दोनों व्यापारों में अनध्यवसाय (Indeterminate knowledge) भी होता है। उदाहरणतया प्रत्यक्ष-ज्ञान व्यापारमें कोई परिचित व्यक्ति-राजा--हमारे सामनेसे निकल जाय और यदि हमारा चित्त किसी दूसरी वस्तुमें लगा हो या हम राजाको अधिक उत्सुकतासे देखना चाहते हों (अर्थित्वाद्वा) परन्तु वह तूफान मेलके वेगसे निकल जाय तो हमको, इस रास्तेसे कोई गुजर गया है, इतना ही सिर्फ आलोचनात्मक ज्ञान होगा। किसी

---

१ प्रमाणाबाधित प्रसङ्ग—Reductio ad absurdum

२ आत्माश्रय— Ignoratio clenchi

३ अन्योऽन्याश्रय— Mutual Dependence

४ चक्रिक— Circular Reasoning

५ अनवस्था— Infinite Regress.

* अनध्यवसायोऽपि प्रत्यक्षानुमान विषय एव सञ्जायते। तत्र प्रत्यक्ष विषये तावत्प्रसिद्धार्थेष्वप्रसिद्धार्थेषु वा, व्यासङ्गादर्थित्वाद्वा, किमित्यालोचनमात्र मनध्यवसायः। प्रशस्तपाद गुणग्रन्थ

अपरिचित पदार्थको देखनेपर जैसे इंगलैण्डमें हाथीको देखनेपर बच्चोंको उसके नामसे अपरिचित हों तो—अनध्यवसायात्मक ज्ञान होता है जिसको निर्विकल्प प्रत्यक्षज्ञान कह सकते हैं परन्तु उसको विद्या या संपूर्ण ज्ञान (Perfect knowledge) नहीं कह सकते, क्योंकि वह व्यवहारमें उपयोगी नहीं होता। अनुमान-व्यापारमें भी जब हम जिराफको (जो अफ्रीकामें पैदा होता है) देखते हैं तब हमें यह कौनसा प्राणी होगा इतना ही सिर्फ विशेष धर्म विरहित अपूर्ण ज्ञान होता है।

फिर भी अनध्यवसाय संशय नहीं है क्योंकि संशयमें एक पदार्थको देखनेपर दो पदार्थोंका स्मरण होता है जब कि अनध्यवसायमें एक ही पदार्थका अपूर्ण ज्ञान-किञ्चित्भान-होता है*।

---

*अनवधारणात्मकज्ञानमनध्यवसायः, अध्यवसायविशेषावधारणज्ञानादन्यदितिव्युत्पत्त्या। नन्वयं संशय एवानवधारणात्मकत्वात् न कारणभेदात् स्वरूपभेदाच्च, किञ्च उभयविशेषानुस्मरणात् संशयो न त्वनध्यवसायोऽप्रतीत विशेषविषयत्वेनाप्यस्यसंभवात्, तथा नवस्थितोभयकोटिसंस्पर्शीसंशयोन त्वयमिति भेदः। विद्यात्वयं न भवति व्यवहारानङ्गत्वादिति।

श्रीधर-कन्दली टीका

और देखो प्रशस्तपाद भाष्यके दूसरे टीकाकार विद्वन्मणि व्योमशिवाचार्यका मत—

नन्वेवं तर्हि प्रतिपत्त्यभावोऽनध्यवसायःस्यात, तस्य चाभावरूपत्वादविद्यायामन्तर्भावोऽनुपपन्नः। नैतदेवम्। किं नामायमित्यनिश्चयात्मक ज्ञानस्य, संशयादिविलक्षणस्यानुभूयमानतयाऽपलापायोगात्, तस्य चाविद्यालक्षणयोगत्वादविद्यायामन्तर्भावः। प्रशस्तपाद भाष्य—व्योमवती टीका

विपर्यय-भ्रम-मिथ्या-ज्ञान (Illusion, Delusion and Hallucination)—अविद्याका यह तीसरा प्रकार है। सब आचार्योंने इसका लक्षण प्रायः एक-सा दिया है। परन्तु उसके तात्त्विक स्वरूपके विषयमें, विभिन्न दार्शनिक पण्डित, अपने मन्तव्योंके अनुसार, विभिन्न वाद (Theories of Error) उपस्थित करते हैं जो वैद्योंके लिये अनुपयोगी हैं परन्तु तत्त्व-ज्ञानियोंके लिये उपयोगी हैं। मानस रोग-पीड़ित रोगी अधिकतर भ्रमसे पीड़ित रहते हैं अतः चिकित्सा शास्त्रके विद्यार्थियोंके लिये उनका ज्ञान आवश्यक है।

सत्य ज्ञान (तत्त्वज्ञान) या असत्य (मिथ्याज्ञान) हो सकता है। सत्यज्ञान द्वारा शुभप्रवृत्ति होती है और मिथ्याज्ञान द्वारा बहुतसे क्लेश उत्पन्न होते हैं। सत्य ज्ञानमें ही प्रवृत्तिका समार्थ्य रहता है। भ्रम या विपर्ययका अर्थ क्या है? "जो पदार्थ जैसा हो वैसा न मालूम पड़े किंवा जो पदार्थ जिस प्रकारका हो उससे विपरीत प्रकारका मालूम पड़े इसका नाम विपर्यय है। रज्जुका रज्जुके रूपमें ही बोध हो तो यह तत्त्वज्ञान किंवा सत्यज्ञान है। जब उसका सर्पके रूपमें बोध होता है तब यह विपर्यय किंवा भ्रम या मिथ्याज्ञान होता है*।

---

*—विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ॥ योगसूत्र १-८

व्यास भाष्य—स कस्मान्न प्रमाणम्। यतः प्रमाणेन बाध्यते। भूतार्थ-विषयत्वात्प्रमाणस्य। तत्र प्रमाणेनबाधनमप्रमाणस्यदृष्टम्। तद्यथा द्विचन्द्र दर्शनं सद्विषयैकचन्द्रदर्शनेन बाध्यत इति।

प्रत्यक्षज्ञानकी चर्चाके समय हमने देखा है कि प्रत्यक्षज्ञान अव्यभिचारी और व्यवसायात्मक होता है अर्थात् वह विपर्यय और संशयसे रहित होता है। यहाँ हम विपर्ययके विषयमें विचार कर रहे हैं। इससे इतनी बात तो तुरन्त स्पष्ट हो जाती है कि प्रत्यक्ष ज्ञान व्यापारमें (Perception) थोड़ी-सी न्यूनता होनेपर* विपर्यय किंवा भ्रम उत्पन्न होता है, चाहे फिर वह इन्द्रिय-प्रत्यक्ष हो या मानस-प्रत्यक्ष। विपर्यय, प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुमान ज्ञान दोनोंमें हो सकता है†।

---

* An illusion is a false perception. + + + An illusion consists in responding to a sensory stimulus by perceiving something, that is not really there. Some thing is there and has delivered a stimulus, but the stimulus is misread. Instead of the true object, a false object is perceived.

(psychology by woodworth cha xiii)

† इन्द्रियदोषात् संस्कारदोषाच्चाविद्या। वै० सू० ९-२-१०

विपर्ययोऽपि प्रत्यक्षानुमानविषय एव भवति। प्रत्यक्षविषयेतावत्प्रसिद्धानेकविशेषयोः पित्तकफानिलोपहतेन्द्रियस्यायथार्थालोचनात्, असन्निहितविषयज्ञानजसंस्कारापेक्षादात्ममनसोः संयोगादधर्माच्च, "अतस्मिंस्तदिति प्रत्ययो विपर्ययः। यथा गव्येवाश्व इति। असत्यपिप्रत्यक्षे, प्रत्यक्षाभिमानो भवति यथा व्यपगतघनपटलमचलजलनिधिसदृशमम्बरमञ्जनचूर्णपुञ्जश्यामं शार्वरं तम इति। अनुमानविषयेपि- बाष्पादिभिर्धूमाभिमतैर्वह्न्यनुमानं गवयविषाणदर्शनाच्च गौरिति। त्रयीदर्शन विपरीतेषु शाक्यादि दर्शनेष्विदं श्रेय इति मिथ्याप्रत्ययः विपर्ययः; शरीरेन्द्रियमनःस्वात्माभिमानः कृतकेषु नित्यत्वदर्शनं कारण वैकल्ये कार्योत्पत्तिज्ञानं हितमुपदिशत्स्वहितमिति ज्ञानम्, अहितमुपदिशत्सु हितमिति ज्ञानम्॥ प्रशस्तपाद भाष्य–गुणग्रन्थ

विपर्यय भी एक प्रकारका चित्त व्यापार है। उसके द्वारा भ निश्चयात्मक ज्ञान होता है किन्तु वह यथार्थ नहीं होता। इसलिये यथार्थ ज्ञान द्वारा विपर्यय किंवा भ्रान्तिका नाश होता है। (यत प्रमाणेन बाध्यते)। शुक्ति, चाँदी-सी दिखाई देती है, हम भ्रान्तिके कारण, उसको चाँदी ही मानकर उठाते हैं परन्तु हाथमें लेतेही तुरन्त यह शुक्ति है ऐसा मालूम होता है और हम उसको फेंकदेते हैं अर्थात विपर्ययज्ञानमें (मिथ्याज्ञानमें) हमारी आशाओंको सफल करने का सामर्थ्य नहीं होता।

आत्मा, मन, इन्द्रियाँ और अर्थ इनचारोंके एकत्र होनेपर ज्ञान होता है, और वह जब संशय या विपर्यय से रहित होता है तभी प्रत्यक्ष कहा जाता है। परन्तु इनचारोंके विद्यमान होने पर भी जब यथार्थ ज्ञान नहीं होता तब किसीमें कुछ दोष है ऐसा समझना चाहिये। हम यह भी जानते हैं कि हमको अपने सामान्य दैनिक जीवनमें भी क्षणिक भ्रम होते हैं। जो इनमें नष्ट होते रहते हैं, और कुछ दीर्घजीवी भी होते हैं। विपर्ययमें भी—जब हमको भ्रान्ति या विभ्रम होता है तभी—आत्मा, मन, इन्द्रियाँ और अर्थ ये चारों घटक उपस्थित होते हैं। तब फिर प्रत्यक्षज्ञान और मिथ्या ज्ञानमें अन्तर क्यों पड़ता है ? (अन्तर पड़ता है यह तो हम जानते हैं) उद्योतकर मृगजलका उदाहरण देकर कहते हैं कि "इसमें विपरीतता कहा है ? अर्थमें किंवा ज्ञानमें ? कुछ लोग कहते हैं कि अर्थमें वैपरीत्य आ जाता है. अर्थात् अर्थ बदल जाता है, इसलिये उसक

ज्ञान भी विपरीत होता है। यह गलत है क्योंकि अर्थ तो (Object) ज्यों-का-त्यों रहता है। मरुभूमिमें सूर्यकी स्पन्दमान किरणोंसे पानीका जो ज्ञान होता है इसके अर्थमें कोई परिवर्तन नहीं होता। किरणें, किरणें ही रहती हैं, उनका स्पन्दन भी होता रहता है परन्तु उनका ज्ञान विपरीत होता है क्योंकि जो वस्तु वहाँ मौजूद नहीं है उसका उसमें ज्ञान होता है। वहाँ पानी है ही नहीं फिर भी उसकी प्रतीति होती है, क्योंकि व्यापन्न नेत्रेन्द्रिय द्वारा उन-किरणोंको देखनेसे द्रष्टाको विपरीत ज्ञान होता है। इस तरह विपर्यास ज्ञानमें होता है न कि अर्थमें*।

अब हमें मन और इन्द्रियोंके विषयमें विचार करना चाहिये। प्रत्यक्ष ज्ञानकी चर्चा करते हुए हम देख चुके हैं कि सविकल्पक ज्ञानमें हमको अर्थके नाम, जाति और अन्य विशेषोंका ज्ञान होता है। यह सब मनका ही प्रभाव है। अर्थोंके कारण इन्द्रियों द्वारा विविध प्रकारके संस्कार उत्पन्न होते हैं। इन

---

* किं पुनरत्र व्यभिचारि ? किमर्थः आहो ज्ञानमिति। एके तावद्वर्णयन्ति। अर्थस्य व्यभिचारः, अर्थस्तु तदा न भवतीति। तद्व्यभिचारात् तद्विषयंज्ञानमपिव्यभिचारीत्युच्यते इति। तच्च नैवम्। कस्मात् ? अर्थस्य तथा भावात्। यत्तदुदकादि ज्ञानमुपजायते मरीचिषु स्पन्दमानेषु न तत्रार्थो व्यभिचारीति। नहि ते न मरीचयो न वा स्पन्दन्ते किन्तु ज्ञानं व्यभिचरति। अतस्मिंस्तदिति भावादिति। न हि तत्रोदकमस्ति। तांस्तु मरीचीनिन्द्रियोपघातदोषादिन्द्रियेणालोच्य विपर्येति, इति ज्ञानस्य व्यभिचारो नार्थस्येति। न्यायवार्तिक १-१-४

संस्कारोंके समूह किंवा संस्कार-पिण्डोंके एकत्र मिलनेसे मनको अपने व्यापारोंमें वेग मिलता है। इन नये अर्थोंको ग्रहण करता हुआ मन, अपने संस्कारोंके अनुसार उनके विषयमें अपना निर्णय करता है। एक ही अर्थ होनेपर भी विभिन्न मनुष्योंको उसका ज्ञान अपने-अपने संस्कारोंके अनुसार होता है। उदाहरणतया स्त्रीके देहको देखकर संन्यासी, कामुक और श्वान उसको क्रमशः मुर्दा, कामिनो और भक्ष्य मान लेते हैं*। अर्थात् अर्थका दर्शन होते ही उस अर्थके विषयके सारे संस्कार, स्मरणके बलपर फिर जाग्रत् होते हैं और मन संस्कारोंके बलसे ही अपना निर्णय करता है। ऐसी स्थितिमें भ्रममें—विपर्ययमें क्या होता है? अर्थ तो ज्यों-का-त्यों रहता है परन्तु उसके बाद मन और इन्द्रियोंके व्यापारमें कहीं स्खलन होता है पर उसके बाद अवश्य यह फलित होता है।

वैशेषिक सूत्रकार भगवान कणाद इसका उत्तर देते हुए इन्द्रिय दोष एवं संस्कार दोषोंका उल्लेख करते हैं और भगवान प्रशस्तदेव अपने भाष्यमें अधर्मकी भी अधिक गणना करते हैं। अब हम भ्रमके इन कारणोंका क्रमशः विचार करेंगे।

(१) इन्द्रिय दोष (Defects of Senses)—यहाँ यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि भ्रमकी चर्चामें प्रायः आँखका ही उदाहरण देकर, दर्शन भ्रमों (Optic Delusions) की ही चर्चा पण्डितोंने

* परिव्राट्कामुकशुनामेकस्यां प्रमदातनौ।
कुणपः कामिनी भक्ष्य इति तिस्रो विकल्पनाः ॥ सर्व० पृ० ३०

ती है। इससे इसी एक इन्द्रिय (नेत्र) को ही भ्रम होता है ऐसा मान लेना पाठकोंके लिये जरूरी नहीं है। पाँचों इन्द्रियोंको भी भ्रम हो सकता है परन्तु पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंमें आँख और कानके भ्रम विशेष देखनेमें आते हैं इसलिये पण्डित लोग प्रायः इनके ही उदाहरण देते हैं। इन्द्रिय दोषका अर्थ है पाँचोंमें किसी भी ज्ञानेन्द्रियको आघात पहुंचाना-उसमें धातुवैषम्य-दोषवैषम्यसे रोग की उत्पत्ति होना। उदाहरणतया—मोतियाबिन्द-तिमिर-आदि दृष्टिगत रोग, किंवा दोषवैषम्यके परिणामसे—कामला आदिके परिणामसे आँखकी कार्यक्षमता कम हो जाती है। इसी प्रकार दृश्य पदार्थ सूक्ष्म होनेसे, दूर होनेसे या प्रकाशकी कमी होनेसे भी आँखका कार्य यथावत् नहीं हो सकता और दर्शन व्यापारमें कठिनाई होती है। कानका पर्दा फट जाय, मध्यकर्णमें पूय उत्पन्न हो जाय या श्रुति सुरंगको आघात पहुंचे अथवा पवन विपरीत दिशामें चलती हो तो कर्णेन्द्रियकी कार्यक्षमता भी कम हो जाती है। इसी प्रकार घ्राण, जिह्वा, त्वचा आदिके विषयमें भी समझ लेना चाहिये। सफेद शंख पीला दिखाई दे (पीतःशंखः) किंवा गुड़ कड़ुवा लगे (तिक्तोगुड़ः) भ्रमकें इन उदाहरणोंमें आँख और जिह्वाकी विकृति ही जिम्मेवार है। प्रशस्तपाद भाष्यमें निर्दिष्ट—अयथार्था लोचनका विस्तृत अर्थ करके, अयथार्थ श्रवण आस्वादन, स्पर्शन और गन्ध ग्रहणका भी अन्तर्भाव करना चाहिये क्योंकि सूत्रकारने इन्द्रिय दोष शब्दका प्रयोग किया है।

(२) संस्कार दोष (Faulty mental-impressions)-संस्कार दोषके कारण, मनको अर्थ ग्रहणमें कई बाधाएँ उपस्थित होती हैं जिनके द्वारा विपर्यय उत्पन्न होता है। यदि मन दूसरे कार्य में फँसा हो, अतिशय उत्तेजित हो गया हो, काम, क्रोध, शोक, ईर्ष्या आदिसे पीड़ित हो या किसी आदतके अधीन हो गया हो या कुछ पूर्वग्रहों (Prejudices) से पीड़ित हो तो—भ्रमकी उत्पत्ति होती है। मनकी प्राकृत अवस्थामें भी भ्रम होते हैं परन्तु वे क्षणिक होते हैं। जब भ्रम चिरस्थायी होते हैं तब मनकी विकृतिकी सूचना देते हैं। शुक्तिमें रजतकी प्रतीति होना यह भ्रम है और शुक्तिके विषयमें "शुक्ति" है ऐसा ज्ञान होना-यथार्थ ज्ञान किंवा उपलब्धि है। यह कैसे होता है? रज्जुमें सर्पका भ्रम कैसे होता है?—शुक्ति और रजत दोनोंमें चमक होती है परन्तु इस सामान्य धर्मके साथ ही दोनोंके अन्य विशेष गुण भी होते हैं। शुक्तिको देखते ही सादृश्यका स्मरण होता है और मन रजतकी चमकके कारण उत्पन्न हुए संस्कारोंका स्मरण करके शुक्तिको रजत मान लेता है—जो वस्तुतः भ्रम है। रज्जु लम्बी, पतली और कई जगह मुड़ी हुई होती है। उसी तरह सांप भी लम्बा, पतला और मुड़ा हुआ होता है। यह दोनोंका सादृश्य ही रज्जुमें साँपकी भ्रांति उत्पन्न करता है। यथार्थावलोकनके लिये इन्द्रियोंके सहकार एवं यथार्थ निर्णयकी आवश्यकता होती हैं। यदि इन्द्रियाँ अर्थोंको उचितरूपमें ग्रहण न करें और मन संस्कारोंके साहचर्यको सुरक्षित न रखें तो भ्रम उत्पन्न होंगे। उदाहरणतया—

रुभूमिमें ग्रीष्म ऋतुकी किरणोंके कारण मृगमरीचिका दिखाई ती है परन्तु यदि मनको भली प्रकार स्मरण हो कि मरुभूमिमें स प्रकारके दृश्य झूठे होते हैं तो वह भ्रममें फँसता ही नहीं, और यदि वह केवल जलकी तरंगोंके संस्कारोंसे किरणोंको भी लकी तरंगें मान लेता है तो इसमें उसका भ्रम है। रेलगाड़ी जीसे चल रही हो उस समय खिड़कीके बाहरके वृक्ष, मकान आदि दृश्य पदार्थ हमको विरुद्ध दिशामें दौड़ते हुए प्रतीत होते हैं। ाचीनोंने नौकाका उदाहरण दिया है*। इसका कारण दृष्टिवितान

---

* तया रहितं तिमिराशुभ्रमण नौयानसंक्षोभाद्यनाहितविभ्रमं ज्ञानं प्रत्यक्षम्
न्याय बिन्दु १-६

तिमिरमक्ष्णोर्विप्लवः, इन्द्रियगतमिदं विभ्रमकारणम्। आशुभ्रमणमलातादेः। मन्दं भ्राम्यमाणे अलातादौ न चक्रभ्रान्तिरुत्पद्यते, तदर्थमाशुग्रहणेनविशेष्यते भ्रमणम्। एतच्च विषयगतं विभ्रमकारणम्। नावागमनं नौयानम्। गच्छन्त्यां नावि स्थितस्य गच्छद्वृक्षादि भ्रान्तिरुत्पद्यते इति यानग्रहणम्। एताच बाह्याश्रयस्थितं विभ्रमकारणम्। संक्षोभो वात पित्त श्लेष्मणाम्। वातादिषु हि क्षोभंगतेषु ज्वलितस्तंभादिभ्रान्तिरुत्पद्यते। एतच्च अंध्यात्मगतं विभ्रमकारणम्॥

यहाँ दिये हुए (धर्मकीर्ति-न्यायबिन्दु टीका १-६) विभ्रमके कारण बौद्धों के मतका प्रदर्शन करते हैं।

अतस्मिंस्तदेवेतिविपर्ययः। हेमचन्द्राचार्य—प्रमाणमीमांसा १-१-७

टीका—यत् ज्ञाने प्रतिभासते तद्रूपरहिते वस्तुनि तदेव इति प्रत्यक्षः विपर्यासरूपत्वाद्विपर्ययः; यथा धातुवैषम्यान्मधुरादिषु द्रव्येषु तिक्तादिप्रत्ययः,

अब तक, हमने जिन भ्रमोंका विचार किया वे सब सालंबन (Dllusion or Illusion) हैं। अर्थात् उनका कुछ आलंबन-आधार भूत पदार्थहोता है। यथा शुक्ति, रज्जु आदि। इन पदार्थोंको मन, रजत और सर्प मान लेता है जिसको भ्रम कहते हैं, जैसे कि बिछौनेमें पड़े हुए तकियेको हम बिल्ली मान लेते हैं। परन्तु जब कोई भी पदार्थ अलंबन रूप नहीं होता तब जो विभ्रम होते हैं वे निरालंबन भ्रम (Hallucinations) नामसे प्रसिद्ध हैं। कई लोग इनको मानस विभ्रम भी कहते हैं। इन निरालंबन भ्रमोंमें अर्थ (Objects) नहीं होते। अर्थात्—(Retina) पर होनेवाली उत्तेजनाएँ (Stimuli) हैं जिनसे मन उनका यथार्थ रूपमें ग्रहण नहीं कर सकता। हम गोल चक्कर खाकर एकाएक खड़े हो जायँ तो चारों ओरके घर विरुद्ध दिशामें चलते हुए दिखाई देते हैं। सिनेमामें पात्र दौड़ते खेलते, गिरते, खड़े होते दिखाई देते हैं। ये सब क्षणिक भ्रम इन्द्रियों—आँख और कानके कारण होते हैं। भूत-प्रेत आदिकी बातोंको पढ़ने या सुननेके बाद अन्धेरेमें पेड़के तनेको देखकर भी भूतका भ्रम होता है। जादूगर, जादूके अनेक चमत्कार करके दिखलाते हैं। इन सबके मूलमें मनमें उत्पन्न हुए संस्कारोंका मुख्य भाग होता है।

तिमिरादिदोषात्, एकस्मिन्नपि चन्द्रे द्विचन्द्रादिप्रत्ययः। नौयानादगच्छत्स्वपि वृक्षेषु गच्छत्-प्रत्ययः, आशुभ्रमणात् अलातादावचक्रेऽपि चक्रप्रत्ययः इति।
—यह जैनोंका मत है।

इन्द्रिय व्यापार पर निर्भर नहीं होते। उनके मूलमें आत्मा और मनका संयोग रहता है। पहले संस्कारोंका स्मरण होता है और उस संस्कार जन्य पदार्थको, अप्रत्यक्ष होनेपर भी वह मनुष्य प्रत्यक्षकी भाँति मान लेता है। यह भी भ्रान्ति है। उदाहरणतः कोई कामुक मनुष्य, किसी स्त्रीको सादृश्यके कारण—अपनी पत्नी मान ले तो यह भ्रम है। परन्तु किसी स्त्रीके न होनेपर भी वह अपनी प्रियतमाको ही देखे तो यह मानस विभ्रम है। मानस रोगोंसे पीड़ित मनुष्योंमें इस प्रकारके भ्रम प्रायः देखनेमें आते हैं इसलिये मानस रोगियोंके लक्षणोंके वर्णनमें यह बात फिरसे आवेगी। अधर्म मनुष्यकी मानसिक शक्तिका ह्रास करता है और वह अविद्याका पोषक है। इतने अंशमें उसकी भी भ्रान्तिके कारणोंमें गणनाकी गई है।

निद्रा और स्वप्न (Sleep and Dream)

अब अविद्याके चौथे प्रकार—स्वप्न ज्ञान—की चर्चा करते हैं। परन्तु उसकी चर्चा निद्राके पहले नहीं हो सकती, इसलिये यहाँ प्रथम निद्राकी चर्चा करते हैं।

निद्राके माने क्या है? यह उपनिषद् कालसे आज तक उसकी चर्चा चली आ रही है, हालां कि अब तक इसके विषयमें कोई स्थिर सिद्धान्त तय नहीं हुआ है। आयुर्वेदमें भी इसके विषयमें यथावश्यक चर्चा की गई है। उपनिषद् कालमें भी जाग्रदवस्था, स्वप्नावस्था, सुषुप्त्यवस्था और तुरीयावस्था—सदेह आत्माकी इन चार अवस्थाओंके विषयमें चर्चा हुआ करती थी। जिस

अवस्थामें आत्मा किसी भी अर्थकी इच्छा नहीं करता और जिसमें कोई भी स्वप्न नहीं देखता उसका नाम सुषुप्ति या निद्रा है ऐसा माण्डूक्य उपनिषद्में कहा है*। निद्रावस्थामें इन्द्रियों और मनकी प्रवृत्ति बन्द हो जाती है परन्तु श्वासोच्छ्वास, रुधिराभि-सरण आदि होते रहते हैं। इस अवस्थामें मनका आत्मामें लय होजता है और आत्मा अन्तःप्रज्ञ होकर थोड़ी देरके लिये ब्रह्मके साथ ऐक्यका अनुभव करता है; प्राणों द्वारा उसके शरीरके आवश्यक व्यापार भी चलते रहते हैं। भगवान शंकराचार्यने स्वप्नावस्था का विवेचन करते हुए विभिन्न श्रुतियाँ उद्धृत करके, इस अवस्थामें आत्मा क्या करता है और कहाँ विश्रान्ति लेता है इस विषयमें विभिन्न मतोंका उल्लेख किया है। संक्षेपमें सार यही है कि निद्रावस्थामें कुछ भी विशेष विज्ञान नहीं होता, केवल प्राण व्यापार चलते रहते हैं† जो प्रत्यक्ष ही है।

---

* यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्। माण्डू० उप० ५

† तदभावो नाड़ीषु तच्छ्रुतेरात्मनि च। ब्रह्मसूत्र—३-२-७

तत्रैताः सुषुप्ति विषयाः श्रुतयो भवन्ति। क्वचिच्छ्रूयते—तद्यैतत् सुप्तः समस्तः, संप्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्यासु तदा नाड़ीषु सुप्तो भवति। (छां० ८-६-३) इति। अन्यत्र तु नाड़ीरेवानुक्रम्य श्रूयते—"ताभिः प्रत्यवसृप्य पुरीतति शेते" (बृ. २-१-१९) इति। तथाऽन्यत्र नाड़ीरेवानुक्रम्य 'तासु तदा भवति यदा सुप्तः स्वप्नं न कंचनं पश्यति, अथास्मिन् प्राण एवैकधाभवति' (कौषी. ४-१९) इति। तथाऽन्यत्र 'य एषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिञ्छेते

भगवान पतञ्जलि उपनिषदोंके विचारोंसे—औपनिषन्नयसे विरुद्ध निद्राको चित्तको एक वृत्ति विशेष कहते हैं। उन्होंने इन्द्रिय व्यापारों एवं शरीरके इतर व्यापारोंके विषयमें कुछ भी नहीं कहा है। केवल मानस शास्त्रके दृष्टिकोणसे उन्होंने निद्राका लक्षण दिया है। इस प्रकार निद्राको चित्तकी वृत्ति या व्यापार माननेका मत सर्वसम्मत नहीं था, इस बातका पंडित वाचस्पति मिश्रकी टीकाको देखनेसे पता चलता है। परीक्षकोंको इस मतमें आपत्ति थी*। अस्तु।

योगशास्त्रके मतानुसार तमोगुणसे (अभाव प्रत्यय) व्याप्त हुआ चित्त, इन्द्रियों द्वारा कुछ भी ग्रहण नहीं कर सकता, फिर भी उसकी क्रिया सर्वथा बन्द नहीं हो जाती। क्योंकि नींद से जगनेके बाद भी एक प्रकारका सोपपत्तिक स्मरण होता है कि मैंने अच्छी तरह नींद ली या बुरी तरह, मेरा चित्त प्रसन्न है या भ्रमित है; शरीर हल्का है या भारी इत्यादि। यदि निद्रा में कुछ भी संस्कार न उत्पन्न हुए हों तो यह स्मरण कैसे संभव

(बृ. २-१-१७) इति। तथाऽन्यत्र 'सता सौम्यतदा सम्पन्नो भवति स्वमपीतो भवति (छा. ६-८-१) इति। प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेदनान्तरम् (बृ. ४-३-२१) × × × सर्वत्रच विशेष-विज्ञानोपरम लक्षणं सुषुप्तं न विशिष्यते। × × × तत्र-अपि प्रदेशान्तर प्रसिद्धस्य ब्रह्मणोऽप्रतिषेधान्नाडीद्वारेणैव ब्रह्मण्येवावतिष्ठत इति प्रतीयते। शाङ्कर भाष्य

* निद्रायास्तु वृत्तित्वे परीक्षकाणामस्तिविप्रतिपत्तिरिति वृत्तित्वं विधेयम्
—तत्त्ववैशारदी १-१०

होता है, क्योंकि स्मरण तो केवल संस्कारसे उत्पन्न होनेवाला ज्ञान है। और वृत्तिके बिना संस्कार नहीं हो सकते। इसलिये निद्रा भी एक प्रकारकी चित्तवृत्ति है—प्रत्यय विशेष है न कि ज्ञानाभाव। योगशास्त्रके पुरुषका क्या होता है यह दूसरी बात है। यद्यपि वेदान्त दर्शनका आत्मा तो ब्रह्मानंदका अनुभव करता है।

यहाँ एक प्रश्न होता है कि निद्रा और समाधिमें अथवा निद्रा और वेदान्तकी तुरीयावस्थामें क्या भेद है? दोनों* अवस्थाओंमें बाहरसे देखनेपर मनुष्य निश्चेष्ट मालूम होता है और उसके प्राण-व्यापार चलते रहते हैं। निद्रामें भी एकाग्रता मालूम होती है और समाधिमें भी एकाग्रता होती है; तो फिर

---

* अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा। योगसूत्र १-१०

व्यास भाष्य.—साच संप्रबोधे प्रत्यवमर्शात् प्रत्यय विशेषः। कथं सुखमहमस्वाप्सं, प्रसन्नं मे मनः प्रज्ञांमे विशारदीकरोति, दुःख महमस्वाप्सं, स्यतनं मे मनो भ्रमत्यनवस्थितं, गाढं मूढोऽहमस्वाप्सं, गुरुणि मे गात्राणि, क्लान्तं मे केचित्त-मलसंमुषितमिव तिष्ठति इति। स खल्वयं प्रबुद्धस्य प्रत्यवमर्शो न स्यात् सतिप्रत्ययानुभवे, तदाश्रिताः स्मृतयश्च तद्विषया न स्युः। तस्मात् प्रत्यय विशेषो निद्रा, सा च समाधावितर प्रत्ययवन्निरोद्धव्येति। योगसूत्र १-१०

जाग्रत्कालिकः सुखमहमस्वाप्समित्यादि प्रत्यवमर्शोऽनुभव पूर्वकोभवितु-मर्हति, स्मृतित्वादित्यनुमाने यत्रानुभवाभावस्तत्र स्मृत्यभाव इत्येवंसाध्याऽभावे हेत्वभावमाहेत्यर्थः। या या स्मृतिः सा साऽनुभव पूर्विका, सा मे मातेति स्मृतिवदित्यन्वयेऽपिबोध्यः। —बालराम उदासीन, योगभाष्य टिप्पणी

इन दोनोंमें भेद क्यों है ? इसका उत्तर यही है कि निद्रा स्वयं एक चित्त वृत्ति है—चित्तका व्यापार विशेष है जब कि समाधिमें पाँचो चित्त वृत्तियोंका निरोध किया जाता है। निद्रामें तमोगुण का प्रभुत्व होता है और समाधिमें सत्त्वगुणका प्राबल्य होता है। इस प्रकार दोनों अवस्थाओंमें पूर्व-पश्चिमका अन्तर है अर्थात् ये एक दूसरेसे विरुद्ध होती हैं।

अब आयुर्वेदाचार्योंके मन्तव्य देखें। उन्होंने दार्शनिक मन्तव्यों के साथ अपने नित्यप्रतिके अनुभवोंको मिलाकर उसके आधारपर निद्राका वर्णन किया है। भगवान चरक कहते हैं कि[७] —"जब मन थक जाता है और थकी हुई इन्द्रियाँ अपने अपने विषयसे विमुख हो जाती हैं—विषयोंका ग्रहण करनेसे रुक जाती हैं—तब मनुष्यको नींद आती है।" यहाँ श्रम (Fatigue) —शारीरिक एवं मानसिकको प्रधान कारण कहा है। आगे चलकर उसके प्रकारोंका वर्णन करते हुए कहते हैं कि "तमोगुणसे होने-वाली निद्रा श्लेष्माके कारण होनेवाली निद्रा, मन और शरीरके थकने से होनेवाली निद्रा, आगन्तुकी निद्रा, तथा रोगोंके उपद्रव स्वरूपमें होनेवाली निद्रा और रात्रिके स्वभावसे होनेवाली निद्रा इन सात प्रकारवाली रात्रिमें होनेवाली निद्राको भूत धात्री कहा है, क्योंकि निद्रा न केवल मनुष्योंके लिये अपितु प्राणिमात्रके लिये हितकर है।" भगवान सुश्रुत[८] भी कहते हैं कि "हे सुश्रुत ! हृदय प्राणियोंका चेतना स्थान है। उसमें तमोगुण व्याप्त हो जाने पर प्राणियोंको निद्रा आती है। निद्राका कारण तमोगुण है, सत्त्व-

गुण जाग्रत होनेमें कारण भूत होता है। अथवा सबसे प्रबल करण तो स्वभाव ही है।" भगवान् सुश्रुतने, चरकोक्त निद्राके सात प्रकारों का, तामसी, स्वभाविकी और वैकारिकी इन तीन प्रकारों में अन्तर्भाव कर दिया है। दोनोंने तमोगुणके आधिक्यपर जोर दिया है और स्वाभाविकी निद्राको प्रशस्त कहा है[१]।

आधुनिक विज्ञानवादी-शरीर क्रियावादी एवं मानस शास्त्री भी निद्राके विषयमें सहमत नहीं हो सके हैं। हाँ स्वाभाविकी निद्रा (Natural sleep) शरीरके लिये अतिशय उपकारक है और निद्राके समय शरीरके थके हुए अवयव फिरसे पुष्ट-अभिनव-से हो जाते हैं इस बातमें सब सम्मत हैं। इसके अतिरिक्त निद्रा न केवल शारीरिक व्यापार है और न मानसिक व्यापार।

स्वप्न—(Dreams)—जाग्रदवस्था और सुषुप्ति इन दोनोंके बीचकी अवस्थाका नाम स्वप्नावस्था है। बहुत प्राचीन समयसे स्वप्नोंने विचारकोंका लक्ष्य अपनी ओर आकर्षित किया है। दार्शनिक पण्डितों एवं वैद्योंने इसकी चर्चामें बहुत अभिरुचि दिखायी है। आजकल भी मानस रोगोंकी चिकित्सामें, रोगीके स्वप्नोंपर विशेष ध्यान दिया जाता है।

अविद्या (मिथ्या ज्ञान) के पहले कहे गये भेद संशय और विपर्यय से स्वप्न ज्ञान भिन्न होता है। संशय और विपर्यय जाग्रदवस्थामें होते हैं और स्वप्नका जाग्रदवस्थामें होना सम्भव नहीं है। एक प्रकारकी कल्पना, विहार-दिवास्वप्न (Day dreams) नामसे अवश्य प्रसिद्ध है। जब मनुष्य अपनी वास्तविक परिस्थितिका

विचार छोड़कर केवल कल्पना की तरंगोंपर नाचता है तब हम, वह दिवा स्वप्न का अनुभव करता है, ऐसा कहते हैं। उदाहरणतया अविवाहित पुरुष अपनी कल्पना सृष्टिकी पत्नीको अभिलक्षित करके जो कुछ, व्यापार (भाषण) अथवा चेष्टा करता है, अथवा निःसन्तान मनुष्य अपने कल्पित बच्चोंके साथ जो बातें करता है; ये सब दिवा स्वप्न कहे जाते हैं।

उपनिषदोंमें स्वप्नके विषयमें बहुत सुन्दर उल्लेख मिलते हैं। उनमें इस बातका मनोहर शब्द चित्रण दिया है कि स्वप्नमें यद्यपि वास्तविक रथ, आनन्द-प्रमोद, तालाब, झील व नदियां नहीं होतीं तथापि आत्मा अपनी कल्पनाके सहारे उनका कैसे सर्जन करता है*।

जाग्रदवस्थामें तो आत्मा, मन, इन्द्रियां एवं इन्द्रियार्थोंका सम्बन्ध चालू रहता है इसलिये प्रमाण, विपर्यय (संशय) विकल्प (कल्पना) और स्मृति आदि मानसिक व्यापार समय-समयपर होते रहते हैं; और गाढ़ निद्रामें इन्द्रियोंका कार्य बन्द होता है† और मन भी निश्चल होकर विश्रान्ति लेता है इसलिये

---

* न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानोभवन्त्यथ रथान्रथयोगान्पथः सृजते नतत्रानन्दा मुदः प्रमुदो भवन्त्यथानन्दान, मुदः प्रमुदः सृजते। न तत्रवेशान्ताः पुष्करिण्यः स्रावन्त्योभवन्त्यथ वेशान्तान, पुष्करिणीः स्रावन्तीः सृजते सहिकर्ता॥ बृहदारण्यक ४-३-१०

† आत्ममनसोः संयोगविशेषात् संस्काराच्च स्मृतिः॥ तथा स्वप्नः। स्वप्नान्तिकम् वैशेषिक सूत्र ९. २–६–८

स्वाभाविक निद्रामें पुरुष ब्रह्मानन्दका अनुभव करता मालूम होता है। इसलिये स्वाभाविक निद्रासे जागकर मनुष्य मन एवं शरीरकी स्वस्थताका अनुभव करता है और प्रसन्न एवं स्फूर्तियुक्त होकर फिर अपने काममें लग जाता है। निद्राके समय भी रुधिराभिसरण यथावत् चलता रहता है। श्वासोच्छ्वास भी चलते रहते हैं; पाचन एवं मूत्रोत्पादन भी होता रहता है। अर्थात् शरीरके धारण और पोषणसे सम्बन्धित व्यापार मजेसे चलते रहते हैं*। परन्तु स्वप्नावस्था इन दोनोंके बीचकी अवस्था है

प्रशस्तपाद भाष्य.—उपरतेन्द्रिय ग्रामस्य प्रलीनमनस्कस्येन्द्रियद्वारेणैव यदनुभवनं मानसं तत्स्वप्न ज्ञानम्। कथम्, यदा बुद्धिपूर्वादात्मनः शरीरव्यापारादहनि खिन्नानां प्राणिनां निशि विश्रामार्थमाहारपरिणामार्थं वा हृष्टकारितप्रयत्नापेक्षादात्मान्तःकरणसम्बन्धान्मनसि क्रियाप्रबंधादन्तर्हृदये निरीन्द्रिये आत्मप्रदेशे निश्चलं मनस्तिष्ठति तदा प्रलीनमनस्क इत्याख्यायते। प्रलीने च तस्मिन्नुपरतेन्द्रियग्रामो भवति तस्यामवस्थायां प्रबंधेन प्राणापानसन्तान प्रवृत्तावात्ममनःसंयोगविशेषात्स्वापाख्यात्, संस्काराच्चेन्द्रियद्वारेणैवासत्सु विषयेषु प्रत्यक्षाकारं स्वप्नज्ञानमुत्पद्यते। तत्तु त्रिविधम्। संस्कारपाटवाद्, धातुदोषादहृष्टाच्च ॥ × × × × × × × स्वप्नान्तिकं यद्यप्युपरतेन्द्रियग्रामस्य भवति तथाप्यतीतस्य ज्ञानप्रबन्धस्य प्रत्यवेक्षणात्स्मृतिरेवेति। गुण ग्रन्थ

यद्यपि संस्कार पाटवाद्धातुदोषाददृष्टाद्वा समारोपितवाह्य स्वरूपः स्वप्नप्रत्ययो भवन्नतस्मिंस्तदितिभावाद्विपर्ययः तथाप्यवस्था विशेषभावित्वात् पृथगुक्तः।

श्रीधराचार्य—कन्दली—गुणग्रन्थ

* Natural sleep on the otherhand, is the normal menifestation of one stage in the rhythmical activity of nerve cells, and though it may be preceded by aftigue or exhaustion, it is accompanied by repair, the constructive

अर्थात् इसमें इन्द्रियोंके व्यापार तो बन्द रहते ही हैं परन्तु मन निश्चल नहीं रह सकता और कभी शरीर पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। उदाहरणतया स्वप्नमें मनुष्य बोलता है, हँसता है, रोता है, वीर्य स्खलन होता है इत्यादि। कई एक मनुष्य स्वप्नमें चलने भी लगते हैं।

स्वप्नके कारण—इतना विचार करनेके बाद अब हम स्वप्नके संस्कार देखेंगे। प्रशस्तदेवाचार्य एवं महर्षि कणादके मतानुसार संस्कार, वात, पित्त और कफ ये तीन दोष और अदृष्ट—ये तीन स्वप्नके कारण हैं। हम देख चुके हैं कि प्रत्येक-मानसिक किंवा शारीरिक-व्यापारकी छाप (संस्कार) मनपर होती है। इस छाप किंवा प्रभावका नाम संस्कार है।

कुछ एक संस्कार लुप्त हो जाते हैं, कुछ लुप्तप्राय हो जाते हैं* और कुछ यथावत् बने रहते हैं। विशिष्ट प्रकारके संस्कार-वासना-

---

side of metabolic activity. This is true for many other organs in addition to the central nervous system; sleep is a time of repose for them also. but the amount of rest varies, the voluntary muscles, except those concerened in breathing will rest most, but the heart continues to beat, the urine is still secreted, the processes of digestion go on, so that for such organs, activity is only diminished.

(Halli burton—Hand book of physiology sleep & Narcosis)

*—अपिच वासना नाम संस्कारविशेषाः ॥ शाङ्कर भाष्य २-२-३०

नामसे प्रसिद्ध हैं। मनमें उत्पन्न हुए संस्कार एवं वासनाएँ—प्रकट या अप्रकट अवस्थामें मनमें रहते हैं। ये संस्कार स्वप्नोंके लिये जिम्मेदार हैं। दूसरा कारण-रोग है। जब शरीरके प्रकुपित हुए वात, पित्त और कफ ये तीन दोष रस, रक्त, मज्जा, शुक्र इत्यादि धातुओंको दूषित करते हैं तब रोग उत्पन्न होते हैं और इनके परिणाम स्वरूप स्वप्न भी आते हैं। भगवान चरक वैद्यकीय दृष्टिकोणसे कहते हैं कि "जब अतिशय प्रबल होकर दोष मनोवहस्रोतोंको व्याप्त कर देते हैं तब रोगी भयङ्कर स्वप्नोंको देखता है। जब मनुष्य गाढ़ निद्रामें नहीं होता तब मन द्वारा कई प्रकारके स्वप्नोंको देखता है। वे सफल भी होते हैं या निष्फल भी होते हैं।" इसी प्रकार भगवान सुश्रुत कहते हैं कि, "सोये हुए शरीरका अधिपति भूतात्मा, रजोगुण युक्त मन द्वारा इस देहसे या पूर्व देहसे अनुभूत भले-बुरे पदार्थोंको ग्रहण करता हैं।[१०] तीसरा कारण अदृष्ट है। कुछ स्वप्न ऐसे बिचित्र होते हैं कि उनके विषयका अनुभव हुआ ही नहीं होता या उनका विषय समझा ही नहीं जा सकता। इस प्रकारके स्वप्नांका कारण भी नहीं समझा जाता। इनका कारण अदृष्ट (Unseenforce) है। आधुनिक मानस शास्त्री इनका स्पष्टीकरण दूसरी तरहसे करनेका प्रयत्न करते हैं फिर भी कुछ-एक स्वप्नोंके कारण अज्ञेय रहते हैं, यह निर्विवाद बात है।

स्वप्नोंके स्वरूप—स्वप्नोंके स्वरूपका विवरण करते हुए प्रशस्तपाद कहते हैं कि जब मनुष्य कामुक या क्रुद्ध होकर किसी

एक अर्थको खूब* लगनके साथ सोचता हुआ सो जाता है तब प्रबल संस्कारोंके कारण उस (अर्थ) की स्मृति (स्वप्नमें) उसको उस अर्थको प्रत्यक्ष-सा दिखाती है। स्वप्नमें अर्थ नहीं होता किंतु संस्कार-जन्य स्मृति द्वारा पदार्थोंका साक्षात् आभास होता है। (साक्षादर्थावभासिनी)। जाग्रदवस्थामें भी स्मृति व्यापार होता है परन्तु इस समय स्मरणोंपर बुद्धि, विवेक, देश-काल आदिका तीव्र भान होनेसे एक प्रकारका अंकुश-नियन्त्रण-रहता है। स्वप्नमें यह अंकुश चला जाता है। इसीलिये प्रखर विवेचक वाचस्पति मिश्र † लिखते हैं कि—स्मृति भी दो प्रकारकी है। स्वप्नमें स्मृतिका विषय कल्पित होता है और जाग्रदवस्थामें विषय किंवा अर्थ सत्य (पारमार्थिक) होता है और जो पदार्थ वस्तुतः हमारी इन्द्रियोंके समक्ष नहीं होते उन पदार्थोंका जब हमको ज्ञान होता है तब भ्रम किंवा विपर्यय (Illusion) होता है ऐसा माना जाता है। इसलिये स्वप्न-स्मृति सत्य (वास्तविक) स्मृति नहीं होती किन्तु स्मृतिका आभास होता है इसलिये उसको

---

* तत्र संस्कारपाटवात्तांवत्कामीक्रुद्धोवा यदा यमर्थमादृतश्चिन्तयन्, स्वपिति तदासैवचिन्तासन्ततिः प्रत्यक्षाकारा (साक्षादर्थवभासिनी) सञ्जायते प्रशस्तपाद गुणग्रन्थ

† 'साच द्वयी' इति। भावितः कल्पितः स्मर्तव्यो यया सा तथोक्ता। अभावितः अकल्पितः पारमार्थिक इतियावत्। नेयं स्मृतिरपितु विपर्ययः, तल्लक्षणोपपन्नत्वात्। स्मृत्याभासतयातु स्मृतिरुक्ता। प्रमाणाभासमिवप्रमाणमिति भावः॥ वा॰ मिश्र॰ तत्त्ववैशारदी-योगसूत्र-११

स्मृत्याभास मानना चाहिए। जैसे प्रमाणाभासको प्रमाण कहते हैं वैसे स्मृत्याभासको स्मृति कहा है।

इस विवेचनसे स्पष्ट हो जायगा कि स्वप्नोंके कारणोंमें हमारे मनके संस्कार एवं वासनाका प्रधान हिस्सा होता है। जिन पदार्थोंका हमें स्वप्नमें ज्ञान होता है वे अपने वास्तविक स्वरूपमें वहाँ नहीं होते किन्तु वहाँ उनके होनेका भ्रम होता है। ये भ्रम किंवा विपर्यय साधिष्ठान नहीं होते (क्योंकि उनका कोई अधिष्ठान नहीं होता) परन्तु प्रायः करके निरधिष्ठान-आभास मात्र (Hallucination) होते हैं काल्पनिक केवल माया स्वरूप ही होते हैं*।

भगवान शङ्कराचार्य स्वप्नज्ञान और जाग्रदवस्थाके ज्ञानके बीच भेद समझाते हुए कहते हैं कि "स्वप्नावस्था एवं जाग्रदवस्थाका ज्ञान एक-सा नहीं हो सकता क्यांकि दोनों विभिन्न प्रकारके होते हैं। क्यों? क्योंकि स्वप्नमें त्याग किये हुए पदार्थ जाग्रत

---

* Dream is a state of consciousness in sleep. It lies midway between waking consciousness and the state of profound and unconscious sleep. It is essentially a mircture of illusion and hallucination taking place in sleep. In dreams we do not merely imagine things, but we believe that, we actually perceive them, that we see and hear things which are real and present before us.

(S. C. Dutt. Psychology.)

अवस्थामें नहीं दिखाई देते, परन्तु जाग्रत अवस्थामें देखे हुए पदार्थ ज्यों-के-त्यों हमारे सामने रहते हैं। फिर, स्वप्न-दर्शन तो स्मृति-संस्कारमात्रजन्य ज्ञान है परन्तु जाग्रत अवस्थाका दर्शन अनुभव है (क्योंकि स्वप्नावस्थामें इन्द्रियाँ शान्त (उपरत) रहती हैं, परन्तु जाग्रत अवस्थामें वे कार्य लीन रहती हैं। इसलिये इन्द्रियों द्वारा विषयोंका अनुभव होता रहता है) और स्मृति एवं अनुभवके बीचका भेद स्पष्ट ही है* फिर अन्य स्थानपर कहते हैं कि स्वप्नसृष्टि केवल माया स्वरूप ही है। उसमें परमार्थता-सत्यताकी गन्ध भी नहीं होती, क्योंकि देश-काल, निमित्त और अबाध्यताको दृष्टिसे सोचनेपर परमार्थिक वस्तुएँ सत्य सिद्ध होती हैं और स्वप्नसृष्टिके पदार्थ इस कसौटीको पार नहीं कर सकते। स्वप्नसृष्टिको देशकी मर्यादा नहीं होती; बनारसमें सोय

* न स्वप्नादि प्रत्ययवज्जाग्रत्प्रत्यया भवितुमर्हन्ति। कस्मात्? वैधर्म्यात्। वैधर्म्यंहि भवति स्वप्नजागरितियोः। किंपुनर्वैधर्म्यम् बाधाबाधाविति ब्रूमः। बाध्यतेहि स्वप्नोपलब्धं वस्तु प्रतिबुद्धस्य ××× नैवं जागरितोपलब्धं वस्तु स्तम्भादिक कस्यां चिदप्यवस्थायां बाध्यते। अपि च स्मृतिरेषा यत्स्वप्नदर्शनम्। उपलब्धिस्तु जागरितदर्शनम्। स्मृत्युपलब्ध्योश्च प्रत्यक्षमन्तरम् शां. भा. २-२-२९

मायामात्रंतु कार्त्स्न्येनानभि व्यक्त स्वरूपत्वात् ब्रह्मसूत्र ३-२-३

शां. भाष्य—मायैव संध्ये सृष्टिर्नपरमार्थगन्धोऽप्यस्ति × × नहि परमार्थ वस्तु विषयाणि देश कालनिमित्तान्यबाधश्च स्वप्ने संभाव्यन्ते × × तस्मान्मायामात्रं स्वप्नदर्शनम् ॥

हुआ मनुष्य स्वप्नमें अपनेको बम्बई, कलकत्ता, लन्दन या बिलकुल अननुभूत प्रदेशमें विहार करता हुआ देखता है। रातमें स्वयं निद्राधीन होनेपर भी दिनमें देखे हुए दृश्योंको देखता है। भूत-कालीन दृश्योंको वर्तमान कालमें देखता है। इसी प्रकार स्वप्नोंका निश्चित निमित्त भी नहीं होता। जिनको कई सालसे न याद किया हो या न देखा हो उन मनुष्यों या घटनाओंका हम स्वप्नमें अनुभव करते हैं। इसके अतिरिक्त सबसे अधिक जोरदार कसौटी बाध्याबाध्यताकी है, जिसपर स्वप्नसृष्टि कसी नहीं जा सकती ; क्योंकि मनुष्यको नींदसे जगनेपर तुरन्त स्वप्नसृष्टि मिथ्या थी इस प्रकारकी प्रतीत अपने-आप हो जाती है ; इतना ही नहीं खुद स्वप्नावस्थाके समय भी उसके विषय एक-दूसरेसे बिलकुल भिन्न मालूम होते हैं। स्वप्नमें देखा हुआ रथ क्षण भरके बाद मनुष्य हो जाता है, मनुष्य माना गया पदार्थ क्षणान्तरमें वृक्ष हो जाता है इसलिये स्वप्नावस्थामें अनुभवमें आनेवाले पदार्थ केवल माया स्वरूप ही हैं *[२]।

परन्तु साथ ही यह भी ख्यालमें रखना चाहिए कि स्वप्ना-वस्थाके समय भी मानसिक भावोंका प्रभाव कर्मेन्द्रियोंपर होता है जिसके कारण मनुष्य रोता है या बोलता है। शृंगारिक भावों का प्रभाव भी शरीर पर होता है यह प्रत्यक्ष ही है। इसी प्रकार

* स्वप्न एवं चैते सुलभ बोधा भवन्ति। आद्यन्तयोर्व्यभिचारदर्शनात् रथोऽयमिति कदाचित्स्वप्ने निर्धारितः क्षणेन मनुष्यः संपद्यते, मनुष्योऽयमिति निर्धारितः क्षणेन वृक्षः शां. भा. ३-२-३

कभी ज्ञानेन्द्रियों एवं मनका भी आकस्मिक संयोग हो जाता है यद्यपि उस संयोगके द्वारा वास्तविक ज्ञान नहीं होता किन्तु भ्रम या विपर्यय होता है। उदाहरणतया खुले पैरोंको ठंड लगती हो तो, स्वप्नमें उस मनुष्यको स्वयं पानीमें पड़ा हो ऐसा मालूम होता है। अपनी बगलमें रजाई पड़ी हो तो उसको वह स्वप्नमें अपनी प्रेयसी का आलिंगन मान लेता है इत्यादि। इसलिये श्रीधराचार्य उचित ही कहते हैं कि स्वप्नज्ञान केवल मनके प्रभावके कारण ही होता है (मनोमात्र प्रभावं स्वप्नज्ञानम्) और उदयनाचार्य तो स्पष्ट रूपमें कहते हैं कि स्वप्नावस्थाके समय इन्द्रियाँ सर्वथा काय करना नहीं बन्द करती। अर्थात् मन और इन्द्रिय ग्रामके बीच कभी संयोग हो भी जाता है। स्वप्नादिक तो स्पष्टतया जाग्रत अवस्थाका प्रारंभ ही है। इसमें स्वप्नकी बातें याद आती हैं इसलिये वह स्पष्ट ही स्मरण व्यापार है। अतएव वह स्वप्नसे भिन्न अवस्था है।

स्वप्नके प्रकार—भगवान चरकके (१०) मतानुसार स्वप्नके सात प्रकार हैं। प्रशस्त देव स्वप्नके केवल तीन भेद मानते हैं। दृष्ट, श्रुत, अनुभूत, प्रार्थित, कल्पित इन पाँच प्रकारोंका संस्कार जन्य स्वप्नमें अन्तर्भाव हो सकता है। भाविक स्वप्न भविष्यके शुभा शुभ फलोंका सूचक है, इसलिये अदृष्ट जन्य स्वप्नमें उसका अन्तर्भाव हो सकता है। दोषज स्वप्न दोनों विचारकोंको संमत है। भगवान बादरायण भी * सूचक स्वप्नोंका समर्थन करते

* सूचकश्चहि श्रुतेराचक्षते च तद्विदः ब्रह्मसूत्र ३-२-४

हैं। यद्यपि स्वप्न स्वयं केवल माया स्वरूप ही हैं फिर भी कभी-कभी वे भविष्यकी अच्छी बुरी घटनाओंका पहलेसे ही ज्ञान करा देते हैं, ऐसा स्वप्नाध्यायकोविदोंका मत है। उदयनाचार्यने भी कुसुमाञ्जलिमें यही मत व्यक्त किया है कि कुछ स्वप्न सत्य भी होते हैं*।

आधुनिक विज्ञानवादियोंमें प्रसिद्ध रूसी वैज्ञानिक पावलोव (Pavlov) निद्राको एक प्रकारका आन्तरिक निरोध (Internal Inhibition) मानते हैं। परन्तु स्वाभाविक निद्रा, योग निद्रा (Hypnosis) तथा विषजन्य निद्रा (Nareosis) ये सब निद्राके प्रकार आधुनिक विज्ञानको भी मान्य हैं। निद्रा के समय मस्तिष्कके (Brain) सब भाग निष्क्रिय नहीं हो जाते। विशेष-विशेष भाग अपना-अपना कार्य न्यूनाधिक करते रहते हैं जिसके कारण मनुष्य स्वप्नोंका अनुभव करता है। जब मनुष्य गाढ़ निद्रामें होता है तब—अर्थात् सुषुप्ति अवस्थामें—सब भाग विश्रान्ति लेते हैं, ऐसा मालूम होता है।

मस्तिष्क-व्यापार दर्शक-यन्त्र (Cephalograph) द्वारा,

शां० भाष्य—सूचकश्चहि स्वप्नोभवति भविष्यतोः साध्वसाधुनोः XX आचक्षते च स्वप्नाध्यायविदः। XXX। मन्त्र देवताद्रव्य विशेषनिमित्ताश्च केचित्स्वप्नाः सत्यार्थगन्धिनो भवन्तीतिमन्यन्ते।

स्वप्न और रोगोंके संबन्धके विषयमें तथा स्वप्नोंसे रोगीके भावीका ज्ञान कैसे होता है इस विषयमें चरक संहिताका इन्द्रिय स्थान देखो।

* स्वप्नानु भवस्यापि कस्यचित् सत्यत्वम् कुसुमाञ्जलि—पृ. १४७

निद्राके समय मनुष्यके मस्तिष्कसे गुजरनेवाले विद्युत् प्रवाहोंका अंकन करने पर मालूम होता है कि जाग्रदवस्थाकी अपेक्षा स्वप्नावस्थामें और स्वप्नावस्थाकी अपेक्षया गाढ़ सुषुप्तिके समय इन प्रवाहोंकी संख्या कम होती है। अर्थात् गाढ़ निद्रामें मस्तिष्कके ज्ञान कोषों (Nerve-cells) के व्यापार बिलकुल कम हो जाते हैं ; स्वप्नके समय उनकी संख्या बढ़ जाती है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि यह यन्त्र केवल ज्ञान कोषोंके व्यापारोंसे उत्पन्न होनेवाले विद्युत-प्रवाहोंका अंकन करता है। इन कोषोंके व्यापारोंके साथ विचार चलते रहते हैं या किसी प्रकारके मानसिक व्यापार भी चलते रहते हैं यह विज्ञानका मत है। परन्तु ये प्रवाह केवल मानसिक व्यापारोंके अस्तित्वको सूचित करते हैं न कि उनके प्रकारविशेषको। फिर भी इस यन्त्रकी सहायतासे मानस विज्ञानके क्षेत्रमें बहुत-सी बहुमूल्य खोजं होती जा रही हैं*।

---

* उदाहरणतः एक वास्तविक अन्धे औरं दूसरे अन्धेपनका छल करनेवाले मनुष्यके मस्तिष्कके पश्चिम पिंडपर—(क्योंकि इस पिण्डमें रूप संज्ञा ग्रहण प्रदेश (visual area) होता है।—यदि इस यन्त्रके दो विद्युद्ग्राहक तारके सिरे (Electrods) लगाये जायँ तो वास्तविक अन्धेके मस्तिष्कमें नाम मात्र विद्युत्तरंगें दिखाई देंगी किन्तु छली अन्धेके मस्तिष्कमें बहुत-सी विद्युत्तरंगें दिखाई देंगी, यद्यपि वह स्वयं तो मैं कुछ नहीं देखता, यही कहेगा। उसके असत्य कथनसे क्या उसके नेत्र और मस्तिष्क अपने कार्य करना थोड़े छोड़ देंगे ?

प्रसिद्ध मानस शास्त्री फ्रायड (Freud) के मतके अनुसार स्वप्नोंका कारण हमारी अतृप्त किंवा तिरोहित सूक्ष्मवासनाएँ हैं जो स्वप्नावस्थाके समय मनपर प्रभुत्व जमा लेती हैं। फ्रायड एवं उसके

इसके अतिरिक्त निद्रा, स्वप्न, और निद्राप्रद औषधोंके प्रभावोंका भी अध्ययन किया गया है, जिसका सार निम्नानुसार है।

(१) साधारणतः मस्तिष्कमें प्रति सेकण्ड दस विद्युत्तरंगें दिखाई देती हैं। मस्तिष्कके पश्चिम पिण्डपर ये तरंगें अधिक स्पष्ट स्वरूपमें दिखाई देती हैं, क्योंकि उनका नेत्रेन्द्रियके व्यापारोंके साथ विशेष संबंध होता है और नेत्र एवं कर्णेन्द्रिय द्वारा मस्तिष्कमें बहुतसे संज्ञावाहक वेग आते हैं।

(२) सामान्य निद्रामें ये तरंगें मन्द हो जाती हैं, गाढ़ सुषुप्तिमें वे प्रति सेकण्ड दो या तीन हो जाती हैं या सर्वथा बंद हो जाती हैं। इस स्थितिमें भी यदि निद्राधीन मनुष्यको थपकी लगाई जाय-जिससे कि वह न जग जाय तो भी उसके मस्तिष्कमें थोड़ी सी विद्युतकी तरंगें—कभी-कभी दस—उत्पन्न होंगी। यदि वह जग जाता है तो वे तरंगें साधारण कदकी और नियमित रूपसे फिर शुरू हो जाती हैं, फिर चाहे उसने आँखें न भी खोली हों।

(३) निद्राप्रद औषधों द्वारा होनेवाली निद्रामें, प्रारम्भमें तो थोड़ी आवाज होनेपर मस्तिष्कके शब्द संज्ञाग्राही प्रदेशमें थोड़ीसी निर्बल या छोटी तरंगें उत्पन्न होती हैं; परन्तु जब रोगी औषधके प्रभावसे गाढ़ निद्रामें होता है तब वे (तरंगें) सर्वथा अदृश्य हो जाती हैं। केवल जब वह जागता है तब विद्युत्तरंगें फिरसे दिखाई देती हैं। निद्राप्रद औषध मस्तिष्क द्वारा होनेवाले द्राक्षशर्करा (Glucose) के सात्म्यीकरण (Assimilation) को रोकते हैं जिसके कारण मस्तिष्क अपना काम करनेसे रुक जाता है।

(४) प्रयोगोंसे यह मालूम होता है कि स्वाभाविक निद्रा द्वारा मनुष्य मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त करता है। जब ज्ञानेन्द्रियाँ थक जाती हैं और उनसे आनेवाले संज्ञावह वेग बन्द हो जाते हैं, और शरीरके मांसल

अनुयायिओंकी मान्यताके अनुसार, काम वृत्ति (Sexual) तथा अवांछनीय वृत्तियांको हम समाजकी लज्जाके भयसे दबा देते हैं। पर वे मनसे सर्वथा नहीं चली जातीं, किन्तु उसके अज्ञेय भाग (Unconscios mind) में छिपी रहती हैं और निद्रामें हमारी इच्छा शक्तिका दबाव ढीला होनेपर वे वृत्तियाँ या

अवयव भी कामान्वित हो जाते हैं तब निद्रा आने लगती है ऐसा माना जाता है। किन्तु यही—केवल श्रम ही—निद्रोत्पत्तिके लिये पर्याप्त कारण नहीं है। मस्तिष्कमें दृक्कन्दोंके (Optic thalami) नीचे एक निद्रा केन्द्र (Sleep-centre) रहता है जो ऐसी परिस्थितियोंमें अपना कार्य शुरू करता है और मानों मस्तिष्ककी सारी प्रवृत्तियोंको रोक देता है। यदि सब ज्ञानेन्द्रिय-जन्य वेगोंको बन्द किया जाय तो भी मस्तिष्ककी विद्युत्तरंगें सर्वथा बन्द नहीं होतीं। जब निद्रा केन्द्र अपना कार्य शुरू करता है तब ही वे सम्पूर्णतया बन्द होती हैं और मस्तिष्क (मनुष्य) गाढ़ निद्राका अनुभव करता है।

(५) निद्राके समय भी श्वासोच्छ्वास एवं कुछ एक रासायनिक परिवर्तन—प्राण व्यापार—तो अवश्य चलते रहते हैं। भेद मात्र यही है कि जाग्रदवस्था एवं सुषुप्ति अवस्था इन दोनोंके अपने-अपने विशिष्ट भौतिक एवं रासायनिक व्यापार हैं।

(६) तत्त्वज्ञानी चाहे जो कुछ कहें, वैद्य विद्याके मतके अनुसार तो मनका स्थान मस्तिष्क ही है, क्योंकि इसके द्वारा मन अपनी प्रवृत्तियोंको व्यक्त करता है और जगत्के सम्पर्कमें आता है। मस्तिष्क और मन दोनों अपने समग्ररूप (one mechanism) में ही काम करते हैं। जब हम निद्राधीन होते हैं तब मस्तिष्कका प्रत्येक भाग विश्रान्ति लेता है और जब हम जागते हैं तब इसका प्रत्येक भाग प्रवृत्तिशील हो जाता है। इसी प्रकार मनके सब व्यापार—संज्ञाग्रहण, भावोद्भव, चेष्टा आदि—भी एक साथ बन्द हो जाते हैं या शुरू होते हैं।

(Sherrington—Man on his Nature Chapter. VIII)

संस्कार अपने शुद्ध, विकृत या सांकेतिक स्वरूपमें दिखाई देती हैं। इसलिये स्वप्नोंकी परीक्षा करके उनके अनुयायी मानसिक भावोंका पृथक्करण करते हैं।

इस मतकी यथार्थता-अयथार्थताके विषयमें मतभेद हो सकता है। परन्तु इस मतका प्रभाव बहुत व्यापक हुआ है। आजकल विभिन्न मानस शास्त्रियोंको डा० फ्रायडके मतकी ओर अवश्य लक्ष्य देना पड़ता है। ईसवी सन् १८६२ से १६३६ तक के उसके लेखोंने 'अज्ञेय मन'पर काफी प्रकाश डाला है। स्वप्नोंके सांकेतिक स्वरूपोंके विषयमें जिज्ञासुओंको उसकी 'इण्टर प्रीटेशन आफ ड्रीम्स' (Interpretation of Dreams by Sigmund Freud) नामकी पुस्तक देखनी चाहिये। उनकी स्थापनाएँ मृदु मानसिक रोगोंकी चिकित्सामें (Psychoneurosis) बहुत सहायक सिद्ध हुई परन्तु भीषण मानसिक रोगोंकी चिकित्सा में वे अनुपयोगी ही रही हैं। आगे मृदु रोगोंकी चर्चामें इस विषय का फिरसे जिक्र होगा। यहाँ तो केवल अंगुलि--निर्देश किया गया है।

मनके ज्ञान-प्रधान व्यापारोंके विषयमें चर्चा करते हुए अब हम इस चर्चाकी पूर्णाहुति करते हैं। (Thought) चिन्तन, (Reflection) निर्णय किंवा अध्यवसाय (Judgment & determination) ये सब व्यापार मानसिक तो हैं ही परन्तु उनका विशेष शास्त्रीय नाम बुद्धिजन्य किंवा बौद्धिक व्यापार (Intellectual operations) है। हम पहले देख चुके हैं

कि सांख्यवादी अन्तःकरणके तीन भेद मन, बुद्धि, और अहंकार मानते हैं और आयुर्वेदज्ञ प्रायः मन और बुद्धि यही दो भेद मानते हैं। वस्तुतः ये दोनों मनके ही नाम हैं और जिस क्षणमें मन जिस प्रकार का कार्य करता होता है उसके अनुसार उसको मनोव्यापार या बुद्धि-व्यापार कहा जाता है।

जितना मनुष्य अधिक विचारशील या चिन्तनशील होता है उतना उसका मनोबल भी अधिक माना जाता है। इस प्रकारके मनुष्य ही समाजमें विज्ञानवादी, तत्त्वज्ञानी, कवि, लेखक, न्याया-धीश इत्यादि प्रतिष्ठित पद प्राप्त करते हैं। ज्यों-ज्यों मनुष्य बच-पनसे बड़प्पन प्राप्त करता जाता है, त्यों-त्यों उसमें विचार करने का सामर्थ्य बढ़ता जाता है जिसके कारण हम अनुभव करते हैं कि वह अधिकाधिक बुद्धिमान होता जा रहा है। वास्तवमें उसकी मानसिक शक्तियाँ भी अधिक विकसित होती जाती हैं इसलिये युवावस्थामें वह बुद्धिपूर्वक सोचनेवाला हो जाता है।

इन्द्रियाँ केवल प्रत्यक्ष पदार्थोंका ही ज्ञान करा सकती हैं। स्मृति, कल्पना, तर्क, ऊहापोह द्वारा मनुष्य भूत, भविष्य और वर्तमानकालका विचार कर सकता है, फिर चाहे ये पदार्थ दृष्टिके समक्ष न भी हों। विचार और तत्त्व चिन्तन तो एकान्तमें भी हो सकता है क्योंकि ये मनोव्यापार बाह्य परिस्थितिपर अव-लम्बित नहीं हैं। चिन्तनके द्वारा मनुष्यने बहुत-सी खोजें की हैं—घातक भी और उपकारक भी। तत्त्वचिन्तन द्वारा एक कोनेमें बैठकर उसने विश्वके रहस्यको खोज निकालनेका प्रयत्न

किया है। हमारे दैनिक व्यवहारमें इन मनोव्यापारोंका स्थान कुछ और ही है। इसलिये कुछ मानस-शास्त्री इन व्यापारोंको सर्वोच्च मानसिक व्यापार मानते हैं।

प्राचीन वैशेषिक दार्शनिकों द्वारा किया गया पदार्थोंका वर्गीकरण—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव—पाठकोंको याद होगा। इनमें अभावको छोड़कर शेष छः को आयुर्वेदने भी माना है। इनमेंसे शुरूके तीन तो इन्द्रिय ग्राह्य हैं परन्तु बाकी तीन बुद्धि ग्राह्य हैं क्योंकि हमारे मनो-व्यापार या बुद्धि व्यापारके बिना इन तीन पदार्थों—सामान्य (Generality), विशेष (Particularity) और समवाय (Inherence)-का ग्रहण नहीं हो सकता। हम बहुतसे पदार्थों—प्राणियों या वनस्पतियों—को देखते हैं और फिर उनके सामान्य एवं विशेष अंशोंको भी जानना चाहते हैं। इतना जाननेपर ही उनका वास्तविक ज्ञान हुआ है ऐसा माना जाता है। यथा—आयुर्वेदका छात्र विभिन्न वनस्पतियोंको पहचानता है और फिर उनके सामान्य गुणोंका एवं विशेष गुणोंका अध्ययन करता है। इनमें द्रव्यत्व सामान्य (एकत्वकर) है और इनका वमनत्व या विरेचनत्व विशेष गुण है जो इनको एक दूसरेसे भिन्न करता है (पृथकत्व कृत)। साथ ही द्रव्यों एवं गुणोंके बीचके समवाय संबंधको भी वह अपनी बुद्धि द्वारा समझता है। अन्य शब्दोंमें कहा जाय तो यह सारा ज्ञान हमारे मानसिक व्यापारोंके अधीन है।

परन्तु हमारा जगत्का अनुभव-व्यावहारिक अनुभव-कहता है कि सब मनुष्य इस प्रकारके उच्च मानसिक व्यापार नहीं कर सकते। मनुष्य अपनी बुद्धिके अनुसार—मानसिक शक्तिके अनुसार—जगत्में ज्ञान प्राप्त करता है। यद्यपि उसकी सभी ज्ञानेन्द्रियाँ चाहे पूर्णतया कार्यक्षम क्यों न हों। जिस प्रकार बहुत तरहके खाद्य पदार्थोंमेंसे मनुष्य यकायक खाद्य-पदार्थोंकी पसंदगी नहीं कर सकता उसी प्रकार इन्द्रियों द्वारा मनके ग्रहण किये हुए पदार्थोंमें अच्छे कौन और बुरे कौन? उपयोगी कौन और अनुपयोगी कौन? इसका निर्णय बुद्धिके बिना वह तुरन्त नहीं कर सकता। इतना ही नहीं अपने मन्तव्य सत्य ही हैं इसका तर्कशुद्ध युक्तियों (दलीलों) से वह प्रतिपादन भी नहीं कर सकता। इस मौकेपर विचारोंकी चर्चामें न्यायशास्त्र (Logic) और मानसशास्त्र (Psychology) दोनों एक दूसरेके सहायक होते हैं; क्योंकि मानसशास्त्र एवं न्यायशास्त्र दोनोंका विचारोंकी प्रक्रियाके साथ संबंध है। कारण, हम कई बार हेतुओंके बदले हेत्वाभासोंको मानते हैं, सच्चे अनुमानोंके बजाय झूठे अनुमान करते हैं और पक्ष एवं प्रतिपक्षके विषयमें पर्याप्त विचार-विमर्श करनेके बजाय गलत निर्णय कर बैठते हैं।

इस विषयका अधिक ज्ञान प्राप्त करनेके लिये जिज्ञासुओंको न्यायदर्शन और मानसशास्त्रके उच्चकोटिके ग्रन्थ देख लेना चाहिए।

पाँचवाँ अध्याय

प्रमाण संग्रह

(१) शरीर विचयः शरीरोपकारार्थमिष्यते। ज्ञात्वा हि शरीरतत्त्वं शरीरोपकारकरेषु भावेषु ज्ञानमुत्पद्यते। तस्मात्शरीर विचयं प्रशंसन्ति कुशलाः। च० शा० अ० ६।३

(२) अचेतनं क्रियावच्च मनश्चेतयिता परः॥

युक्तस्य मनसा तस्य निर्दिश्यन्ते विभोः क्रियाः॥७३॥

चेतनावान् यतश्चात्मा ततः कर्ता निरुच्यते॥

अचेतनत्वाच्च मनः क्रियावदपि नोच्यते॥७४॥

चरक० शा० स्था० अ० १

(३) सत्त्वमुच्यतेमनः, तच्छरीरस्य तन्त्रकमात्मसंयोगात्। च० वि० अ० ८

(४) चिन्त्यं विचार्यमूह्यञ्च ध्येयं संकल्प्यमेव च।

यत्किञ्चिन्मनसोज्ञेयं तत् सर्वं ह्यर्थसंज्ञकम्॥१८॥

इन्द्रियाभिग्रहः कर्म मनसः स्वस्य निग्रहः।

ऊहोविचारश्च-ततः परंबुद्धिः प्रवर्तते॥१९॥

इन्द्रियेणेन्द्रियार्थोहि समनस्केन गृह्यते।

कल्प्यते मनसाप्यूर्ध्वं गुणतो दोषतोऽथवा॥२०॥

जायते विषयेतत्र या बुद्धिर्निश्चयात्मिका।

व्यवस्यति तया वक्तुं कर्तुं वा बुद्धिपूर्वकम्॥२१॥

या यदिन्द्रियमाश्रित्य जन्तोर्बुद्धिः प्रवर्तते ।
याति सा तेन निर्देशं मनसा च मनोभवा ॥३०॥
भेदात्कार्येन्द्रियार्थानां बह्व्यो वै बुद्धयःस्मृताः ।
आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानामेकैका सन्निकर्षजाः ॥३१॥ च. शा.अ. १

(५) वक्ष्यन्ते कारणान्यष्टौ स्मृतिर्यैरूपजायते ।
निमित्त रूपग्रहणात् सादृश्यात् सविपर्ययात् ॥१४६॥
सत्वानु बन्धादभ्यासज्ज्ञानयोगात्पुनःश्रुतात् ।
दृष्ट श्रुतानुभूतानां स्मरणात्स्मृतिरुच्यते ॥१४७॥
एतत्तदेकमयनं मुक्तैर्मोक्षस्य दर्शितम् ।
तत्त्व स्मृति बलं येन गता न पुनरागताः ॥१४९॥ च. शा. अ. १

(६) अथ संशयः संशयो नाम सन्देह लक्षणानुसन्दिग्धेष्वर्थेषु अनिश्चयः, यथा दृष्टा ह्यायुस्य लक्षणो पेताश्चानुपेताश्च तथा सक्रियाश्चाऽक्रियाश्च पुरुषाः शीघ्रभङ्गाश्चिरजीविनश्च, एतदुभय दृष्टत्वात् संशयः किन्नु खलु 'अकाल मृत्यु' रस्त्युत नास्तीति । चरक. वि. अ. ८

उभय हेतु दर्शनं संशयः। यथा तल हृदयाभिघातः प्राणहरः, पाणिपादच्छेदनमप्राणहरम ॥ सुश्रुत. उत्तर तन्त्र. अ. ६५

(७) यदा तु मनसिक्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्वितः ।
विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदास्वपिति मानवः ॥ ३५ ॥ च. सू. अ. २१

तमोभवा श्लेष्मसमुद्भवा च मनः शरीरश्रमसंभवाच ।
आगन्तुकी व्याध्यनुवर्तिनी च रात्रिस्वभाव प्रभवाच निद्रा ॥ ५८ ॥
च. सू. अ. २१

(८) हृदयं चेतनास्थानमुक्तं सुश्रुत ! देहिनाम् ।
तमोऽभिभूते तस्मिंस्तु निद्राविशति देहिनाम् ॥ ३४ ॥
निद्राहेतुस्तमः सत्त्वं बोधने हेतुरुच्यते ।
स्वभाव एव वा हेतुर्गरीयान् परिकीर्त्यते ॥ ३५ ॥ सुश्रुत. शा. अ. ४

(९) पूर्वदेहानुभूतांस्तु भूतात्मा स्वपतः प्रभुः ।
रजोयुक्तेन मनसागृहणात्यर्थान् शुभाशुभान् ॥ ३६ ॥

सुश्रुत. शा. अ. ४

मनो वहानां पूर्णत्वाद्दोषैरति बलैस्त्रिभिः ।
स्रोतसां दारुणान्स्वप्नान् काले पश्यति दारुणान् ॥ ४० ॥
नाति प्रसुप्तः पुरुषः सफलानफलानपि ।
इन्द्रियेशेन मनसा स्वप्नान्पश्यत्यनेकधा ॥ ४१ ॥

चरक. इन्द्रिय. अ. ५

(१०) दृष्टं श्रुतानुभूतंच प्रार्थितं कल्पितं तथा ।
भाविकं दोषजं चैव स्वप्नं सप्तविधं विदुः ॥ ४२ ॥

चरक. इन्द्रिय. अ. ५

छठा अध्याय

मानस-व्यापार-विशेष-विज्ञानीय

ज्ञान प्रधान व्यापारोंकी चर्चा समाप्त करके अब हम इस अध्यायमें भावना-प्रधान और चेष्टा-प्रधान व्यापारोंका वर्णन करते हैं। मानस रोगोंसे पीड़ित रोगियोंमें इन व्यापारोंका भी प्रबल प्रभाव होता है इसलिये इनका भी ज्ञान आवश्यक है।

प्राचीन दर्शनोंमें मानसिक भावों किंवा भावनाओंकी चर्चाको प्रधान स्थान नहीं दिया गया है, क्योंकि दर्शनों का प्रधान उद्देश्य मोक्षप्राप्ति था। इसलिये मनका निग्रह करनेकी बात पर उन्होंने विशेष जोर दिया है। जो मानसिक भाव या आवेग, मोक्ष-मार्गमें विघ्नरूप उनको मालूम हुए उनके विषयमें उन्होंने अधिक विवेचन नहीं किया है।

उदाहरणतया योगसूत्रकार भगवान पतञ्जलिने चित्तवृत्तियों की गणना करते हुए चित्तके विक्षेपोंकी भी गणना की है*। व्याधि (शारीरिक एवं मानसिक), चित्तकी अकर्मण्यता, संशय प्रमाद, आलस्य (शरीर और मनका), अविरति, भ्रान्ति-दर्शन (विपर्यय ज्ञान) समाधि-भूमिकी अप्राप्ति, और प्राप्त हुई समाधि भूमिपर चित्तका स्थिर न होना-येनौ चित्त विक्षेप या योगमल हैं, क्योंकि ये योग मार्गके अन्तराय स्वरूप हैं। विक्षिप्त चित्तवाले मनुष्योंमें ये

---

* व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानिचित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः— योग-सूत्र १-३०

लक्षण देखे जाते हैं दुःख (आध्यात्मिक, आधिदैविक, और आधिभौतिक), चित्तका क्षोभ, शरीरका कंप, और श्वासोच्छ्वास। ये लक्षण स्वस्थ चित्तवाले मनुष्योंमें नहीं पाये जाते*। आगे चल कर पतञ्जलि चित्तके पाँच क्लेशों—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, और अभिनिवेशकी गणना करते हैं जो कि समाधिमार्गमें विघ्नरूप हैं। इस प्रकार, योग सूत्रकारके मतानुसार, मन किंवा चित्त एक प्रकारकी रणभूमि है जिसमें विविध प्रकारके बल एक दूसरेके साथ स्पर्द्धा करके चित्तव्यापारोंपर अपना प्रभुत्व जमानेकी कोशिश करते हैं। इनसे बचकर आगे बढ़ने और चित्तव्यापारोंको उचित दिशामें अभिमुख करनेका प्रयत्न प्रत्येक विज्ञ पुरुषको करना चाहिये†।

भगवान् गौतम, न्यायसूत्रमें, राग, द्वेष, और मोह इन तीन समुदायोंमें सब दोषोंका समावेश करते हैं, क्योंकि उनके मतके अनुसार इन तीन विभागोंमें सम्पूर्ण चित्त-दोषों का समावेश हो जाता है। विशेष रूपसे उनकी गणना करनेका प्रयास किसीने नहीं किया है‡। गीता, महाभारत, आदिमें भी राग, द्वेष, काम, क्रोध, मद मोह आदि द्वन्द्वों (युग्मों) का उल्लेख मिलता है।

* दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासाविक्षेपसहभुवः योग-सूत्र १-३१

† दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता। सुखानुशयीरागः। दुःखानुशयीद्वेषः स्वरसवाहीविदुषोऽपितथारूढोऽभिनिवेशः। अनित्याशुचिदुःखानात्मसुनित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या। योग-सूत्र २,५,६,७,८,९, और इस सूत्रका व्यासभाष्य।

‡ प्रवर्तनालक्षणा दोषा इत्युक्तम्। तथा चेमेमानेर्ष्यासूयाविचिकित्सामत्सरादयः ते कस्मान्नोपसंख्यायन्त इत्यत आह—

च्चित्, भय, दर्प, ईर्ष्या आदिका निर्देश भी देखनेमें आता है, थापि राग, द्वेष और मोह इन तीन राशियोंमें इतर मानसिक ावों का समावेश हो जाता है ऐसा प्राचीनों का मन्तव्य प्रतीत ता है। भगवान कणाद और भाष्यकार प्रशस्तपादने इच्छाके दोंमें* काम, अभिलाष, राग, संकल्प, कारुण्य, वैराग्य, उपधा, ाव आदिका समावेश किया है ; और द्वेषके भेदोंमें क्रोध, द्रोह, न्यु, अक्षमा, अमर्ष आदिका समावेश कर दिया है। भगवान रकने किन-किन वेगोंको न रोकना चाहिए और किनको रोकना ाहिए इसका निर्देश करते हुए "लोभ, शोक, भय, क्रोध, नैर्लज्ज्य, र्या, अतिराग, और परद्रोह चिन्तन आदि वेगोंको रोकनेका पदेश किया है। च० सू० ७

इसीसे मिलता जुलता उपदेश योग सूत्रकारने 'यम' की गणना प्रसंगमें किया है। वहाँ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रह इन पाँच व्रतोंका पालन करनेका उपदेश किया है†।

सूत्र—तत्त्रैराश्यं रागद्वेषमोहार्थान्तर्भावात्— न्या० सू० ४-१-३
ां दोषाणां त्रयो राशयस्त्रयः पक्षाः। रागपक्षः कामो मत्सरः स्पृहातृष्णा लोभ ति। द्वेषपक्षः क्रोध ईर्ष्याऽसूयाद्रोहोऽमर्ष इति।

मोहपक्षो—मिथ्या ज्ञानं, विचिकित्सामानः प्रमाद इति। त्रैराश्यान्नोप ल्यायन्त इति। न्या० सू० वात्स्यायनभाष्य

* कामोऽभिलाषं रागः सङ्कल्पः कारुण्यं वैराग्यम् उपधा भाव इत्येवमादय च्छाभेदाः। प्रज्वलनात्मको द्वेषः। XX क्रोधो द्रोहः मन्युरक्षमाऽमर्ष इति षभेदाः। प्रशस्तपाद गुणग्रन्थ

† अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः यो. सूत्र. २-३०

मैं समझता हूं कि आधुनिक पाठकों को इस प्रकारका विवेचन या वर्णन जरा भी पसंद न होगा। जिन्होंने केवल पाश्चात्य मानस शास्त्रियोंकी वैज्ञानिक एवं अर्धवैज्ञानिक (Pseudo scientific) पुस्तकें पढ़ी हैं वे तो कहेंगे कि ये तो केवल साधुसंन्यासियोंकी बातें हैं, इनमें मानसिक भावों का वैज्ञानिक अन्वेषण किंवा वैज्ञानिक पृथक्करण नहीं है, इसलिये उनके उपदेशका मूल्य मानसरोग विज्ञान की दृष्टिसे कुछ भी नहीं है। मानस रोग विशारदोंको पागल मनुष्यों की मानसिक स्थिति की परीक्षा करनी होती है और इस परीक्षामें आधुनिक या नव्य मानस विज्ञान अधिक उपयोगी होता है। उनसे यही प्रार्थना है कि जरा शान्त रहिये; अत्यन्त प्राचीन संस्कृति सम्पन्न इस देशमें मानसिक प्रक्रियाओं को समझानेवाली विभिन्न विचारधारायें हैं, उनका अध्ययन कीजिये तथा अपने अन्तरात्मासे एक प्रश्न पूछिये कि मानसिक संयमका किसने अधिक व्यावहारिक रीतिसे उपदेश किया है। उत्तर स्पष्ट है कि भारतीय प्रजाने, इस प्रजाकेऐतिहासिक महान् पुरुषोंने अपनी मानसिक वृत्तियोंपर अद्भुत संयम दिखाया है, जिसका उदाहरण आज भी मौजूद है। इसलिये सत्य अनुमान तो यह है कि इस देश के विचारक मानसप्रक्रियाओंको अधिक अच्छी तरह समझते थे। हमारे मतके अनुसार प्राच्य और प्रतीच्य मानस विज्ञानमें प्रत्यक्षभेद प्रत्येकके तत्त्वज्ञानविषयक विचारों (Philosophical thoughts) और आधिभौतिक विचारों (Metaphysical thoughts) के कारण है।

इतने विषयान्तरके बाद हम पुनः मूल विषयपर आते हैं। प्रत्येक ज्ञान-प्रधान व्यापारके साथ कुछ-न-कुछ भाव अवश्य उत्पन्न होता है, यह अनुभव सिद्ध है। इसके परिमाणस्वरूप कोई क्रिया-व्यापार भी उत्पन्न होता है। परन्तु इन भावों या भावनाओं का परिसंख्यान-गिनती या विस्तृत पृथक्करण दार्शनिक साहित्य किंवा आयुर्वेदमें नहीं है, यह हम देख चुके हैं। सुख-दुःख, राग-द्वेष आदिको आयुर्वेदाचार्योंने भी आत्माके गुणोंके रूपमें स्वीकार किया है। उन्होंने मनको अचेतन-जड़ माना है परन्तु साथ ही यह भी कहा है कि इस अचेतन मनकी क्रिया आत्माके कारण ही होती है इसलिये हमारे दैनिक व्यवहारमें इन गुणोंका मनमें आरोप होता है। इच्छा और प्रयत्नको आगेके लिये छोड़कर सुख-दुःख, राग-द्वेषका यदि हम विचार करें तो मालूम होगा कि दार्शनिकोंके भावना के; विषयमें जो विचार हैं वे इन ही गुणों की चर्चामें समाविष्ट हो जाते हैं।

परन्तु एक अन्य दिशासे इन भावनाओंका बहुत सुन्दर विवरण प्राप्त होता है; और वह प्राप्त होता है भरत मुनिके नाट्य शास्त्र से। इसलिये इस ग्रन्थके आधारपर यहाँ मानसिक भावोंका वर्णन करते हैं। गत अध्यायमें मनकी रचना (संघटन) के विषयमें लिखते हुए हम बता चुके हैं कि मानसिक रचना (संघटन) में स्वाभाविकतः संस्कार पिण्ड किंवा सूक्ष्म वासना पिण्ड रहते हैं। ये वासना पिण्ड अपना अवलम्बन किंवा उत्तेजना पाते ही चित्त व्यापारोंको जन्म देते हैं और फिर तो जैसी वासना

वैसा चित्तव्यापार होता है। भावोंके विषयमें कहा जाय तो प्रत्येक मनुष्यके मनमें कुछ एक विशिष्ट वासना-पिण्ड रहते हैं जो "स्थायीभावों" के नामसे प्रसिद्ध हैं। जब-जब इन भावोंके उद्दीपक कारण (हेतु या विभाव) उपस्थित होते हैं तब वे जाग्रत् हो जाते हैं और इनके साथ ही कुछ एक व्यभिचारी किंवा क्षणिक भाव भी उत्पन्न होते हैं, जो थोड़ी देरके बाद बदलते रहते हैं, इसलिये इनका नाम 'व्यभिचारी' भाव रखा गया है। साथ ही मानसिक भावोंका प्रभाव मनुष्य-प्राणी-शरीरपर भी होता है। ये सब संयुक्त प्रभाव' अनुभाव' कहे जाते हैं। (यहाँ पाठक फिरसे विभाव-स्थायी भाव-व्यभिचारी किंवा संचारी भाव और अनुभाव शब्दोंको ख्यालमें रखें)। यद्यपि नाट्य शास्त्र स्वयं मानस शास्त्रका ग्रन्थ नहीं है तथापि उसमें विभिन्न कारणोंसे उत्पन्न होनेवाले विविध मानसिक भावों और उनके शरीरपर मनुष्यके व्यवहार होनेवाले प्रभावोंका मार्मिक विवेचन है, इसलिये यह ग्रन्थ भी उपयोगी है। भरत मुनिने मनुष्यके मनमें रस-निष्पत्ति कैसे होती है यह समझानेका प्रयत्न किया है और विभिन्न टीकाकारोंने इसपर सूक्ष्म विवेचन किया है। यहाँ प्रसिद्ध टीकाकार पण्डित अभिनव गुप्ताचार्यका मत उद्धृत करते हैं जो नौ स्थायी-भावोंका दिग्दर्शन कराता है।

"उत्पन्न हुए प्रत्येक मनुष्यके मनमें ये समवेदन (स्थायिभाव) रहते हैं। उदाहरणतया प्रत्येक मनुष्य सुखका उपभोग करनेके लिये तैयार होता है परन्तु वह दुःखको धिक्कारता है। इसी प्रकार

प्रत्येकको 'रति'-सुख की इच्छा होती है। अपने आपको उच्च माननेवाला हर कोई दूसरेको निकृष्ट-हीन मानकर हँसता है ('हास')। अभीष्ट वस्तुके नष्ट होनेपर हरेकको 'शोक' होता है। चिढ़नेका कारण उपस्थित होनेपर हरेकको 'क्रोध' आता है। दूसरेका प्रतीकार करनेकी शक्ति जब नहीं होती तब हरेकको 'भय' मालूम होता है। किसी वस्तुको प्राप्त करनेका उसको 'उत्साह' होता है; परन्तु जब उसे मालूम होता है कि उस वस्तुको ग्रहण करना उचित नहीं है तब उसको उसके प्रति घृणा-जुगुप्सा होती है। अपने और दूसरेके कर्तव्यका ज्ञान होनेपर उसको विस्मय होता है। जगत् की विविध विचित्रताओंसे उसको थोड़ी वैराग्य वृत्ति उत्पन्न होनेपर वह शान्त (शम) हो जाता है। किसी भी मनुष्यका चित्त वासना रहित तो होता ही नहीं। किसी में एक चित्त-वृत्तिकी अधिकता होती है तो अन्यमें वह कम होती है। किसी की चित्त-वृत्ति उचित विषयोंमें संलग्न रहती है तो किसी की अयोग्य किंवा अनुचित विषयोंमें मग्न रहती है*।"

---

* जात एवहि जन्तुरियतीभिः संविद्भिः परीतो भवति। तथाहि—"दुःख संश्लेषविद्वेषी सुखास्वादनसादरः" इति न्यायेन सर्वो रिरंसया व्याप्तः स्वात्मन्युत्कर्षमानी तथा परमुपहसन्नभीष्टवियोगसन्तप्तस्तद्धेतुषु कोपपरवशोऽशक्तौ च ततो भीरुः किञ्चिदुर्जिजीषुरप्यनुचितवस्तुविषयवैमुख्यात्मकतया क्रान्तः किञ्चिदनभीष्टतयाऽभिमन्यमानस्तत्तत्स्वपरकर्तव्यदर्शन-समुदित विस्मयः किञ्चिच्च जिज्ञासुरेव जायते। न ह्येतच्चित्तवृत्तिवासनाशून्यः प्राणी भवति। केवलं कस्यचित् काचिदधिका चित्तवृत्तिः काचिदूना। कस्यचिदुचित विषय नियन्त्रिता, कस्यचिदन्यथा। भरत नाट्यशास्त्र—अध्याय ६, अभिनवगुप्ताचार्यटीका

इस लम्बे उद्धरणमें नौ स्थायीभावोंका वर्णन किया है। इनमें प्रत्येकके उत्तेजक कारणों द्वारा इनके साथ संचारी किंवा व्यभिचारी भाव उत्पन्न होते हैं और उनका शरीरके अंगों—नेत्र, कण्ठ हृदय, हाथ, पैर आदि-पर प्रभाव होता है। जब रंगभूमिपर ये भाव अभिनयके साथ दिखाये जाते हैं तब प्रेक्षकोंके मनमें रसकी उत्पत्ति होती है और वे रसास्वादन करते हैं। काव्यमें इस प्रकार का वर्णन पाठकोंके मनमें रसोत्पत्ति करता है। कौनसा स्थायीभाव किस रसको उत्पन्न करता है यह निम्न तालिकासे मालूम होगा*।—

स्थायीभाव (९)		रस (९)	
रति	Lust	श्रृङ्गार	Love
हास	Laughter	हास्य	mirth
शोक	Grief	करुण	Pathos
क्रोध	Anger	रौद्र	wrath
उत्साह	Enthusiasm	वीर	Heroism
भय	Fear	भयानक	Terror
जुगुप्सा	Aversion	बीभत्स	Disgust
विस्मय	Astonishment	अद्भुत	wonder
शम	Quiescence	शान्त	Tranquility

* श्रृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।
बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः॥ १६॥
रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चैति स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः॥ १८॥

हम रसास्वादनकी बात एक किनारे रखकर सिर्फ मनके भाव उनका आविर्भाव और उनके कारणोंको ही जानना चाहते हैं। और इस विषयकी आवश्यक बातें नाट्य शास्त्रमें मिल जाती हैं। उपरिनिर्दिष्ट स्थायी भावोंके साथ निम्नलिखित तैंतीस संचारी किंवा व्यभिचारी भावोंको भी ख्यालमें रखना चाहिये।—

*निर्वेद (self disparagement), ग्लानि (Languor), शंका (Uncertainty), असूया (Envy or jealousy) मद (Intoxication); श्रम (Fatigue), आलस्य (Sloth), दैन्य (Misery), चिन्ता (Anxiety), मोह (Infatuation), स्मृति (Recollection), धृति (Self-conrtol), व्रीड़ा (Shame), चपलता (Fickleness), हर्ष (Joy), आवेग (Excitement, Furyor, Impulse) जड़ता (Torpor Dullness), गर्व (pride), विषाद (Dejection, Dispair, Depression). औत्सुक्य (Eagerness Expectancy) निद्रा (Sleep), अपस्मार (Epibpsy), सुप्त (Sleepiness), विवोध (प्रबोध) (Waking-up)

---

* निर्वेदग्लानिशंकाख्यास्तथासूयामदः श्रमः। आलस्यंचैव दैन्यं च चिन्तामोहः स्मृतिर्धृतिः व्रीडा चपलता हर्ष आवेगो जड़ता तथा। गर्वो विषाद औत्सुक्यं निद्रापस्मार एवच ॥ सुप्तं विबोधोऽमर्षश्चाप्यवहित्थमथो-ग्रता। मतिर्व्याधिस्तथोन्मादस्तथा मरणमेवच ॥ त्रासश्चैव वितर्कश्च विज्ञेया व्यभिचारिणः। त्रयस्त्रिंशदमी भावाः समाख्यातास्तु नामतः ॥

भरत नाट्यशास्त्र अ. ६. श्लोक १९, २०, २१, २२।

अमर्ष (Intolerence), अविहत्थ (Inhibition), उग्रता (Fierceness), मति (Belief) व्याधि (Disease), उन्माद (Mania), मरण (Death), त्रास Fright), वितर्क (Guessing),* नौ स्थायीभाव और तेंतीस संचारीभावोंके अतिरिक्त आठ सात्त्विक भावोंका भी वर्णन भरत मुनिने किया है। सात्त्विकभाव सात्त्विक इसलिये कहे जाते हैं कि इनके प्रदर्शनमें मनको खूब प्रयत्न करना पड़ता है। उदाहरणके तौरपर स्तंभ (जड़ता) स्वेद; रोमाञ्च, स्वरभंग, वेपथु (Tremors) अश्रुपात और बेहोश हो जाना। इन भावोंके

---

* पाश्चात्य मानसशास्त्रियोंने निम्नतालिका दी है, जिसको तुलनाके लिये यहाँ उद्धृत किया है।—

Pleasure, happiness, joy, delight, elation, rapture.
Displeasure, discontent, grief, sadness, sorrow, dejection.
Mirth, amusement, rilarity.
Excitement, agitation.

Calm, Contentment, numbness, apathy, weariness, ennui, expectancy, eagerness, hope, assurance, courage, terrorhorror,

Doubt, shyness, embarassment, anxiety, worry, dread, fear, fright,

Surprise, amazement, wonder, relief, disappointment,
Desire, appetite, longing, yearning, love,
Aversion, disgust, loathing, hate,

Anger, resentment, indignation, sullenness, rage, fury.

Woodworth—Psychology

अभिनयमें मानसिक भावोंका शरीरके अंग-उपांगपर होनेवाले प्रभाव नटको प्रेक्षकोंके सामने दिखाने पड़ते हैं* नाट्य शास्त्रमें रसकी निष्पत्तिके विषयमें निम्न सूत्र है—"विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्रस निष्पत्तिः।" इस सूत्रकी विवेचना के प्रसंगसे रस निष्पत्ति समझानेवाले विभिन्न मत हैं। रसकी संख्याके विषयमें भी मतभेद रहा है। शुरूमें उनकी संख्या आठ थी। इसमें शान्त रसके योगसे नौ रस हुए हैं। परन्तु उत्तरकालीन विभिन्न लेखकोंने तो रस दस हैं, तेरह हैं, और कुछ ने तो प्रत्येक व्यभिचारीभाव रसमें परिणत हो सकता है ऐसा मत व्यक्त किया है।

नाट्य शास्त्रकी इस चर्चासे हमको तो सिर्फ उतना ही प्रयोजन है जितने अंशमें यह भावनाओं (Feelings) और आवेगों (Emotions) का स्वरूप उनके कारण और उनके शरीरपर होनेवाले प्रभावोंको समझनेमें हमको सहायभूत होता है।

अब हम पुनः भावना प्रधान व्यापारोंकी चर्चा प्रारम्भ करते हुए भावनाओं और आवेगोंके स्वरूपको देखते हैं।

भावना—भावना किंवा मनोभाव (Feeling) का अर्थ है अपने प्रत्येक अनुभवके साथ हमको जो विशेष प्रकारकी संवेदना किंवा प्रभाव (Effect) होता है उसे भावना कहते हैं। हमारे मनमें

---

* स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभेदोऽथवेपथुः।
वैवर्ण्यम श्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्त्विका मताः॥ भ. नाट्य. ७-१४८

जो कई प्रकारके संस्कार उत्पन्न होते हैं उनके साथ ही मनपर विशेष प्रकारके प्रभाव भी उत्पन्न होते हैं। समुद्र या तालावमें जैसे तरंगें उत्पन्न होती हैं उसी प्रकार चित्त-सरोवरमें उत्पन्न होनेवाली छोटी-बड़ी तरङ्गें आलंकारिक भाषामें भावनाके नामसे प्रसिद्ध हैं। भावनाओंके इतने प्रकार हैं कि भाषा उनका पूरा पूरा वर्णन नहीं कर सकती*। इनके दो स्थूल विभाग हैं—सुख और दुःख ; क्योंकि प्रत्येक अनुभवके साथ हमको सुख या दुःख होता है अर्थात् सुखात्मक किंवा दुःखात्मक भाव होता है। सुखात्मक भाव एवं दुःखात्मक भाव भी विविध प्रकारके होते हैं। यद्यपि ये सब समान रूपमें सुख या दुःख दायक नहीं होते, उदाहरणके तौरपर हर्ष, आनन्द, विनोद आदि भाव समान रूपमें सुख नहीं उत्पन्न करते।

भगवान प्रशस्तपादके मतके अनुसार सुख या दुःखके भाव, आत्मा और मनका संयोग होनेपर इन्द्रियों और अर्थोंके सन्नि-

* अनुग्रहलक्षणं सुखम्। स्रगाद्यभिप्रेतविषयसान्निध्ये सतीष्टोपलब्धीन्द्रियार्थसन्निकर्षाद्धर्माद्यपेक्षादात्ममनसोः संयोगादनुग्रहाभिस्वङ्गानयनादिप्रसादजनकमुत्पद्यते तत् सुखम्। अतीतेषु विषयेषु स्मृतिजम्। अनागतेषु संकल्पजम्। यत्तु विदुषामसत्सु विषयानुस्मरणेच्छा सङ्कल्पेष्वाविर्भवति, तद्विद्याशमसन्तोषधर्मनिमित्तमिति। उपघातलक्षणं दुःखम्। विषाद्यनभिप्रेतविषयसान्निध्ये सत्यनिष्टोपलब्धीन्द्रियार्थसन्निकर्षादधर्माद्यपेक्षादात्ममनसोः संयोगाद्यदमर्षोपघातदैन्यनिमित्तमुत्पद्यते तद्दुःखम्। अतीतेषु सर्पव्याघ्रचौरादिषु स्मृतिजम् अनागतेषु सङ्कल्पजमिति। प्र. पा. गुणग्रन्थ

कर्षसे उत्पन्न होते हैं। इन्द्रियां—चक्षु, जिह्वा, कान आदि—और अर्थोंके सन्निकर्षके कारण उत्पन्न होनेवाले भावोंको आधुनिक मानस शास्त्री सेन्सरी फीलिंग्ज् (Sensory feelings) कहते हैं। परन्तु संकल्प एवं स्मृति व्यापार द्वारा भी भाव उत्पन्न होते हैं जो आइडीयल फीलिंग्ज् (Indial felings) नामसे प्रसिद्ध है ; अर्थात् इन्द्रियों और अर्थोंके अभावमें केवल विचारोंसे भी भाव उत्पन्न होते हैं। जब इन्द्रियोंके सामने अर्थ आते हैं तब इनसे सुख उत्पन्न होगा या दुःख इसका आधार प्रत्येक मनुष्यके—विषयी (Subjct) मनपर होता है। यदि अर्थ अभिप्रेत किंवा अभीप्सित होता है तो उससे सुख उत्पन्न होता है और अनभिप्रेत होता है तो उससे दुःख उत्पन्न होता है। इसीलिये अभिप्रेत अर्थको प्राप्त करनेकी किंवा अनभिप्रेतको छोड़ देनेकी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है *।

उचित ही कहा है कि—

न रम्यं नारम्यं प्रकृतिगुणतो वस्तु किमपि।
प्रियत्वं तत्रस्यादितरदपि तद्ग्राहकवशात्॥ †

---

* प्रमाणेन खल्वयं ज्ञाता, अर्थमुपलभ्य तमर्थमभीप्सति जिहासति वा। तस्येप्सा जिहासा प्रयुक्तस्य समीहा प्रवृत्तिरित्युच्यते। सामर्थ्यं पुनरस्याः फलेनाभिसम्बन्धः। न्यायसूत्र भाष्य १-१-१

† The particular phenomenon is by itself, neither pleasent nor unpleasent, but because the desire to see it happen is present in the partisans of one team,and just the

काई भी वस्तु स्वतः न रम्य है न अरम्य, किन्तु ग्राहक (भोक्ता) के अनुसार वह प्रिय किंवा अप्रिय हो जाती है। 'अनुग्रह' और उपघात इन दो शब्दोंसे सुख और दुःखके भावोंका प्रभाव भली प्रकार व्यक्त होता है। सुखात्मक भावोंसे मन और शरीर दोनोंका कल्याण-पुष्टि-अभिवर्धन होता है और दुःखात्मक भावोंका प्रभाव मन और शरीर दोनोंके लिये सख्त हानिकारक होता है। मानसिक रोगोंकी उत्पत्तिमें मनके आघात किंवा उपधातका बहुत बड़ा हिस्सा होता है यह हम आगे चलकर देखेंगे।

भावनाओं का प्रादुर्भाव भी आत्मा और मनका संयोग होने पर इन्द्रियार्थ संयोग द्वारा किंवा स्मृति-संकल्प-आदि चित्त वृत्तियों द्वारा होता है। इतना जानलेने के बाद प्रश्न होगा कि आत्मा मन, इन्द्रयों और अर्थों के संयोग होनेपर प्रत्यक्ष ज्ञान होता है और केवल आत्मा और मनका संयोग होनेपर मानस प्रत्यक्ष ज्ञान भी होता है तब फिर भावना व्यापार (Feeling) ज्ञान व्यापार (Knowing) से कैसे भिन्न होता है। इसका उत्तर यह है कि

---

opposite desire in the partisans of the other, therefore the pleasure or displeasure occurs. xxx But the pleasure in getting what is desired is a natural reaction. Human nature is such that we are pleased when we obtain anything we happen to want.

Woodworth—Psychology Chap. XII

दोनोंमें भेद होना ही चाहिये क्योंकि किसी वस्तुका-पदार्थका-ज्ञान होना और उसके विषयमें भाव उत्पन्न होना ये दोनों व्यापार भिन्न हैं। किसी मधुर स्वरको सुननेपर, किसी मधुर दृश्यको देखनेपर या सुन्दर साहित्य पढ़कर-आनंद-सुख होता है। इसी प्रकार मित्रों की मृत्यु, सम्पत्तिका नाश इत्यादि घटनाओंसे शोक-खेद-इत्यादि दुःखात्मक भाव उत्पन्न होते हैं; परन्तु बार-बार इस प्रकारकी घटनाओं के घटने पर इनका ज्ञान तो हमको होता है फिर भी एक सा शोक या हर्ष नहीं होता, मानो इस प्रकारकी घटनाओंके हम अभ्यस्त हो जाते हैं। ऐसे कठोर हृदयके हो जाते हैं कि बार-बार होनेवाली इन तरह की घटनाओं से हमारे मनपर कुछ भी प्रभाव भाव-नहीं होते यद्यपि इन घटनाओं का हमें ज्ञान तो होता है। अर्थात् मनमें ज्ञानके संस्कार तो उत्पन्न होते हैं फिर भी किसी प्रकार की संवेदना (भाव) नहीं उत्पन्न होती। अलबत्ता इतना अवश्य सच है कि ज्ञान व्यापार और भावना व्यापार इतनी तेजी से उत्पन्न होते हैं कि हमको ये अलग माल्रूम नहीं होते, फिर भी दोनों भिन्न प्रकार के होने पर भी अविभाज्य माल्रूम होते हैं।

इसी प्रकार भावना व्यापार, चेष्टा व्यापारसे भी भिन्न होता है। क्यों कि चेष्टा-प्रयत्न-प्रवृत्ति में और ज्ञान व्यापार में हमारा मन बाह्य विषयों किंवा अर्थोंके साथ सम्पर्क में आता है; और भावना व्यापार किंवा भावों का प्रादुर्भाव केवल हमारे मनको आन्तरिक घटना-विषयीगत घटना है। हमारे मनमें बहुतसे भाव उत्पन्न होते हैं परन्तु उनको हम ही स्वयं जान सकते हैं और वाणी

किंवा शारीरिक चेष्टाओं द्वारा दूसरोंको बता सकते हैं। हमारे पास वाले मनुष्य हमारे भावोंको-सुख-दुःखके भावोंको-नहीं जान सकते। एवं जिनको विशिष्ट प्रकारके भावोंका कभी भी अनुभव ही न हुआ हो उनको हम अपने भाव या उनसे होने वाले सुख-दुःख का ज्ञान नहीं करा सकते। उदाहरणतया राजकर्त्ता प्रजाको गुलाम प्रजाके भावों का ज्ञान कैसे हो सकता है। दासत्व या नौकरी कितनी कठिन वस्तु है इसका सेठ को कैसे ज्ञान कराया जाय ? और वन्ध्या स्त्री मातृप्रेम भी कैसे समझ सके ? कभी भावों का दल बहुत अधिक होता है और कभी नहींके समान होता है। समुद्रमें कभी प्रचंड तरंगें उठती हैं और कभी हल्की सी तरंगें भी देखनेमें आती हैं। इसी प्रकार मानस समुद्रकी तरंगें भावनाएँ भी उग्रया मृदु स्वरूप धारण कर सकती हैं।

भावोंके प्रभावके अनुसार हमने उनके सुखात्मक और दुःखात्मक दो भेद किये है। परन्तु उनके प्राबल्यके अनुसार अन्य भी दो भेद किये जा सकते हैं। यथा सामान्यभाव किंवा भावनाएं (Feelings) और गुंफित भाव किंवा आवेग (Emotions)। इनके स्वरूपके विषयमें विचार करनेसे माल्रूम होता है कि सामन्य भाव और आवेगमें केवल अंशोंका अन्तर है, जातिका नहीं। क्योंकि भावों-भावनाओंके अधिक प्रबल और गुंफित हो जानेपर वे आवेगों किंवा वेगोंका स्वरूप धारण कर लेती हैं; जैसे तूफानके समय छोटी तरङ्गोंकी जगह बड़ी तरंगें उछलने लगती हैं। अन्य शब्दोंमें कहा जाय तो प्रबल भावनाएँ ही आवेग किंवा वेग हैं।

आवेगोंमें केवल मन ही नहीं किन्तु शरीर भी एक प्रकारके ...गका अनुभव करता है। सामान्य भावोंका शरीरपर प्रभाव नहीं ...ैसा होता है और वे प्रायः मनमें उत्पन्न होनेवाले एक दो संस्कारों ...के द्वारा उत्पन्न होते हैं। परन्तु आवेगोंका शरीरपर, इसकी मांस ...पेशियोंपर एवं निःस्रोत ग्रन्थियोंपर (Duectless glands) ...बहुत प्रबल प्रभाव होता है। वे (Emotions आवेग) प्रायः ...मनमें उत्पन्न होनेवाले विविध संस्कारोंके संयुक्त प्रभाव ...द्वारा उत्पन्न होते हैं। इसीलिये भावनाका स्वरूप सरल और ...आवेगोंका स्वरूप गुम्फित मालूम होता है। यदि हम क्रोधसे लाल ...होनेवाले मुख, शोकके अश्रु, हास्यका गुंजन और शृङ्गारकी चाटू-...क्तियोंको याद करें तो क्रोध, शोक, हास्य किंवा कामके वेगोंके ...शरीरपर होनेवाले प्रभावोंको शीघ्र समझ सकेंगे। ये आवेग भी ...कई प्रकारके होते हैं; इनका पृथक्करण भी कठिन होता है क्योंकि ...कभी एकसे अधिक आवेग भी संयुक्त हो जाते हैं। सामान्य ...व्यवहारमें दूसरे मनुष्यके आवेगको वह किन कारणों (विभावों) से उत्पन्न हुआ है और उस मनुष्यकी शारीरिक ...अवस्थामें चेष्टाओंमें कैसा परिवर्तन (अनुभाव) हुआ है, इसको देख...कर जान सकते हैं। आवेग भी इन्द्रियार्थ-सन्निकर्ष द्वारा या स्मृति ...किंवा संकल्प द्वारा उत्पन्न होते हैं। वे ज्ञान व्यापारके बाद और ...चेष्टा व्यापारके पूर्व उत्पन्न होते हैं। दूसरे शब्दोंमें कहा जाय ...तो आवेगों किंवा वेगोंकी उत्पत्ति विशिष्ट प्रकारकी चेष्टाओंकी पूर्वा-...वस्थाको सूचित करती है। आवेगके कारण मनुष्य अपने संस्कार

और परिस्थितिके अनुरूप कुछ न कुछ करता ही है। फिर एक प्रबल आवेगके साथ अन्य सामान्य भावनाएँ (सञ्चारीभाव) भी उत्पन्न होती हैं। इन सबका शरीरपर चित्र-विचित्र प्रभाव होता है।

आवेगोंके शररीपर होनेवाले प्रभावके विषयमें आजकल पर्याप्त ज्ञान उपलब्ध हुआ है, जिसका सार इस प्रकार है। सामान्य निरीक्षक भी इतना तो जानतें ही हैं कि उत्तेजना, क्रोध, भय, शोक, काम आदिके आवेगोंका शरीरपर प्रत्यक्ष प्रभाव उत्पन्न होता है। आवेगोंका प्रभाव शरीरके भीतरी एवं वाह्य अवयवोंपर 'खास करके हृदयपर' प्रत्यक्ष दिखाई देता है। कदाचित् इस सर्व-सुलभ और सर्वमान्य निरीक्षणके कारण ही हृदयको चेतना स्थान (Site of consciousness) माना होगा। किन्तु हृदयके अतिरिक्त और भी बहुतसे अवयवोंपर आवेगोंका प्रभाव होता है, उदाहरणतया, विभिन्न आवेगोंके आँखपर, स्वरयन्त्र (Larynx) पर, श्वासोच्छ्वासपर, हृदय और रक्त-वाहिनियां (Blood vessels) पर, सम्पूर्ण महास्रोत (Alimentary canal) पर, मूत्र वह संस्थानपर, स्वेद ग्रन्थियों, त्वचा और रोम पर, प्रजनन संस्थानपर और मांस पेशियोंपर विविध प्रभाव होते हैं।

ये प्रभाव मुख्यतया स्वतंत्र नाड़ी मण्डलके तन्तुओं (Fibres of Autonomic nervous system) और स्रोतोहीन ग्रन्थियोंके स्रावोंके कारण उत्पन्न होते हैं, ऐसा निरीक्षकोंका

सप्रमाण मत है*। स्वतन्त्रमण्डलके तन्तु भी मस्तिष्क (Brain) और सुषुम्णाकाण्ड (Spinal cord) से उत्पन्न होते हैं और विभिन्न आशय, रोम, और ग्रन्थियों आदिमें जाते हैं। इस विषयका विस्तार अन्यत्र किया जायगा। इस स्वतन्त्र नाड़ी मण्डल का नियमन करनेवाला केन्द्र (centre) मस्तिष्कमें आज्ञाकन्दों के नीचे स्थित प्रदेश (Hypothalamic region) में रहता है जिसका प्रभाव सारे स्वतन्त्र नाड़ी मण्डलपर होता है। इसके साथ ही मस्तिष्कमें स्थित अन्य केन्द्रोंका प्रभाव इस केन्द्र द्वारा स्वतन्त्र नाड़ी मण्डलपर होता है। अर्थात् स्वतन्त्र नाड़ी मण्डलके व्यापार भी अप्रत्यक्षतया मस्तिष्कके अंकुशमें हैं। साथ ही स्रोतो-हीन ग्रन्थियोंके स्रावोंका प्रभाव भी स्वतन्त्र नाड़ी मण्डलपर होता है। उदाहरणतया एड्रीनलीन (Adrenaline) का प्रभाव हृदय पर होता है और वृषण किंवा बीजकोष (ovary) के अन्तः स्रावोंका प्रभाव काम वृत्ति (Sex Impulse) पर होता है। शरीर व्यापार विज्ञानके कुछ निष्णात इस मतके भी हैं कि सब प्रकारके भावोंकी उत्पत्तिके लिये ये स्रोतोहीन ग्रन्थियोंके अन्तः-स्राव और स्वतन्त्र नाड़ी मण्डलके तन्तु जिम्मेवार हैं। भावोंकी उत्पत्ति कोई स्वतन्त्र मनोव्यापार है, ऐसा माननेकी आवश्यकता नहीं है। इससे आजकल एक नया विवाद खड़ा हो गया है कि शारीरिक परिवर्तनोंके कारण मानसिक भावोंकी उत्पत्ति होती है

* विशेष विवरणके लिये परिशिष्ट देखो।

या मनोभावों-भय, क्रोध, शोक, इत्यादि-के कारण शारीरिक परिवर्तन होते हैं ? कहनेकी शायद ही आवश्यकता होगी कि अधिकतर मानस विज्ञान-शास्त्री मनोभावोंके कारण शारीरिक परिवर्तन होते हैं इस मतके अनुयायी हैं*।

फिरसे हम नाट्य शास्त्रकी ओर आते हैं। प्रेक्षकोंके मनमें नौ रसोंका आस्वादन करानेके लिये नटोंको किस प्रकारके अभिनय करनेचाहिए और विभिन्न सञ्चारी भावों किंवा क्षणिक भावोंको दिखानेके लिये किस प्रकारका अभिनय करना चाहिए इत्यादिके विषयमें नाट्य-शास्त्रमें सूचनायें दी गयीं हैं। उसी स्थानपर भावों किंवा भावनाओंके शरीरपर होनेवाले प्रभावों किंवा उनसे होने वाली चेष्टाओं—बर्ताव—का मनोरम वर्णन है। जिज्ञासुओंको यह सब मूल ग्रन्थमें देखना चाहिये। यहाँ तो उदाहरणके लिये थोड़ेसे भावोंका वर्णन देते हैं जो आधुनिक मानस शास्त्रके ग्रन्थोंमें दिये हुए वर्णनसे बिलकुल मिलता जुलता है।

क्रोध—(Anger)—इसकी चर्चा करते हुए इसके कारण (विभाव), इसके शरीरपर होनेवाले प्रभाव, जो नटको अभिनय द्वारा व्यक्त करने होते हैं (अनुभाव), और क्रोधांध मनुष्यकी चेष्टाओं (Behaviour) का मानस शास्त्रके अनुकूल वर्णन दिया है।

क्रोधके कारण—किन-किन परिस्थितियों में मनुष्य गुस्से में आ जाता है, इस विषय की चर्चा करते हुए कहते हैं कि क्रोध

* देखो—James—Large Theory of the Emotions.

प्रायः राक्षस, दानव, और उद्धत मनुष्यों में देखा जाता है और वह युद्ध का कारण होता है। स्त्रियों का अपमान, देशजाति, संबधी लोग, विद्या और कर्मकी निन्दा, अपमान, असत्य भाषण, उपघात, अपशब्द, द्रोह, मात्सर्य आदि कारणोंसे मनुष्यमें तीव्र क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध के कारण उसकी आँखें लाल हो जाती हैं, शरीर से पसीना छूटता है, आँखें चौड़ी होने के कारण उसकी त्यौंरियाँ ऊपर को खिंच कर मिल जाती हैं। और मानो शत्रु पर शीघ्र ही टूट पड़ेगा इस प्रकारका उसका देखाव हो जाता है। वह दाँत और ओठ पीसता है, उसकी कनपटी बार-बार सिकुड़ती है और वह हथेलियोंको रगड़ता है। यह सारा देखाव उसकी शत्रुके ऊपर आक्रमण करनेको तैयारीका सूचक है। इसके कारण वह हाथोंसे दूसरोंको पीटे, चीरकर दो टुकड़े कर दे, दबाये, काट डाले, लाठी चलाये, खींचे, शस्त्रोंसे चारों ओर से कहीं भी घाव करे और खून भी बहाये ; ये इसी प्रकारके अन्य कर्म कर सकता है। क्रोधसे विवश हुए मनुष्यमें ये कार्य देखे जाते हैं। यह उसकी चेष्टाओंकी बात हुई। इसके मनमें क्रोधके साथ और भी कुछ क्षणिक भाव (संचारी भाव) उत्पन्न होते हैं। जैसे हृदयमें क्रोधकी आग जलती रहनेके कारण उसकी नींद चली जाती है, शत्रुको पराजित करने या उसको मार डालनेका उसका उत्साह इतना बढ़ जाता है कि वह उग्र हो जाता है, आवेशमें आ जाता है, शत्रु द्वारा किये गये अप-मानको नहीं सह सकता और उसका चित्त काफी चपल और

अस्थिर हो जाता है। गर्वसे आँख चढ़ाकर शत्रुका प्रतीकार करने के लिये कटिबद्ध होकर मैदानमें खड़ा हो जाता है। परन्तु इतने भयंकर क्रोधके बाद भी जब वह अपने उद्देश्यको सिद्ध नहीं कर सकता तब क्रोधसे वह काँपता है, उसके रोंवे खड़े हो जाते हैं, शरीरसे पसीना छूटता है और निराशासे मानो एक प्रकारके दैन्यका अनुभव करता हो इस तरह उसका कंठ गद्गद हो जाता है। निष्फल क्रोधकी यह एक दशा है। क्रोधके कारण शत्रुके पराजित करनेके लिये चले हुए और इस ध्येयको सिद्ध करनेमें असफल हुए—इन दोनों प्रकारके मनुष्योंके भावोंका यहाँ शब्द-चित्र दिया है*।

इसी प्रकार शोक (Sorrow) के प्रभावको देखें। इसके कारण सामान्यतया प्रसिद्ध हैं। इसके प्रभावसे मनुष्य रोता है अपने आपको या तकदीरको धिक्कारता है। उसका मुख सूख जाता है वह पाण्डुवर्ण हो जाता है, उसके गात्र शिथिल हो जाते

---

* स च क्रोधाधर्षणाधिक्षेपावमानानृतवचनोपघातवाक्पारुष्याभिद्रोह मात्सर्यादिभिर्विभावैरुत्पद्यते। तस्य च ताडनपाटनपीडनच्छेदनप्रहरणा-हरणशस्त्रसम्पात सम्प्रहाररुधिराकर्षणाद्यानि कर्माणि। पुनश्च रक्तनयन-(स्वेद) भ्रुकुटिकरणावष्टम्भदन्तोष्टपीडनगण्डस्फुरणहस्ताग्रनिष्पेषादिभिरनुभावै-रभिनयः प्रयोक्तव्यः।

व्यभिचारिणश्चास्य संम्मोहोत्साहावेगामर्षचपलतौग्र्यगर्व (विकृतेक्षण)-स्वेदवेपथुरोमाञ्चगद्गदादयः॥ भरत. ना. शा. अ. ६

है; वह बार-बार निःश्वास छोड़ता है। उसकी स्मृति कम हो जाती है या नष्ट हो जाती है, परन्तु उसके मनमें शोकके साथ ही अन्य भाव भी उत्पन्न होते हैं। यथा शोकाकुल मनुष्यका चित्त निर्वेद, ग्लानि, और चिन्तासे व्याप्त हो जाता है। इस खेदके कारण बने ही रहेंगे या उसकी परिस्थिति किसी दिन सुधरेगी इस बातको जाननेके लिये वह सदैव उत्सुक रहता है। दैन्य और विषादका अनुभव करते हुए भी वह कभी उत्तेजित हो जाता है कि उसको ही ये सब यातनायें क्यों सहन करनी चाहिए। इतनेमें अधिक आपत्तिका भय उपस्थित होता है और वह डर जाता है और संकटके साथके युद्धमें मानो वह थककर श्रमित हो जाता है। कुछ भी काम नहीं सूझता। इससे वह मूढ़, आलसी और जड़ हो जाता है। घोर संकटके कारण—स्वजनके नाश या आर्थिक आपत्तिके कारण—उसके मुखका रंग बदल जाता है। वह थर-थर कांपता और उसकी आंखोंसे आंसू बहने लगते हैं। बोलनेका प्रयत्न करनेपर भी उसका गला घुटा जाता हो ऐसा गद्गद् शब्द निकलता है। किन्तु इससे भी अधिक गंभीर दशा आ जाती है। युवा पुत्रकी मृत्यु किंवा सर्वनाशके समाचारसे मनुष्यके मनको सख्त आघात पहुंचनेपर उसको मृगी आने लगती है, वह पागल हो जाता है या अन्य रोगों—अतिसार, मधुमेह, निद्रानाश आदिका शिकार बन जाता है। कमजोर मनवाला मनुष्य इस परिस्थितिमें मूर्च्छा किंवा मृत्युका ग्रास बन जाता है।

अनुभवसे मालूम होता है कि इस वर्णनमें जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है। आधुनिक मानस शास्त्री चिन्ताके प्रभाव (Anxiety reaction) इस शीर्षकके नीचे इन सब चिह्नोंका वर्णन करते हैं। जब सरकारने रु० १०००) या इससे अधिक मूल्यकी नोटोंको बैंकको सुपुर्द करनेका हुक्म किया तब धननाशके कारण उपर्युक्त दशाका किसी-किसी मनुष्यको अनुभव हुआ था।*

इसी प्रकार शृङ्गार, हास्य इत्यादि रसोंके विभाग, स्थायीभाव अनुभाव एवं व्यभिचारी भावोंके वर्णनको पढ़नेसे मानव हृदयके विविध प्रकारके भावों किंवा भावनाओंके कारण एवं उनके मनुष्य-देह पर होनेवाले प्रभाव आसानीसे समझमें आ जायेंगे। मानसिक रोगोंमें होनेवाले इन भावनाप्रधान व्यापारोंमें होनेवाले परिवर्तनोंकी चर्चाको छोड़कर अब हम चेष्टा प्रधान व्यापारों (Conatvie Processes) का विचार करते हैं।

ये मानसिक व्यापार चेष्टा प्रधान कहे गये हैं क्योंकि इनमें मन किसी-न-किसी कार्यमें फँसा रहता है। पहले कहे गये ज्ञान प्रधान व्यापारोंमें इन्द्रियों द्वारा मनको बोध होता है जिसमें

---

* अथ करुणोनाम शोकस्थायिभाव प्रभवः। स च शापक्लेशविनिपतितेष्टजनविप्रयोगविभवनाशवधबन्धविद्रवोपघातव्यसनसंयोगादिभिर्विभावैः समुपजायते। तस्याश्रुपातपरिदेवनमुखशोषणवैवर्ण्यस्रस्तगात्रतानिःश्वासस्मृतिलोपादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः। व्यभिचारिणश्चास्य निर्वेदग्लानिचिन्तौत्सुक्यावेगभ्रममोहश्रमभयविषाददैन्यव्याधिजडतोन्मादापस्मारत्रासालस्यमरणस्तम्भवेपथुवैवर्ण्याश्रुस्वरभेदादयः। भरत. ना. शा. अ. ६

मनको स्वयं कुछ विशेष कार्य नहीं करना पड़ता जब कि भावना प्रधान व्यापारोंमें, अर्थ ग्रहणके परिणाम स्वरूप मनपर विविध प्रकारके प्रभाव होते हैं। फिर भी ये प्रभाव उसकी अपनी चेष्टाओंके फल नहीं हैं। परन्तु इन चेष्टा प्रधान व्यापारोंमें मनकी अपनी चेष्टा या शक्ति बिना प्रकट हुए नहीं रहती, क्योंकि विविध इन्द्रियार्थोंका ज्ञान और उससे उत्पन्न होनेवाले भाव मनको कार्य विशेषमें प्रवृत्त करते हैं। व्यवस्थिततया वक्तुं कर्तुं वा बुद्धि पूर्वकम्" अर्थात् इन्द्रियार्थ-विषय-ग्रहणके बाद हान, उपादान, आदि प्रवृत्तिका प्रारम्भ होता है। जिनसे सुख उत्पन्न हो ऐसी प्रवृत्तियोंमें राग और जिनसे दुःख उत्पन्न हो ऐसे व्यापारोंके प्रति द्वेष उत्पन्न होता है। पहले आत्माके लिङ्गकी गणना करते हुए भगवान चरक (च. शा. अ. १-७०-७२) प्राण, अपान, निमेष, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, प्रयत्न, बुद्धि, स्मृति आदिका जिक्र करते हैं। यहाँ जो इच्छा, द्वेष, प्रयत्न आदि गिनाये हैं उनका विशेष वर्णन देना इष्ट है।

भगवान प्रशस्तपादके मतके अनुसार प्रयत्नके भी दो भेद हैं। * १—जीवन पूर्वक और २—इच्छा द्वेष पूर्वक। प्रथम

---

* प्रयत्नः सरम्भ उत्साह इति पर्यायाः। स द्विविधः जीवनपूर्वकः इच्छाद्वेषपूर्वकश्च। तत्र जीवनपूर्वकः सुप्तस्य प्राणापानसंतानप्रेरकः प्रबोधकाले चान्तःकरणस्येन्द्रियान्तरप्राप्तिहेतुः। अस्य जीवनपूर्वकस्यात्ममनसोः संयोगाद् धर्मापेक्षादुत्पत्तिः। इतरस्तु हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थस्य व्यापारस्य हेतुः शरीर विधारकश्च। स चात्ममनसोः संयोगादिच्छापेक्षाद् द्वेषापेक्षाद्वोत्पद्यते॥

प्रशस्तपाद, गुणग्रन्थ

प्रकारके प्रयत्नसे जीवन (Life) के लिये उपयोगी व्यापार प्राणापान, रुधिराभिसरण, पाचन आदि चलते रहते हैं, जो आत्मा और मनके संयोग एवं धर्मपर निर्भर हैं। दूसरे प्रकारके प्रयत्नका कारण आत्मा और मनके संयोग एवं इच्छा-द्वेष हैं। इस दूसरे प्रकारके प्रयत्नसे शरीरका धारण होता रहता है क्योंकि मनुष्य अपने हितकर प्रयत्नोंको जारी रखता है और अहितकर प्रयत्नोंका परिहार करता है।

भगवान पतञ्जलिने चित्तके अपरिदृष्ट धर्मोंमें चेष्टा और शक्ति की गणना की है और उनको कार्यानुमेय कहा है जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आधुनिक मानस शास्त्रियोंके Intelligence (इन्टेलीजेन्स) और Will (विल) इन दोनों शब्दोंका अर्थ प्राचीनोंके बुद्धि शब्द में समाविष्ट हो जाता है। अर्थात् चेष्टा प्रधान व्यापारोंका अर्थ बुद्धिकी प्रवृत्तियाँ हैं। (देखो—चरक—ततः परं बुद्धिः प्रवर्तते) यहाँ मनकी प्रवृत्ति समाप्त होती है और बुद्धिकी प्रवृत्तिका प्रारंभ होता है। या यों कहो कि यहाँ मनके व्यापार बुद्धि व्यापार नामसे पहचाने जाते हैं, इसलिये मन बुद्धिके नामसे अभिहित होने लगता है।

मनमें उत्पन्न संस्कारों द्वारा, उनसे उत्पन्न होनेवाले सुख-दुःखात्मक भावोंके प्रभावसे, मन (बुद्धि) प्रवृत्तिशील हो जाता है और उसमें कुछ करनेकी इच्छा, किंवा अभिलाषा उत्पन्न होती है। या तो मन किसी पदार्थ विशेषके विषयमें अधिक विचार करने

लगता है या उस पदार्थको ग्रहण करने या छोड़ देनेकी प्रवृत्ति शुरू करता है। विविध प्रकारके आशय, अभिलाषायें, हेतु किंवा एषणायें (देखो—चरक. सू. स्था. तिस्त्रैषणीयाध्याय) उसको ऐसा करनेके लिये प्रवृत्त करती हैं जिसके फलस्वरूप या तो केवल मानसिक प्रयत्न किंवा व्यापार उत्पन्न होते हैं या मन और शरीर दोनोंके व्यापार उत्पन्न होते हैं। हम पहले देख चुके हैं कि इन्द्रियोंके विना मन अर्थग्रहण नहीं कर सकता और भावना प्रधान व्यापारों—शोक, क्रोध किंवा हर्ष—का प्रभाव शरीरपर हुए विना नहीं रहता। इसी प्रकार मानसिक प्रयत्नका प्रभाव भी शरीरपर होता है जिसके परिणाम स्वरूप देह व्यापार चेष्टावह नाड़ियों एवं कर्मेन्द्रियों द्वारा उत्पन्न होते हैं। जैसे नदीमें बाढ़ आनेपर वह तटपर फैल जाती है, उसी प्रकार मनकी प्रबल चेष्टाओंका प्रभाव इन्द्रियों एवं ज्ञान तन्तुओंपर—देह पर—होता है। अब हम इन व्यापारोंको विस्तारसे देखेंगे।

*ध्यान (Attention)—हमारे मनमें विभिन्न प्रकारके बहुतसे संस्कार उत्पन्न होते हैं और विविध विचार चलते हैं जिससे वह विभिन्न अवस्थाओं—क्षिप्त, विक्षिप्त, मूढ आदि--मेंसे गुजरता है। इन सबकी परवाह किये विना जब वह किसी एक ध्येय विशेषपर एकाग्र (Concentration) होता है तब इस

---

* तत्रप्रत्ययैकाग्रता ध्यानम् पातञ्जल योग सूत्र ३-२

व्या० भाष्य—तस्मिन् देशे ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययस्यैकतानतासदृशः प्रवाहः प्रत्ययान्तरेणापरिमृष्टो ध्यानम् ॥

मनोव्यापारको "ध्यान" कहा जाता है। इस समय दूसरे विचार गौण हो जाते हैं और प्रतीति प्रदेश (Area of Consciousness) में ध्येय वस्तु ही मुख्य स्थान जमाती है। ध्यानका वर्गीकरण—विभिन्न दृष्टियोंके अनुसार चार प्रकारसे ध्यानका वर्गीकरण हो सकता है। उदाहरणतः (१) बहिर्ध्यान (Sensorial attention) तथा अन्तर्ध्यान (Intellectual attention) बहिर्ध्यानमें हम इन्द्रियोंद्वारा बाह्य पदार्थोंकी—रोगीकी नाड़ी आदिकी—परीक्षा करते हैं; और अन्तर्ध्यानमें हम पहले संस्कारों को अपनी मानसिक सृष्टिमें केन्द्रित करके उसीके ऊपर लक्ष्य लगाते हैं। योगियोंका ध्यान इस प्रकारका है।

(२) प्रत्यक्ष (Immediate) ध्यान और परोक्ष ध्यान (Derived attention)। प्रथम प्रकारमें जिस चीजमें हमको रस, रुचि किंवा राग होता है उसके प्रति हमारा ध्यान तुरन्त आकर्षित होता है। इन्द्रधनुषके रँग, कोयलकी आवाज, किंवा सुन्दर प्राकृतिक दृश्य शीघ्र ही हमारे ध्यानको खींचते हैं। दूसरे प्रकारमें हमको ध्येयमें रस किंवा राग नहीं होता, किन्तु उसके सहयोगी पदार्थमें रस होता है जिसके कारण उस नीरस वस्तुके प्रति भी हम ध्यान देते हैं। उदाहरणतः, परीक्षामें अधिक अंक प्राप्त करनेके लिये विद्यार्थी शुष्क विषयोंको भी अधिक ध्यानसे पढ़ते हैं। वैद्य धनिक मनुष्योंके निर्धन संबंधियोंकी भी ध्यानसे चिकित्सा करते हैं।

(३) ऐच्छिक (Voluntary और अनैच्छिक (Non-

voluntary attention) ध्यान। प्रथम प्रकारमें हमें अमुक वस्तु पसंद हो या न हो फिर भी हम उसकी ओर ध्यान देते हैं। दूसरे प्रकारमें हमारी इच्छा न होनेपर भी वह वस्तु जबर्दस्ती हमारा ध्यान खींचती है। उदाहरणतः, परीक्षामें पास होने के लिये विद्यार्थी अप्रिय ग्रन्थ भी ध्यान देकर पढ़ते हैं और रस-प्रद उपन्यासोंको एक झटकेमें समाप्त कर देते हैं। बन्दूक छूटनेकी आवाज या मधुर संगीत हम न चाहें तो भी हमारे ध्यान को जबर्दस्ती खींच लेते हैं।

(४) संयोजक (Synthetic) ध्यान एवं वियोजक ध्यान (Analytic attention । प्रथम प्रकारमें हम विभिन्न चीजों या घटनाओंको लक्ष्यमें रखकर एक सम्पूर्ण चीज या घटना बना लेते हैं। उदाहरणतः रोगीका वृत्तान्त और विभिन्न समयपर कौन-कौनसे लक्षण उत्पन्न हुए सुनकर हम रोग-विनिश्चय करते हैं। दूसरे प्रकारमें हम एक वस्तुकी ओर ध्यान न देकर उसके अवयवोंकी ओर ध्यान देते हैं। यथा—द्रव्यगुण शास्त्रमें वर्णित किसी वृक्ष विशेषके मूल, छाल, पत्र, फल आदिके गुण-दोषोंकी ओर ध्यान देते हैं। प्रथम प्रकारका ध्यान अनुव्यवसाय व्यापार (Apperception) का सहायक होता है।

एक समयमें हम एक ही वस्तुकी ओर ध्यान दे सकते हैं, इस परिस्थितिको ख्यालमें रखकर ही नैयायिकोंने मनका लक्षण ध्यान-व्यापारको लक्ष्यमें रखते हुए बनाया है। (युगपद्ज्ञानानुत्पत्ति-र्मनसो लिङ्गम्) मनके सब व्यापारोंमें इस व्यापारका स्थान

महत्त्वका है ; क्योंकि जो मनुष्य जितनी एकाग्रता सिद्ध कर सकता है उनका मन उतना ही अधिक प्रबल माना जाता है। शतावधान या सहस्रावधानमें भी वस्तुएँ एकके बाद दूसरी इस प्रकार क्रमशः ध्यानमें आती हैं न कि एक साथ। इन अवधान के प्रयोगोंसे ऐसे पुरुषोंकी मानसिक शक्ति बहुत अधिक होती है यह सिद्ध होता है। ध्यान प्रणिधान-स्मरण-व्यापारको भी पुष्ट करता है यह हम पहले देख चुके हैं। योगकी प्रक्रियाओंमें धारणा, ध्यान और समाधिका स्थान बहुत महत्त्वका है। उन्हीं ग्रन्थोंमें ध्यानके पोषक बलोंके रूपमें—यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, प्राणायाम आदिका निर्देश किया है, जिनको जिज्ञासु वहीं देख लें।

अब चेष्टा प्रधान मानसिक व्यापारोंका देहपर प्रभाव होनेपर जो शरीर-व्यापार होते हैं उनको (Motor action) देखें। इन व्यापारोंके दो विभाग कर सकते हैं:—

(१) ऐच्छिक व्यापार (Voluntary action), और

(२) अनैच्छिक व्यापार (Non-voluntary action)।

प्रथम विभागमें हमारे शरीरके सब इच्छाजन्य व्यापारों—खाना, पीना, दौड़ना, ग्रहण करना इत्यादि––का समावेश होता है।

दूसरे विभागमें तीन प्रकारके देह-व्यापारोंका समावेश होता है।

स्वयंभू व्यापार (Automatic action)—साधारण परिस्थितिमें ये व्यापार हमारी इच्छाशक्तिके नियन्त्रणके विना

अपने आप चलते रहते हैं। हम हृदय-स्पन्दन, प्राण-अपान आदिको, अपनी इच्छाका इनपर थोड़ा-बहुत प्रभाव होते हुए भी, सर्वथा बंद नहीं कर सकते। प्राचीनों द्वारा उद्दिष्ट जीवनपूर्वक व्यापार ये हैं और जीवनको स्थायी रखनेमें सहायक होते हैं, इसलिये इनको आत्मलिङ्ग माना है, यह यथार्थ ही है।

परावर्तित व्यापार (Reflex action)—ये व्यापार भी इच्छाद्वेषमूलक नहीं होते किन्तु उपरिनिर्दिष्ट स्वयंभू व्यापारोंसे अधिक समानता रखते हैं। ये सर्वदा नहीं चलते रहते और संज्ञावह नाड़ियोंके प्रान्तपर बाह्य उत्तेजनाओंके हुए विना नहीं उत्पन्न होते। इनके उदाहरण अँधेरेमें आँखकी पुतलीका फैलना, प्रकाशमें संकुचित होना, प्रिय भोजन देखनेपर मुखमें पानी आना इत्यादि गिनाये जा सकते हैं।

जन्मके बाद हमारे शरीरमें और प्राणियोंमें कुछ नये परावर्तन व्यापार स्थापित होते हैं जिनको सापेक्ष परावर्तन व्यापार (Conditioned refexes) कहते हैं। ये व्यापार आनुवंशिक नहीं होते। इनमें मस्तिष्क अवश्य काममें आता है।

सहजवृत्तिजन्य व्यापार (Instinctive actions)—मनुष्यों एवं प्राणियोंमें कुछ सहज वृत्तियाँ (Instincts) होती हैं, जो परंपरासे चली आती हैं। इनके कारण कोई प्राणिविशेष विशेष परिस्थितिमें विशेष प्रकारसे ही रहता है। उदाहरणतः, आत्म संरक्षण वृत्ति (Instinct of self-preservation) और काम वृत्ति (Sex instinct) आदि। आधुनिक मानस

शास्त्री चौदह या पन्द्रह सहज वृत्तियोंको गिनाते हैं। पशुओंमें सहज वृत्तिजन्य व्यापार अधिक दिखाई देते हैं, ऐसा वे कहते हैं। प्राचीनोंने सहजवृत्तियोंको अलग न मानकर, संस्कारोंको ही मुख्य कारण कह कर वर्णन किया है। उदाहरणतः सद्योजात बालकके स्तन पानको आधुनिक मानस-शास्त्री सहज वृत्ति, आत्म संरक्षण किंवा जिजीविषाके कारण मानते हैं और प्राचीन दार्शनिक इसको पूर्व जन्मके संस्कारका लक्षण मानते हैं।

तीन प्रकारके मनोव्यापारका संक्षिप्त वर्णन यहाँ समाप्त होता है। एकबार फिर कह दें कि मन इस वेगसे काम करता है कि विषयकी सरलताके लिये अलग-अलग वर्णित ये सब व्यापार एक दूसरेमें ओत-प्रोत हो जाते हैं और तीन गुण मिलकर जैसे सम्पूर्ण सृष्टिकी रचना करते हैं वैसे ये तीन प्रकारके व्यापार परस्पर मिलकर मानस सृष्टिकी रचना करते हैं। वे कभी एक दूसरेकी सहायता करते हैं तो कभी एक दूसरेको दबा भी देते हैं। मानसिक रोगोंमें इन व्यापारोंमें क्षतियाँ मालूम होती हैं जिनका वर्णन आगे आयेगा*।

---

* I have tried to present a picture of the mind not as a bundle of mental units known as faculties, but as a dynamic everchanging force, the activity of which conforms to a number of fairly welldefined types of behaviour. According as one type or another is most prominent, we say that one or other of our so-called faculties, instinct or reason, as the case may be, is functioning. But in point of fact, the whole mind is present in each of its

activities, and all its so-called faculties are comprised in each.

This way of regarding mind is now accepted in the main by most psychologists. One of the oldest traditons in Psychology, to which almost all the psychologists have subscribed, is to distinguish in any given state-consciousness three aspects of the state known respectively as the cognitive, affective and conative aspects (knowing, feeling and striving). Nearly every experience, it is agreed, presents these three irreducible aspects. It is first of all a knowing or a thinking about something; secondly it is a feeling about the same thing, whether pleasantly or unpleasantly; and thirdly it is a striving to-wards or away from the same thing.

In any given experience any one of these aspects may be more or less prominent, but each is always present to some extent, even if in extreme cases, e.g, in that of the mathematician doing a problem, one of the aspects, in this case the affective, may be almost negligible. It follows and this is the conclusion we wish to emphasize—that there are no purely cognitive, affective or conative experiences. The aspects we have distinguished in mind are like waves on the sea; they are continually changing their from, they merge one into another, and they have no separate existance either from one another or from the sea which owns them. Yet just as, however smooth the sea, there always are waves, however slight, which can be distinguished in though not separated from its movement, so in experience, we can always distinguish aspects in which the mind as a whole is at any one moment expressed. (Joad—Modern Scientific Thought—III)

सातवाँ अध्याय

मनोभेदविज्ञान

मनके व्यापारोंकी चर्चा समाप्त करके अब फिर हम मनक एक अन्य दृष्टिकोणसे विचार करते हैं।

शरीरके विकास क्रम और उसके दिखाई देनेवाले विभिन्न भेदोंको हम प्रत्यक्षतया जानते हैं। उदाहरणतया माता-पिता शोणित और शुक्रमें स्थित स्त्री-बीज और पुरुष-बीजका संयोग होनेपर एक सूक्ष्म फलित बीजकोष (Fertilised Ovum or Zygote) गर्भाशयमें रहता है जिससे विकास क्रमके आधारपर बच्चा उत्पन्न होता है। उसका शरीर प्रति दिन बढ़ता रहता है अन्तमें वह मृत्युका ग्रास बन जाता है। गर्भावक्रान्तिकी इस बातसे हर एक पाठक परिचित हैं। और भी विचार करनेपर तुरन्त ज्ञान हो सकेगा कि इस एक ही शरीरमें कैसे वृद्धि होती है और कैसे ह्रास होता है। सभी मनुष्योंके शरीर एक समान नहीं होते और भिन्न-भिन्न योनिमें उत्पन्न हुए प्राणियोंके शरीर भी एक समान नहीं होते, शरीर-विषयक ये विचार मनके विषयमें भी कहाँ तक संगत होते हैं इस प्रश्नपर यहाँ विचार किया जाता है।

आयुर्वेदाचार्योंने कहा है कि[1] गर्भस्थ जीवके मानसिक व्यापारोंका प्रारम्भ चौथे महीनेसे शुरू होता है। उसका हृदय धड़कना शुरू होता है और चूँकि वह चेतना स्थान है इसलिये चेतना धातु अधिक प्रमाणमें व्यक्त होती है; गर्भ इन्द्रियार्थोंकी इच्छा

करता है। इस अवस्थामें मातामें दो हृदय होते हैं, इसीलिये उसको दौर्हृदिनी कहते हैं। गर्भमें इन्द्रियोंके उत्पन्न होते ही उसके चित्तमें सुख और दुःखके भाव उत्पन्न होने लगते हैं। सुखोत्पत्ति और दुःख-परिहारके लिये वह हिलता-डुलता रहता है। इन वाक्योंसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि गर्भावस्थाके कालसे ही मनुष्यके मानसिक और शारीरिक व्यापारोंका प्रारम्भ होता है। इस मतका विरोध करनेवाले कहते हैं कि गर्भका मन किसी भी प्रकारका व्यापार नहीं करता, क्योंकि जन्मके बाद उसको इनमें से कुछ भी याद नहीं होता। इसलिये यह प्रश्न केवल मान्यताका है, वस्तुतः सत्य नहीं है। इस युक्तिके प्रत्युत्तरमें कह सकते हैं कि फलित बीजकोषके भीतर आत्मा एवं मनका प्रवेश हुए बिना उसमें आगेके कुछ भी परिवर्तन नहीं होते। परन्तु जब तक आत्मा और मनको उनके अभिव्यक्तिके साधन इन्द्रियाँ एवं अङ्ग-उपांग नहीं मिलते तब तक उनके व्यापार कैसे प्रकट हो सकते हैं? गर्भकी हलचलसे प्रत्यक्ष सिद्ध ही है जो उसके नाड़ी संस्थानके अस्तित्वको सूचित करती है। उस नाड़ी संस्थानका अस्तित्व ही उसको सुख-दुःखके भाव उत्पन्न होते होंगे, इस अनुमानके लिये पर्याप्त प्रमाण है। हमको अपने गर्भावस्थाके मनोव्यापारोंका स्मरण नहीं इसका मतलब यह नहीं कि वे उत्पन्न हो नहीं हुए थे। इसका मतलव सिर्फ यही है कि उनका हमको स्मरण नहीं है। वैसे तो बाल्यावस्था और अपनी वर्तमानावस्थाकी भी बहुत-सी घटनाओंको हम भूल जाते हैं फिर भी हम यह नहीं कहते कि वे घटनायें

हुई ही नहीं थीं। बूढ़े किंवा स्वजन उन घटनाओंकी—हमारे बाल मानसके व्यापारोंकी—जब हमें याद दिलाते हैं तब वे व्यापार हमको याद आ जाते हैं। इसलिये गर्भके चित्तमें भी व्यापार होते हैं यह सिद्धान्त अनुमानसे सिद्ध होता है।

गर्भावस्थाके कालमें ही मानसिक विकासका प्रारम्भ होता है। यह विकास जन्मोत्तर कालमें कैसे चालू रहता है अब इसे देखते हैं। मनके विकासका अर्थ है उसकी गुप्तशक्तियोंका आविर्भाव। जैसे बीजके भीतर सूक्ष्म रूपसे वृक्ष रहता है और बीजसे अंकुर निकल कर वृक्ष रूपमें परिणत होता है उसी प्रकार गर्भावस्थामें मनुष्यके चित्तमें गुप्त रूपमें स्थित उसकी शक्तियां प्रति दिन विकसित होते-होते अन्तमें वे सम्पूर्ण चित्तके स्वरूपमें परिणत हो जाती हैं; जिनके व्यापारोंको हम देख चुके हैं। इस क्रमिक विकास कालमें पुरुषके ज्ञान प्रधान, भावना प्रधान और चेष्टा प्रधान व्यापार क्रमशः अधिकाधिक निश्चित स्वरूप प्राप्त करते जाते हैं। पाँचों इन्द्रियों द्वारा वह इन्द्रियार्थोंको ग्रहण करने लगते हैं, उसकी स्मरण शक्ति धीरे-धीरे बढ़ने लगती है और स्वाभाविक सुख-दुःखके भावोंके अतिरिक्त क्रोध, काम, ईर्ष्या, हर्ष आदिके भाव उसमें उत्पन्न होते हैं। क्रमशः उसकी एकाग्रता बढ़ती है। बचपनमें चित्त चंचल होता है, उसकी जगह क्रमशः स्थिरता आ जाती है। विचार शक्ति पुष्ट होती है और अन्तमें विवेक शक्ति, तर्कशक्ति और धृति किंवा संयम उसकी मनःसृष्टिमें अभिव्यक्त होते हैं। वृद्धावस्थामें मानसिक शक्तियोंका न्यूनाधिक ह्रास भी होता है।

तब फिर सब सत्त्व एक समान क्यों नहीं होते ? उदाहरणतः (क) प्राणियोंके मन और मनुष्योंके मन एक समान नहीं होते। (ख) मनुष्योंमें भी सब मनुष्योंके मन एक समान नहीं होते और (ग) एक ही मनुष्यका मन भी बाल्यावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्थामें एक-सा नहीं रहता। इस मनोभेदके कारणोंका अब विचार करते है, क्योंकि मनोभेद तो हमारी अनुभूत वस्तु है। सत्त्ववैशेष्यकर भावों (Factors governing mental growth) का वर्णन करते हुए भगवान चरक इस प्रकार कहते हैं[२]।

गर्भस्थ शिशुके मनपर उसके माता-पिताके मनका प्रभाव होता है। यह नियम सारी प्राणिसृष्टिपर लागू होता है। वस्तुतः माता-पिताके शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकारके प्रभाव बालकपर होते हैं जिनको हम आनुवंशिक संस्कार कहते हैं। यहाँ पर प्रकरणानुसार मन पर होने वाले आनुवंशिक संस्कारोंके प्रभावका उल्लेख किया है। आनुवंशिक संस्कारोंके संक्रमण (Heredity) की बात आगे प्रकृति (Temperaments) की चर्चामें विस्तारसे आयेगी। इसलिये यहाँ सिर्फ उसके प्रति अंगुलि निर्देश किया है। स्त्री-बीज द्वारा माताकी ओरसे और पुरुष-बीज द्वारा पिताकी ओरसे बालकको आनुवंशिक संस्कारकी देन मिलती है जो उसके मन एवं शरीरपर प्रभाव डालती है। यह बात सर्वमान्य है।

आधुनिक प्रजनन शास्त्र (Gentics) इस बातका

समर्थन करता है। आत्मा, मन आदिके विषयके विचारोंसे उनका कोई मतलब नहीं है। उनके मतानुसार दोनों बीज एक हो जाते हैं; इसलिये माता और पिता दोनोंकी ओरसे—यही नहीं, किसी भूतकालीन प्रपितामहकी ओरसे भी—कुछ संस्कार आ जाता है। नया फलित कोष इन सबका उत्तराधिकारी होता है।

लेकिन जब इस नियमके अपवाद देखनेमें आते हैं तब इस मतके माननेमें भी आपत्ति खड़ी हो जाती है। विद्वान कुलमें मूर्ख पुत्रकी उत्पत्ति, मूर्ख माता-पिताका पुत्र विद्वान् होना और दो युग्म सन्तानोंके मानसमें भी भेद देखा जाना इन अपवादोंके उदाहरण हैं। इस प्रकारके वैशेष्य (Variation) का स्पष्टीकरण वे सिर्फ भौतिक दृष्टिकोणसे करते हैं। जैसे, इस प्रकारके अपवादोंका कारण रसदुष्टि किंवा पर्याप्त पोषणका अभाव, बालकके शरीरकी स्रोतोहीन ग्रन्थियोंके स्रावोंकी घट-बढ़, या अन्तमें दोनों कोषोंके मिलन-कालमें होनेवाली कोई आकस्मिक घटना-यदृच्छा (Chance) है। इस प्रकार अन्तमें "चान्स" किंवा एक्सिडेण्टका आश्रय लेना पड़ता है। आयुर्वेदज्ञोंको भी इस प्रश्नको सुलझानेमें थोड़ी कठिनाई मालूम होती है। उदारणतया जब शुक्र-शोणितका संयोग होता है[३] तब आत्मा और मन उसमें प्रवेश करते हैं और गर्भके व्यापार शुरू होते हैं*। तब बालककी

---

* "तदन्तर प्रतिपत्तौ रंहतिसंपरिष्वक्तः प्रश्ननिरूपाभ्याम्"

भाष्य—जीवोमुख्यप्राणसचिवः सेन्द्रियः समनस्कोऽविद्याकर्मपूर्वप्रज्ञा-परिग्रहः पूर्वदेहं विहाय देहान्तरं प्रतिपद्यत इत्येतदवगतम्। ब्रह्मसूत्र—३-११

ानसिक रचना (संघटन) पर माता-पिता और उनके पूर्वजोंकी
ानसिक रचना (संघटन) का प्रभाव कैसे होता है ? बालकका
रीर अपने माता-पिताके शरीरके समान हो यह मान सकते हैं
रन्तु जब आत्मा और मन बाहरसे आते हैं तब नये उत्पन्न
होनेवाले व्यक्तिके मनपर उसके कुटुम्बियोंका प्रभाव कैसे होता है?
ोता है—इतना तो सभी जानतेहैं। संगीत, साहित्य, गणित आदि
शास्त्रोंमें प्रवीणता माता-पितासे बालकमें संक्रान्त होती कई वार
दिखाई देती है। इसका कारण क्या है? भगवान् चरकने
भीमाता-पिताके मनका प्रभाव गर्भके मनपर होता है
ऐसा वर्णन किया है। इसका प्रत्युत्तर इस प्रकार देसकते हैं
माता-पिताके मनका प्रभाव गर्भके शरीरपर शुक्र शोणित-संयोग
द्वारा होता है यह उभय पक्षोंको स्वीकार्य है। मतभेद केवल
मानसिक संघटन (रचना) पर होनेवाले प्रभावके विषयमें है।
भारतके तत्त्ववेत्ताओंके कथनानुसार आत्मा और मन सूक्ष्म
(लिङ्ग) देह द्वारा नये फलित बीज कोषमें प्रविष्ट होते हैं और तब
इस नये स्थूल देहके व्यापार शुरू होते हैं। इस विकास-क्रमके

तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति स विज्ञानो भवति। सविज्ञातमन्ववक्रामति। तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्णप्रज्ञा च ॥ २ ॥ तद्यथा तृणजलायुका तृणस्यान्तंगत्वाऽन्यामाक्रममाक्रम्यात्मानमुपसंहरत्येवमेवायमात्मेदं शरीरं निहत्याऽविद्यां गमयित्वाऽन्यमाक्रममाक्रम्यात्मानमुपसंहरति ॥ ३ ॥

बृहदारण्यक उप. ४-४-२-३

समय माता-पिताके मनके प्रभाव भी गर्भके मनपर होते हैं। कैसे? इसका उत्तर देते हुए चक्रपाणिदत्त कहते हैं—प्रभाव द्वारा (प्रभावादेव)। आधुनिक पाश्चात्य तत्त्वज्ञानियोंको भी यह मत मान्य है*। उनके मतमें किसी अचिन्त्य तरीकेसे (Some how) माता-पिता किंवा पूर्वजोंके मानसिक संस्कार-अनुभवों-की देन बालकको मिलती है। यों अनुमान कर सकते

---

* Lastly, I would maintain that if the soul is to be taken seriously as a scientific hypothesis, we shall have to face its part in heredity and of its place in the scheme of organic evolution. xxx How is the teleological immaterial factor, which we are driven to conceive as controlling the development, related to the parent forms, each of which contributes its share to the determination of the nature of the new organism? In face of this tremendous problem, I will only say that, to me it seems easier to believe that two souls may somehow cooperate in giving origin to a new one. xxx As regards the evolutionary problem, I would say that if heridity is conditioned, not mechanically by the structure of the germ-plasm, but by the teleological principle, it follows that the factors which have produced the evolution of species, must have operated on and through this principle.

(Mc. Dougall—Body and Mind P. 377)

हैं कि (क) लिङ्ग देहके साथ आनेवाला आत्मा नये कललात्मक देहका—स्थूल-देहका आश्रय लेता है। (ख) इस नये देहपर माता-पिताके स्थूल देहके संघटन (रचना) का प्रभाव जिस तरह होता है। (ग) उसी प्रकार माता-पिताके मानसिक संस्कारोंका प्रभाव भी गर्भके मनपर होता है।

(क) संक्षेपमें आनुवंशिक संस्कारोंका संक्रमण केवल स्त्री बीज और पुरुष बीजके भौतिक संयोगका ही परिणाम नहीं, किन्तु माता-पिता के मानसिक संस्कारोंका नव निर्मित देहमें आकर बसे हुए आत्माके मानसिक संस्कारोंके साथ मिलन का भी परिणाम होता है (Psycho physical process)। शारीरिक लक्षण एवं मानसिक संस्कारोंके संक्रमणका यह नियम सत्त्ववैशेष्यकर भावों (पदार्थों) में अग्रस्थान लेता है।

(ख) मानसवैशेष्यकर भावों (पदार्थों) में दूसरा स्थान माताके पठन-श्रवण आदिका है। सगर्भा स्त्रीके मनपर, उसके पठन, श्रवण आदिसे होनेवाले प्रभाव भी गर्भके मानसिक संघटन (रचना) पर अपना प्रभाव डालते हैं। माताके विचारों (भावों) का प्रभाव उसके स्तन्यपर होता है, यह हम जानते हैं। इसी प्रकार माताके श्रवण, मनन या पठनसे उत्पन्न होनेवाले मानसिक व्यापारोंका प्रभाव भी, गर्भमें जानेवाले माताके रुधिर द्वारा, गर्भ के मानसिक संघटनपर होता है। पाठकोंको यहाँ यह याद दिलाना आवश्यक है कि हमारे विचार-प्राबल्यका प्रभाव, स्रोतो-हीन ग्रन्थियोंके स्रावों द्वारा हमारे रुधिरके रासायनिक संघटनपर होता है, यह सत्य वस्तु है। इसलिये यह निःसंकोच मान सकते

हैं कि यही रुधिर प्रवाह जन्मके पहले गर्भपर प्रभाव डालता है।

(ग) गर्भका अपना कर्म बल-अर्थात् इस स्थितिमें धर्माधर्मरूप संस्कार बल। यह उसके पूर्वजन्ममें मनपर जैसे संस्कार उत्पन्न होते हैं उसके अनुरूप होता है।

(घ) सत्व विशेषाभ्यास—जिस प्रकारका मन उसने पूर्वजन्ममें बनाया हो[४] उसके अनुरूप नये जन्ममें भी होता है। अर्थात् पूर्वजन्मके दान, अध्ययन, तप आदिके संस्कारोंका प्रभाव इस जन्ममें होता है। जन्मके बाद भी शिक्षा, सहवास, कुलाचार आदि मनके संघटन (रचना) पर प्रभाव डालते हैं।

इन चारों कारणोंसे प्राणिसृष्टिमें एक समान मन देखनेमें नहीं आते। मत्स्य, मयूर, मर्कट और मनुष्यके मनोवैशेष्यके ये ही कारण हैं। सद्योजात शिशु इस प्रकार जन्मके साथ ही विशिष्ट प्रकारकी मानसिक रचना (संघटन) लेकर आता है और इसके बाद उसका विकास शुरू होता है। इस विकासपर उसकी परिस्थिति किंवा संयोग (Environment) का प्रबल प्रभाव होता है। परन्तु यदि यहाँ वर्णन किये गये इन वैशेष्यकर भावों में ही कुछ कमी हो—उसको बुरी देन मिली हो—माता पिता दुष्ट स्वभावके या मनोमालिन्यवाले हों किंवा उसका पूर्वजन्म ही अधमकोटिका हो—तो संयोग (परिस्थिति) का प्रभाव, बालकके मनोविकासपर यथोचित नहीं होता। क्योंकि बालकका मन—निजसंस्कार, वंशानुगत संस्कार और संयोगोंका केवल योग नहीं है किन्तु इन सबका गुणनफल है। सामान्य माता-पिताके कुछ

बच्चे बहुत छोटी उम्रसे ही असाधारण प्रतिभासम्पन्न दिखाई देते हैं। इसमें उनके पूर्वजन्मके संस्कार उत्तरदायी हैं।

जन्मके बाद परिस्थितिके गुणोंका भी बहुत कुछ प्रभाव होता है। वन और पहाड़ोंमें पले हुए बच्चे अधिक सुदृढ़ और हिम्मत वाले होते हैं। सभ्य और संस्कृत समाजमें उत्पन्न बच्चे अधिक विवेकशील, ज्ञानशील और संस्कारी होते हैं। इत्यादि।

व्यक्तिके मनके संस्कारोंसे ही उसका चरित्र बनता है। उसके चरित्र, उसकी विशिष्टताओं और अन्य लक्षणोंसे हम उसको अशिक्षित, अर्ध शिक्षित या शिक्षित कहते हैं। मनुष्यके जीवन-पर परिस्थितिगत होनेवाले विचित्र प्रभावोंके परिणामस्वरूप होने-वाले बाल्यावस्थासे लेकर वृद्धावस्थातकके परिवर्तन समझे जा सकते हैं। अंग्रेजीके "Nature and Nurture" शब्द मानसिक विकासका सुन्दर निरूपण करते हैं।

तो क्या संसारमें दिखाई देनेवाले चित्र-विचित्र मानसोंका वर्गीकरण हो सकता है? कुछ आधुनिक मानस-शास्त्रज्ञ, मनुष्यों (प्राणियों) के बर्ताव (Behaviour) से ही उसके मनका अध्ययन करते हैं। उनके मतानुसार मन स्वयं अतीन्द्रिय पदार्थ है, इसलिये उसका अवलोकन शक्य नहीं है। फिर भी उस (मन) के व्यापार, शरीरद्वारा व्यक्त होते हैं इसलिये बर्तावको ही मानस विज्ञानमें प्रमुख साधन मानना चाहिए। भगवान चरक ने इस प्रश्नका स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि इस सजीव सृष्टिमें

प्रधानतया तीन प्रकारके मन देखनेमें आते हैं—शुद्ध, राजस और तामस। इन तीन प्रधान भेदोंसे हजारों या लाखों गौण प्रकारके मन देखे जाते हैं। एक शुद्ध मनके भी अनेक प्रकार हो सकते हैं; राजस और तामसके भी अनेक भेद हो सकते हैं, क्योंकि प्रत्येक मनमें सत्त्व, रज और तमोगुणका प्रमाण न्यूनाधिक होता है या तीनों गुणोंका मिश्रण भी न्यूनाधिक मात्रामें होता है (इसके अतिरिक्त शरीर-भेद भी मनके इस अपरिसंख्येयत्वके लिये उत्तरदायी है; क्योंकि मनपर शरीरका और शरीरपर मनका प्रभाव होता है)। यहाँ आधुनिकोंके शरीर और मनके परस्पर क्रियावाद (Inter-action of Body and Mind) का स्पष्ट निर्देश है। यह बात इस बातका उदाहरण है कि आधुनिकों द्वारा आविष्कृत नये मन्तव्य वास्तवमें नये नहीं हैं, किन्तु प्राचीन विचारकोंके मतका पुनरुच्चारण या अन्य दृष्टिकोणसे किया हुआ समर्थन है। काश्यप संहितामें तो इससे भी आगे बढ़कर स्पष्ट रूपमें कहा है कि—

यथा वक्त्रं तथा वृत्तं यथा चक्षुस्तथा मनः।
यथा स्वरस्तथा सारो यथा रूपं तथा गुणाः॥ का. सं. पृ० २५

अब बर्ताव—चरित्र—से होनेवाले विविध भेद कैसे जाने जायँ? इसके प्रत्युत्तरमें भगवान चरकने मनुष्य-समाजमें दृष्टि-गोचर होनेवाले कुछ भेदोंका दृष्टान्तके तौरपर उल्लेख किया है[1]। यहाँ उन भेदोंके नाम ही उद्धृत करते हैं।

शुद्ध	राजस	तामस
ब्राह्म	आसुर	पाशव
आर्ष	राक्षस	मात्स्य
ऐन्द्र	पैशाच	वानस्पत्य
याम्य	सार्प	
वारुण	प्रैत	
कौबेर	शाकुन	
गान्धर्व		

इनके अतिरिक्त भगवान काश्यपने शुद्ध और राजस मनके भेदोंमें एक और बढ़ा दिया है—प्राजापत्य और याक्ष[६]। भगवान सुश्रुतने भी चरक संहितामें दिये हुए ७-६-३ भेदोंका ही वर्णन किया है[७]। भेदोंकी इस तालिकासे मालूम हो जायगा कि मनुष्योंके मन दैवी संपद् या आसुरी संपद् वाले हो सकते हैं और निकृष्ट प्रकारके मन, इतर प्राणी किंवा वनस्पति सृष्टिमें दिखाई देनेवाले व्यापारोंको अभिव्यक्त करनेवाले भी हो सकते हैं। अन्य शब्दोंमें यों कहा जा सकता है कि संसारमें मानस विकास की विविध भूमिकायें दृष्टिगोचर होती हैं जिनके कारण ऊपर दिये गये हैं। आधुनिक मानस विज्ञानशास्त्री जिनको मेण्टल डिस्पोज़ीशन्स (Mental Dispositions) कहते हैं वे ही ये मानसिक प्रकार हैं। प्राचीनों द्वारा वर्णित वातल, पित्तल, श्लेष्मल आदि प्रकृतियोंका समावेश आधुनिकोंके टेम्प्रामेन्ट्स् (Temperaments) में होता है, जिनमें विशिष्ट मानसिक

लक्षणोंके साथ विशिष्ट शारीरिक लक्षण भी संकलित किये गये मालूम होते हैं।

वास्तवमें मनुष्य-शरीर एक विलक्षण यन्त्र है। मनुष्यदेहकी रचनामें, उसके व्यापारोंमें, उसके रासायनिक संघटनमें और उसके मानसतन्त्रमें बहुतसे परिवर्तन (Anatomical, Physiolgical, Biochemical and Mental changes) होते रहते हैं। इन सबके कारणोंको मनुष्य-बुद्धि अभीतक नहीं पा सकी है। इन परिवर्तनोंका एक दूसरेपर भी प्रभाव होता रहता है जिसका प्राचीन नाम "अन्योऽन्यानुविधान" है। मानसिक व्यापारोंके देह-व्यापारोंपर होनेवाले प्रभावोंको हम जानते हैं। यह प्रत्येकका अनुभवसिद्ध है। तब फिर शारीरिक परिवर्तनोंका प्रभाव मानसिक व्यापारोंपर कैसे होता है? आयुर्वेदज्ञोंके सिद्धान्तानुसार वात, पित्त और कफ---ये तीन धातु सम्पूर्ण शारीरिक व्यापारोंके लिये उत्तरदायी हैं, इसलिये इन धातुओंका प्रभाव मानसिक व्यापारोंपर होना ही चाहिए[१]। त्रिधातुसे होनेवाले शारीरिक व्यापारोंको एक ओर रखकर यदि हम मानसतन्तुके परिवर्तनोंको ही देखें तो इनमें उत्साह, मनः-प्रसाद, मेधा, क्षमा, धृति, लोभाभाव इत्यादि मालूम होते हैं। अविकृत त्रिधातुओंके इस प्रभावको जान लेनेके बाद जब ये धातु विकृत होते हैं तब भी वे मनपर जो प्रभाव डालते हैं, ये बातें आगे मानस व्याधियोंका वर्णन पढ़कर समझमें आ जायेगी। इस अवस्थामें इनके लिये "दोष" शब्द व्यवहृत होता है।

आधुनिक शरीर व्यापारशास्त्रियोंके मन्तव्योंके अनुसार मन नाड़ीसंस्थान (N. System) द्वारा शरीरपर प्रभाव डालता है और मुख्यतया उग्र मानसिक व्यापार स्वतन्त्र नाड़ीमण्डलद्वारा स्रोतोहीन ग्रन्थियोंके स्रावोंको उत्पन्न करके शारीरिक व्यापारोंपर प्रभाव डालते हैं और इसके विपरीत स्रोतोहीन ग्रन्थियोंके स्राव भी स्वतन्त्र नाड़ीमण्डल द्वारा विविध मानसिक भाव उत्पन्न करते हैं। उदाहरणत: वृषण ग्रन्थियोंके अन्तःस्रावका सेवन (Testicular Horman) करानेसे मूषक एवं मनुष्यकी कामुकता जाग्रत हो जाती है और 'शुनीमन्वेति श्वा' इस वचनकी यथार्थता सिद्ध होती है। चुल्लिकाग्रन्थिके अन्तःस्रावका प्रभाव, मानसिक कमजोरीसे पीड़ित बच्चोंमें मेधा उत्पन्न करता है। और अधिवृक्क ग्रन्थिका स्राव मनुष्यको उद्दीप्त करता है, उसके उत्साह को बढ़ाकर उसको चण्ड-शूर बना देता है। आशय यह है कि प्राचीन एवं अर्वाचीन आचार्य अपनी परिभाषामें शारीरिक भावोंके मानसिक प्रभावोंका वर्णन करते हैं।

सातवाँ अध्याय

प्रमाण संग्रह

(१) तृतीये मासि सर्वेन्द्रियाणि सर्वाङ्गावयवाश्च यौगपद्येनाभि निर्वर्तन्ते। चरक शा० अ० ४-११

तस्य यत्कालमेवेन्द्रियाणि सन्तिष्ठन्ते, तत्कालमेव चेतसि वेदना निर्बन्धं प्राप्नोति, तस्मात्तदा प्रभृति गर्भः स्पन्दते, प्रार्थयतेच-जन्मान्तरानुभूतं यत्किञ्चित्, तद्द्वैहृदय्यमाचक्षते वृद्धाः।

चरक शा० अ० ४-१५

चतुर्थे सर्वाङ्गप्रत्यङ्ग विभागः प्रव्यक्ततरो भवति, गर्भहृदय-प्रव्यक्तीभावाच्चेतनाधातुरभिव्यक्तो भवति, कस्मात्? तत्स्थानत्वात्, तस्माद्गर्भश्चतुर्थेमास्यभिप्रायमिन्द्रियार्थेषु करोति, द्विहृदयां च नारीं दौहृदिनीमाक्षते सुश्रुत शा० अ० ३-१८

(२) सत्त्ववैशेष्यकराणि पुनस्तेषां तेषां प्राणिनां माता पितृ-सत्त्वान्यन्तर्वत्न्याः श्रुतयश्चाभीक्ष्णं स्वोचितं च कर्म सत्त्व विशेषा-भ्यासश्चेति। चरक शा० अ० ८-१६

टीका—माता पितृ सत्त्वानीति मातापित्रनुकारेण सत्त्वानि प्रायः प्रभावाद् एव भवन्ति। अन्तर्वत्नी गर्भिणी। श्रुतयश्चा-भीक्ष्णमिति। यथा गर्भिणी गीतादि शृणोति, तथा सत्त्वमपत्यं जनयति। स्वोचितं च कर्मेति गर्भेणोपार्जितं कर्म स्वफलानुरूपं सत्त्वं जनयति। सत्त्वंविशेषाभ्यासश्चेति यथाविध सत्त्वं पुरुषोऽ-भ्यस्यति जन्मान्तरे तथा सत्त्व एव जायते। वचनं हि—

जन्म जन्म यदभ्यस्तं दानमध्ययनं तपः ।
तेनैवाभ्यासयोगेन तच्चैवाभ्यसते नरः ॥ —चक्रपाणिदत्त

(३) भूतैश्चतुर्भिः सहितः सुसूक्ष्मै र्मनोजवो देहमुपैति देहात् ।
कर्मात्मकत्वान्नतु तस्यदृश्यं दिव्यं विना दर्शनमस्ति रूपम् ॥

चरक शा० अ० २-३१

अस्तिच खलुसत्त्वमौपपादुकमिति । चरक० शा० ३-३

४) येनास्य खलु प्रयतः भूयिष्ठम्, तेन द्वितीयायां वा जातौ संप्रयोगो भवति । च० शा० अ० ३-१९

(५) चरक संहिता-चक्रपाणिटीका समेत शरीरस्थान अध्याय ४ सूत्र ३६-५६ टीकाके साथ यहां लेना ।

(६) प्रजावन्तं क्रियावन्तं धर्मशीलं जगत्प्रियम् ।
अनीर्ष्य मशठं प्राज्ञः प्राजापत्त्यं वदेच्छुचिम् ॥
दानशय्यात्यलंकार पानभोजन मैथुनः ।
नित्योपेतं प्रमुदितं याक्षं विद्यात् प्रभक्षणम् ॥ का० सं० पृ० ३५-३७

(७) देखो सुश्रुत संहिता शा० अ० ४ ९१-९७ ।

(८) उत्साहोच्छ्वास निःश्वासचेष्टा धातुगतिः समा ।
समो मोक्षोगतिमतां वायोः कर्माऽविकारजम् ॥
दर्शनं पक्ति रूष्माच क्षुत्तृष्णादेह मार्दवम् ।
प्रभा प्रसादो मेधा च पित्तकर्माविकारजम् ॥
स्नेहो बन्धः स्थिरत्वंच गौरवम् वृषता बलम् ।
क्षमा धृतिरलोभश्च कफकर्माऽविकारजम् ॥

चरक० सू० स्था० अ० १८-५५-५७

आठवां अध्याय

सिद्धि-विज्ञान

मानस व्यापारोंके वर्णनके बाद इस अध्यायमें हम उसके अलौलिक व्यापारोंका वर्णन करते हैं। साधारण मनुष्योंमें उत्तम 'मन' किसको कहना चाहिये इसका निर्देश करते हुए भगवान चरक कहते हैं कि :—

"स्मृतिमन्तो भक्तिमन्तः कृतज्ञाः प्राज्ञाः शुचयो महोत्साहा दक्षा धीराः समरविक्रान्तयोधिनस्त्यक्तविषादाः सुव्यवस्थित गतिगम्भीर-बुद्धिचेष्टाः कल्याणाभिनिवेशिनश्चसत्त्वसाराः। तेषां स्वलक्षणैरेव गुणा व्याख्याताः।" च० वि० स्था० अ० ८-११०

यहाँ स्मृति, भक्ति, कृतज्ञता, प्रज्ञा, पवित्रता, उत्साह, दक्षता, धैर्य, शौर्य आदिको मनके उत्कृष्ट लक्षण बतला कर, जिसे साधारण मनुष्य भी समझ सकें कि ऐसे शब्दोंमें उत्तम मनवाला मनुष्य कैसा होता है, यह बतलाया गया है। यह और बात है कि इस मापदण्डसे नापनेपर ऐसे उत्कृष्ट मनुष्य समाजमें बहुत कम पाये जाते हैं।

परन्तु इन मनुष्योंसे भी बढ़कर कुछ बिरले पुरुष भी देखे जाते हैं जिनकी शक्तियोंका अनुमान भी हमको नहीं हो सकता। इनके मन ऐसे व्यापार करते हैं जिनको हम अलौकिक मानते हैं। भगवान चरक कहते हैं कि—

आवेशश्चेतसो ज्ञानमर्थानां छन्दतः क्रिया ।
दृष्टिः श्रोत्रं स्मृतिः कान्तिरिष्टतश्चाप्यदर्शनम् ॥
इत्यष्टविधमाख्यातं योगिनां बलमैश्वरम् ।
शुक्रसत्त्वसमाधानात्तत् सर्वमुपनायते ॥

च० शा० स्था० अ० २

योगियोंके शुद्धसत्त्वका आत्मामें समाधान करनेपर अर्थात् जब समाधिमें योगी अपने चित्तको केवल आत्मामें ही स्थिर करते हैं तब (तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्) उनके अन्दर अष्टविधि ऐश्वर्य प्रकट होता है अर्थात् वे सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इन सिद्धियोंका वर्णन करते हुए उनके आठ प्रकारोंकी यहाँ गणना की है। यथा—पर काया प्रवेश, पर चित्त ज्ञान, इन्द्रियार्थोंको स्वेच्छानुकूल उत्पन्न करना, अतीन्द्रिय दर्शन, अतीन्द्रिय श्रवण, अतीन्द्रिय स्मरण, अलौकिक कान्ति, और इच्छा होनेपर अदृश्य हो जाना इत्यादि। अन्यस्थलपर-शुद्ध सत्यवाले पुरुषको पूर्वजन्मका स्मरण होता है जिसको "जातिस्मर" कह सकते हैं इसका प्रतिपादन करते हुए संसारमें क्वचित दृष्टिगोचर होनेवाले ऐसे 'जातिस्मर' मनुष्योंका भी निर्देश किया गया है। च० शा० स्था० अ० ३

योग साधनाके फलस्वरूप रजोगुण और तमोगुणके दोषोंको दूर कर चित्तको सत्त्वगुण प्रधान बनाकर उसको आत्माभिमुख बनानेपर इस प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ऐसे विचार भारतवर्षमें हजारों वर्षसे चल रहे हैं। भगवान् चरकने इनका संक्षिप्त उल्लेख किया है ताकि वैद्यको इतना ख्याल रहे कि नित्य–

प्रतिके लौकिक व्यापारोंका भी मनके अलौकिक व्यापार भी होते । सांख्यकारिकामें जन्मसिद्धियोंकी गणना की गयी है वे यह वर्णित सिद्धियोंसे भिन्न हैं* । परन्तु योग दर्शन और योग वाशिष्ट तो इन सिद्धियोंका विस्तृत वर्णन मिलता है† । ध्यान, धारण और समाधिके प्रभावसे इन सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है । यहाँ परिगणित सिद्धियोंमें अतीतानागतज्ञान अर्थात् भूत एवं भविष्य कालक ज्ञान, पूर्व जाति ज्ञान, परिचित ज्ञान, अन्तर्धान—अदृश्य हो जाने की शक्ति, मृत्यु और अरिष्टोंका ज्ञान, सूक्ष्म, ढँके हुए एवं दूरके पदार्थोंका ज्ञान पर शरीरप्रवेश, अद्भुत श्रवण-शक्ति, आकाश गमन का निर्देश किया गया है । योगवासिष्ठमें मनोयोगजा सिद्धियों एवं कुण्डलिनी योगसाध्या सिधियोंका वर्णन किया गया है जो योग दर्शनसे मिलता जुलता है‡ । यद्यपि भगवान पतञ्जलि स्वयं

* ऊहः शब्दोऽध्ययनं दुःखविघातास्त्रयः सुहृत्प्राप्तिः ।
दानंच सिद्धयोऽष्टौ सिद्धेः पूर्वाङ्कुशस्त्रिविधः ॥ सां० का० ५१

† परिणामत्रय संयमादतीतानागत ज्ञानम् ॥१६॥ संस्कारसाक्षात्करणा त्पूर्वजाति ज्ञानम् ॥१८॥ कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भचक्षुष्प्रकाशासंप्र योगेऽन्तर्धानम् ॥२१॥ सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्तकज्ञान मरिष्टेभ्यो वा ॥२२॥ प्रवृत्त्यालोकन्यासात्सूक्ष्मव्यवहित विप्रकृष्टज्ञानम् ॥२५॥ बन्धकारणशैथिल्यात्प्रचार संवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेश :॥३९॥ श्रोत्राकाशयो संबन्धसंयमाद्दिव्यं श्रोत्रम् ॥४१॥ कायाकाशयोः संबन्धसंयमाल्लघुतूल समापत्तेश्चारऽकाशगमनम् ॥४२॥

‡ चित्ततत्त्वानि शुद्धानि सम्मिलन्ति परस्परम् ।
एकरूपाणि तोय यावन्त्यैक्यं नाविलानि हि ॥ यो० वा० ४-१७-३०

कहते हैं कि ये सिद्धियाँ समाधि मार्गमें बाधक हैं फिर भी जब चित्तका संयम पूर्णतया सिद्ध होता है तब ये वास्तविक सिद्धियाँ मानी जाती हैं। मोक्षप्राप्तिके लिये तो इनको भी छोड़ देना चाहिए।

यौगिक क्रियाओं द्वारा सिद्धि प्राप्त करनेका प्रयास, प्रत्येक धर्मके अनुयायियोंमें फैला हुआ मालूम होता है। हमारे देशमें इस कुण्डलिनी-योगकी उपासनाको "श्री विद्या" कहा जाता है। बौद्ध, शाक्त, शैव, जैन सब इसका न्यूनाधिक उपयोग करते हैं। यूरोपमें ई० स० १६९६ में छपे हुए एक ग्रन्थमें छः नहीं किन्तु सात चक्रोंका वर्णन है; इसमें 'षट्चक्र निरूपण' में दिये हुए छः चक्रों के अतिरिक्त सातवें प्लीहा-चक्रका भी वर्णन किया गया है। इसमें भी सर्पाकार कुण्डलिनीका चित्र है। कुछ धार्मिक मण्डलोंकी गुप्त क्रियाओंमें इस योगका ज्ञान प्रधान रूपसे रहता था, आज भी इसको जाननेवाले इसके रहस्यको अपने विश्वस्त व्यक्तियोंको छोड़कर अन्य किसीको नहीं बतलाते। विशिष्ट सिद्धि सम्पन्न योगियों की बातें किंवा किंवदन्तियाँ यूरोपमें* भी प्रचलित थीं और आज.

इत्यभ्यास विलासेन योगेन व्योमगामिना।
योगिनः प्राप्नुवन्त्युच्चैर्दीना इन्द्रदशामिव॥ यो० वा० ६-८१-४९

* The first contains stories of the miraculous enhancement of the sight, hearing, small and so forth, which results from extreme holiness, and tells us how one saint had the power of becoming invisible, another of walking through closed doors and athird of flying through the air". (Dean Inge. Christian mysticism p.p.2645)

है। उदाहरणतया ऐसा माना जाता था कि "साधु जीवनके फलस्वरूप योगियों किंवा साधकोंकी इन्द्रियों–आँख, कान, नाक इत्यादि की शक्तिमें चमत्कारपूर्ण वृद्धि होती है और इसके फलस्वरूप कोई साधु अदृश्य हो जानेकी कोई बन्द किवाड़के भीतरसे निकल जानेकी तो कोई आकाशमें उड़नेकी शक्तिसे सम्पन्न होता था" हमारा मन इतना श्रद्धाशील है कि हमको इन वर्णनोंमें कुछ भी आश्चर्य नहीं मालूम होता; यद्यपि इस प्रकारकी सिद्धियोंसे सम्पन्न पुरुष हमको नहीं मिलते।

परन्तु आजकलके वैज्ञानिक जगत्को तो जिसे आत्मवादमें श्रद्धा ही नहीं है—अभी हालमें अधिकाधिक प्रकाशित होनेवाली, साईकीकल रीसर्च सोसाइटी की (Psychical research society), कुछ प्रयोगोंके अवलोकनके अधारपर लिखी हुई पत्रिकाएँ सविशेष कठिनाइयाँ पैदा करनेवाली मालूम होती हैं। भूत-पिशाचकी सृष्टि है या नहीं? मरणोत्तर गति किस प्रकारकी होती है? संमोहन विद्या किंवा हिप्नोटिज्म (Hypnotism) क्लेयरवायन्स किंवा विश्वदृष्टि (Clairvoyance) पूर्व जाति ज्ञान, पर चित्तज्ञान आदि घटनाओंका निराकरण केवल भौतिक वादके दृष्टिकोणसे नहीं हो सकता।

बहुतसे मनुष्य इसी कारण वैज्ञानिक मन्तव्योंकी ओर भी शंकाकी दृष्टिसे देखने लगते हैं और कुछ वैज्ञानिक स्वयं भी आत्मवादकी ओर झुकने लगे हैं। यदि इस शरीरके नियामकके रूपमें आत्माको माने तो उपरि निर्दिष्ट सिद्धियोंका निराकरण हो सकता

है। इस प्रकार कुछ वैज्ञानिकोंके मतके अनुसार मरणोत्तर जीवन है और इस अवस्थामें कुछ एक जीवात्मा अपने-अपने मनके साथ किसी विचित्र पदार्थके देहका आश्रय लेकर इधर-उधर घूमते रहते हैं। गर्भावस्थामें गर्भ वृद्धिका नियामक तत्त्व कोई अपार्थिव तत्त्व होता है; आत्मा और मनके अस्तित्वके बिना गार्भ वृद्धि समझमें नहीं आ सकती। सामान्य जीवनमें नहीं दिखाई देनेवाली अनेक गुप्त शक्तियां मनुष्यके मनमें होती हैं जिनका विकास होनेपर मनुष्य उपरि निर्दिष्ट सिद्धियोंमेंसे थोड़ी बहुत प्राप्त कर सकता है। इन शक्तियोंका विकास मनोनिग्रहसे हो सकता है। संक्षेपमें आत्मा, मन, पुनर्जन्म, प्रेत सृष्टि, और योग सिद्धियोंके विषयमें आधुनिक विचार, इस दिशामें किये गये विचारोंकी दिशाका शनैः-शनैः अनुसरण कर रहे हैं*।

इन सब बातोंके लिए जिज्ञासुओंको जोड (Joad) मेक डुगल (Mc dougall) आदि वैज्ञानिक आत्मवादियोंके ग्रन्थ

---

* The vitalist hypothesis may fruitfully be invoked in explanation of other types of abnormal phenomena, for example, of those apparently abnormal faculties which are commonly distinguished by such words as Clairvoyance and lucidity. (They are known also by the general technical name of Crypto-psychism, to imply that such powers, if they exist, are normally not available to or are Ridden from consciousness. The possessors of these powers describe a man's past, claim to foresee his future and by a flash of intuitive insight, divine his hopes, his

को देखना चाहिए। इस बातका जिक्र यहां इसलिये किया गया है कि मानस रोगोंके वर्णनमें आयुर्वेदाचार्योंने मानसं रोगोंके कारणोंमें अमानुषोपसर्ग की भी गणना की है।

---

wishes and his fears. They can grasp peoples motives, peer into their minds, diagnose the secret promptings of their hearts. Perhaps the most striking examples of abnormal cognitive powers are afforded. by the knowledge of the future and the past.

To one and another here and there access may be permitted to the full Ridden powers of his own being. Some may even have found a way of access for them selves, and by discipline and meditation have barned to tap the sealed store of their innate vital endowment. It is in this direction that we may look for an explanation of the powers of the vogi and the mystic, and the humbler faculties of the Crystal gazer and the Clairvoyant may be traced to the same source.

(Joad-Guide to Moern Thought) Chapter 7

परिशिष्ट

शरीर और मनका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। नीरोगावस्था या रुग्णावस्थामें शरीर और मनके बीचका यह सम्बन्ध पूर्ववत् ही घनिष्ठ रहता है यह सर्वविदित बात है। जब मन प्रसन्न रहता है तब शारीरिक व्यापार बहुत सरलतासे होते हैं; इसके विपरीत जब मन उन्माद, अपस्मार आदि रोगोंसे पीड़ित होता है तब शरीरपर इसका बुरा प्रभाव होता है। इसी प्रकार जब शरीर नीरोग रहता है तब मन भी अपने व्यापारोंको सरलतासे कर सकता है और जब वह अतिसार, ज्वर आदि रोगोंसे आक्रान्त होता है तब अपने व्यापारोंको उचित रूपमें नहीं कर सकता। यह बात सर्वविदित है कि मनके रोग शरीरपर और शरीरके रोग मनपर प्रभाव डालते हैं।

इस मन और शरीरके परस्पर अविरत सम्बन्धकी नींव की तरह नाड़ीतन्त्र और ज्ञानेन्द्रियोंका विशेष वर्णन, यहाँ आधुनिक विज्ञानके आधारपर किया जाता है, जिससे मानस रोगोंके अध्ययनार्थियों को अपना विषय सरलतासे समझमें आ जायगा।

नाड़ीतन्त्र (Nervous System)*

शरीरान्तर्गत नाड़ीतन्त्रकी आधुनिक शहरोंके टेलीफोनके

---

* आयुर्वेदकी प्राचीन संहिताओंमें नाड़ीतन्त्रका वर्णन आधुनिकोंकी समझमें आ सके उसका ऐसा स्पष्ट वर्णन नहीं है, यद्यपि नाड़ीतन्त्रकी

साथ तुलना कर सकते हैं। अन्तर केवल यह है कि सजीव शरीरकी टेलीफोनकी व्यवस्था अत्युच्च कोटि की है।

सूक्ष्मदर्शक यन्त्रसे देखनेपर मनुष्यका नाड़ीतन्त्र बहुतसे सूक्ष्म नाड़ीकोषोंका बना हुआ दिखाई देता है। मस्तिष्कके विभिन्न भाग–लघुमस्तिष्क, सुषुम्णा आदि स्थानोंमें ये नाड़ीकोष चित्र-विचित्र आकारके मालूम होते हैं। हर एक नाड़ीकोषमें एक केन्द्र-कर्णिका किंवा केन्द्र (Nucleus) होता है जो उस कोषके पोषण व्यापारका नियन्त्रण करता है। हरएक विकसित नाड़ीकोषमें एक लंबी पतली शाखा होती है जो अक्षशाखा किंवा अक्षतन्तु (Axon) कही जाती है। इसकी अन्य छोटी और घुमावदार शाखाएँ लघु शाखा किंवा लघुतन्तु नामसे (Dendri-

---

विकृतियोंका वर्णन है, परन्तु तान्त्रिक ग्रन्थोंमें नाड़ीतन्त्रके मुख्य-मुख्य भागों और चक्रोंका वर्णन प्राप्त होता है (देखो—षट्चक्र निरूपण)। दोनों शास्त्रोंने परस्पर विचार-विनिमय किया हो ऐसा नहीं मालूम होता, किन्तु इसमें अपवाद रूप सिर्फ "आयुर्वेदसूत्र" नामक ग्रन्थ है जिसका लेखक इन तान्त्रिक बातोंसे परिचित है और जिसने ज्योतिषका ज्ञान भी संपादन किया है। चरक भगवानने योगको महत्त्व दिया है परन्तु नाड़ियोंके विषयमें कोई उल्लेख उन्होंने नहीं किया है। एवं आधुनिक आयुर्वेदिक साहित्यमें नाड़ीका अर्थ नलिका (Duet, Sinus) या पूयके बहनेका मार्ग बताया गया है और तान्त्रिक लोग नाड़ी शब्दका ज्ञानतन्तु (Nerve) के अर्थमें प्रयोग करते हैं। यह परिभाषा भेद, विविध विचारोंका द्योतक है। हमको तो शब्दोंकी अपेक्षा अर्थका प्रयोजन अधिक है इसलिये तान्त्रिक ग्रन्थोंमें मिलने-वाली वस्तुको ग्रहण करनेमें कृतकृत्यता माननी चाहिए।

tes) प्रसिद्ध है। मनुष्य-शरीरमें कुछ एक नाड़ीकोषोंके अक्ष-तन्तुओंकी लंबाई तीन फुटतक होती है।

शरीरकी व्यवस्थाको सुरक्षित रखनेके लिये इस प्रकारके बहुतसे नाड़ीकोष और उनके तन्तु यथास्थान संनिवेशित हैं। इन नाड़ीकोषों और इनकी शाखाओंको आधार देनेवाली बहुतसी शाखाओंसे युक्त, एक अन्य प्रकारके कोष भी नाड़ीतन्त्रमें हैं जो आधार कोष किंवा लूताणु कोष (Neuroglia) के नामसे प्रसिद्ध हैं।

पोषण—शरीरके अन्य कोषोंकी भाँति इन सूक्ष्म नाड़ी-कोषोंको भी पोषणकी अनिवार्य आवश्यकता होती है जो प्रकृति रक्त द्वारा प्रदान करती है। इस हेतु रुधिरवाहिनियोंकी सूक्ष्म-शाखाएँ नाड़ीतन्त्रमें व्याप्त होती हैं। उपरनिर्दिष्ट आधार कोष इनको भी सहारा देते हैं।

नाड़ीतन्त्रके विभाग(Parts of the N. System)—

नाड़ीकोष, लूताणु और इनको पोषण करनेवाली रक्त वाहिनियाँ सब मिलकर सम्पूर्ण नाड़ीतन्त्र बनता है, जो शरीरको बाह्य जगत्के साथ सम्पर्कमें लाता है और उसके व्यापारोंका नियन्त्रण करता है। अन्य प्राणियोंके नाड़ीतन्त्रके साथ तुलना करनेपर मनुष्यका नाड़ीतन्त्र अधिक विकसित मालूम होता है और यही उसके प्रभुत्वका मुख्य कारण है। नाड़ीतन्त्रके वभाग निम्न हैं—

(१) मस्तिष्क (Cere brum)

(२) लघुमस्तिष्क (Cere bllum)

(३) सुषुम्णा (Spinal cord)

(४) नाड़ियाँ (Nerves)

(५) स्वतन्त्र नाड़ी-मण्डल (Autonomic N. System)

अब इन विभागोंका क्रमशः विस्तारसे वर्णन करते हैं—

(१) मस्तिष्क*—मनुष्यके दिमाग किंवा मस्तिष्ककी रचना बहुत पेचीदी है। यह बीचमें से जुड़े हुए दो गोलार्धोंका बना हुआ है। उसकी बाह्य सतहपर बहुत-सी परिखायें-सीताएँ

---

* प्राचीन योगियोंका सहस्रार पद्म—

तदूर्ध्वेशङ्खिन्या निवसति शिखरे शून्यदेशे प्रकाशं।
विसर्गाधःपद्मं दशशतदलं पूर्णचन्द्रातिशुभ्रम् ॥
अधोवक्त्रं कान्तं तरुणरविकलाकान्ति किञ्जल्कपुञ्जम्।
लकाराद्यैर्वर्णैः प्रलसितवपुः केवलानन्दरूपम् ॥

देखो इस श्लोकसे शुरू होनेवाला मस्तिष्कका वर्णन। षट्चक्र निरूपण इसको शिवस्थान कहा है। इसे मनका स्थान भी कहा है। साथ ही इसमें वर्णित पीयूषधारा आधुनिक सेरीब्रोस्पाइनल फ्लुइडसे मिलती-जुलती है। इसके ज्ञानके फलका वर्णन करते हुए कहा है कि—

इदं स्थानं ज्ञात्वा नियतनिजचित्तो नरवरो
न भूयात् संसारे पुनरपि न बद्धस्त्रिभुवने।
समग्रा शक्तिः स्यान्नियम मनसस्तस्यकृतिनः
सदा कर्तुं हर्तुं खगतिरपि वाणी सुविमला ॥४९॥

षट्चक्र निरूपण

(Fissures) और कर्णिकाएँ (Gyri) दिखाई देती हैं। उसके भीतरी भागमें चार गुहाएँ (Ventricles) होती हैं जो ब्रह्मवारि नामक एक द्रवपदार्थसे (Cerebrospinalfluid) भरी रहती हैं। मस्तिष्कका अनुप्रस्थ (आड़ा) छेदन करनेपर वह श्वेत (White) और धूसर (भूरे Grey) इस प्रकारके रंगीन पदार्थोंसे बना हुआ मालूम होता है। बाहरकी ओर धूसर (भूरा) और भीतरकी ओर श्वेत पदार्थ इस प्रकार ये पदार्थ सामान्यतया रहते हैं। भूरे पदार्थमें अधिकांशतः नाड़ीकोष और श्वेत भागमें अधिकांशतः उसके सूत्र रहते हैं। ये सूत्र नाड़ीतन्त्रके विभिन्न विभागोंको एक-दूसरेके साथ संयुक्त करके उनके व्यापारोंमें सहायता करते हैं। पोषण करनेवाली रक्त वाहिनियाँ आदि भी यहीं फैली हुई दिखाई देती हैं।

मस्तिष्कके प्रत्येक गोलार्ध (Hemisphere) की बाहरी-भीतरी और नीचेकी इस प्रकार तीन सतहें (Surfaces) होती हैं। विभिन्न सीताओंसे उसके चार पिण्डोंमें चार विभाग हो जाते हैं, जिनके नाम निम्न हैं—

(१) ललाट पिण्ड (Frontal lobe)

(२) शङ्ख पिण्ड (Temporel lobe)

(३) पार्श्विक पिण्ड (Parietal lobe)

(४) पश्चिम पिण्ड (Oceipital lobe)

अन्य भी दो गौण पिण्डकाएँ होती हैं, जिनके नाम निम्न हैं—

(१) प्रच्छन्न पिण्डिका (Insula)

(२) गर्भ पिण्डिका (Limbic lobe)

अनेक प्रयोगों और आशुमृतक परीक्षाओंके बाद आधुनिक शरीर व्यापार शास्त्री इस निष्कर्षपर पहुंचे हैं कि मस्तिष्कके प्रत्येक गोलार्धकी बाह्य सतहपर विभिन्न चेष्टा क्षेत्र (Motor areas) एवं संज्ञा क्षेत्र (Sensory areas) होते हैं। जब तक ये क्षेत्र स्वस्थ रहते हैं तब तक ही मस्तिष्क अपना कार्य यथावत् कर सकता है। मस्तिष्कका वाम गोलार्ध शरीरके दाहिने आधे हिस्सेको चेष्टाएँ उत्पन्न करता है और इस हिस्सेसे आनेवले संज्ञा वेगोंको (Sensory impulses) ग्रहण करता है। दक्षिण गोलार्ध अपने साथीकी भाँति शरीरके बाँयें भागकी चेष्टाओं और उस भागके संज्ञा वेगोंको ग्रहण करता है।

चेष्टा क्षेत्रोंका वर्णन (Motor areas)—मस्तिष्क के प्रत्येक गोलार्धमें बाहरी सतहपर, ऊपरी किनारेके मध्य भागसे नीचे और आगेकी ओर जानेवाली एक सीता या परिखा होती है जो मध्य-कुल्या (Centrafissure) नामसे प्रसिद्ध है। यह परिखा मस्तिष्कके विभिन्न क्षेत्रोको पहचाननेके लिये एक महत्त्वका सीमा चिह्न है। इस परिखाके आगेका किनारा चेष्टा क्षेत्र है। इस क्षेत्रमें स्थित नाड़ीकोषोंसे उत्पन्न होनेवाले वेग, अक्षतन्तुके रास्ते चलकर शरीरकी दूसरी ओर जाकर हाथ-पैर, मुख आदिकी मांस पेशियोंको चेष्टाहेतु प्रवृत्त करते हैं। आँखकी चेष्टाओंका नियन्त्रण करनेके लिये दो क्षेत्र हैं—एक ललाट पिण्डके अग्र भाग-पर और दूसरा पश्चिम पिण्डके अन्तिम हिस्सेपर रहता है।

मनुष्योंमें आँख कितना महत्त्वका अङ्ग है यह दो क्षेत्रोंकी उपस्थितिसे मालूम हो सकता है। इतर प्राणियोंके मस्तिष्ककी सतहपर भी इस प्रकारके क्षेत्र दिखाई देते हैं परन्तु मनुष्यकी विशिष्टता बतलानेवाला एक क्षेत्र अधिक होता है जिसका नाम वाणी क्षेत्र (Speech centre) है। मनुष्येतर प्राणियोंमें यह नहीं दिखाई देता। यह अत्यन्त आवश्यक क्षेत्र ललाट पिण्डके पीछे और नीचे कोनेके समीप होता है।

संज्ञा क्षेत्र (Sensory areas)—उपरि निर्दिष्ट मध्य-कुल्याके पिछले किनारेपर स्पर्शसंज्ञा-क्षेत्र (Tactile area) होता है। शरीरकी त्वचा और मांस पेशियोंमें स्थित संज्ञा वाही सूत्रोंके सिरों अर्थात् संज्ञादान यन्त्रिकाओंपर (End-organs) होनेवाली उत्तेजनाओंके फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाले वेग संज्ञावाही नाड़ियोंके रास्ते इस क्षेत्रमें आते हैं और वस्तुओंके स्पर्श, आकार, भार, एवं शारीरिक अवयवोंकी स्थितिका ज्ञान मनुष्यको कराते हैं। पश्चिम पिण्डके पिछले हिस्सेपर रूप संज्ञा का क्षेत्र है (Visual area)। शंख पिण्डकी ऊपरकी धार और उसके कुछ पीछे की ओर श्रवण संज्ञाका क्षेत्र है (Auditory area), इन दोनों क्षेत्रोंका आपसमें घनिष्ठ सम्बन्ध है, क्योंकि कान और आँखके व्यापारोंके बीच घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। हम पैरोंपर खड़े हों या चलते हों तो दोनों क्रियाओंमें आँख और कानके गाढ़ सम्बन्धका मुख्य भाग रहता है, इसी प्रकार रससंज्ञा और गन्ध संज्ञाके क्षेत्र (Areas of taste & smell)

परस्पर सम्बन्धित होते हैं। ये शंख पिण्डके अग्रभाग तथा गोलार्धके नीचेके तलपर स्थित होते हैं।

अन्य क्षेत्र—पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके अन्तराधिष्ठानभूत इन क्षेत्रोंके अतिरिक्त गोलार्धके अन्य भी कुछ क्षेत्र विशेष जानने योग्य हैं।

(अ) संयोजक क्षेत्र (Association areas)—ये क्षेत्र संज्ञाधिष्ठान क्षेत्रोंके चारों ओर या उनके बीच स्थित होकर उनको आपसमें सम्बन्धित करते और इन्द्रियोंके सहयोगमें सहायता करते हैं। पार्श्व पिण्डोंपर इस प्रकारके विस्तृत क्षेत्र रहते हैं।

(ब) अज्ञात क्षेत्र (Silent areas)—मनुष्यके मस्तिष्ककी बाह्यसतह पर कुछ ऐसे प्रदेश हैं जिनका कार्य अभी तक मालूम नहीं हुआ है। उदाहरणतया ललाट पिण्डके बाहरकी ओरके अग्रभागका कार्य क्या है, यह अभी तक निश्चित रूपमें नहीं जाना जा सका है। परन्तु इस भागपर आघात लगे हुए रोगियोंकी परीक्षासे; और मानसिक रोगोंसे पीड़ित होकर मरे हुए मनुष्योंके मस्तिष्कके इस हिस्सेकी परीक्षा करनेपर वैज्ञानिकोंने ऐसा अनुमान किया है कि ये अज्ञात क्षेत्र मनुष्यकी बुद्धिके उच्चतम व्यापार जैसे—रसास्वादन, निर्णय आदि के लिये उत्तरदायी हैं। कुछ विद्वानोंके मतानुसार किसी-किसी मनुष्यमें दिखाई देने वाली प्रतिभा इन क्षेत्रोंके विकासका फल होती है और भविष्यमें विकासक्रमके नियम (Law of Evolution) के अनुसार ये क्षेत्र अधिकाधिक विकसित होंगे और मनुष्य-जाति अभी जिस दशामें है इससे अधिक उच्चकोटिकी बनेगी।

२—लघुमस्तिष्क (Cerebellum)

इस भागका कार्य मांस पेशियोंके व्यापारोंमें सहकार किंवा सामंजस्य स्थापित करना है। इञ्जीनियर मकानका नकशा तैयार करके उसे बनानेकी आज्ञा देता है और मजदूर, राज, बढ़ई आदि अपना कार्य शुरू कर देते हैं, परन्तु इन सबके कार्योंमें सहयोग और मेल रखनेके लिये एक चौधरीकी सर्वदा आवश्यकता रहती है। उसी प्रकार मस्तिष्ककी आज्ञाओंका पालन करानेके लिये इस लघु मस्तिष्क रूप चौधरीकी सर्वदा आवश्यकता होती है। शरीरान्तर्गत अस्थि सन्धियों, मांस पेशियों, आँख, नाक, कान, त्वचा आदि स्थानोंसे संज्ञावाही सूत्र निकलकर ऊपर मस्तिष्ककी ओर जाते हुए लघुमस्तिष्कमें भी अपनी-अपनी शाखा भेजते हैं। उधर लघुमस्तिष्कका मस्तिष्कके साथ गाढ़ सम्बन्ध हो इसमें तो कोई आश्चर्य ही नहीं है। अर्थात् मस्तिष्ककी आज्ञाओंका पालन करानेमें और शरीरके संरक्षणके लिये आवश्यक कुछ अनैच्छिक व्यापारोंका समुचित संचालन करानेमें लघु मस्तिष्कका प्रधान हिस्सा होता है।

यहाँ यह बात विशेष स्मरणीय है कि लघुमस्तिष्कका वाम अर्धभाग, शरीरके वाम अर्धभागके साथ और उसका दक्षिण अर्ध भाग शरीरके दक्षिण अर्धभागके साथ सम्बन्धित रहता है। अर्थात् इस विषयमें—शरीरके साथ सम्बन्धमें—वह मस्तिष्कसे भेद रखता है। मस्तिष्क और लघुमस्तिष्कका शरीरके साथका सम्बन्ध ऐसा विचित्र क्यों है इसका स्पष्टीकरण अभी तक कोई

नहीं कर सका है। इसके अतिरिक्त लघुमस्तिष्ककी बाह्य सतह प मस्तिष्ककी सतहकी भाँति क्षेत्र नहीं होते। (कुछ विद्वानों मतमें ऐसे क्षेत्र होते हैं इसलिये यह प्रश्न विवादग्रस्त है)

३---सुषुम्णा* (Spinal cord)

नाड़ीतन्त्रका यह महत्त्वपूर्ण हिस्सा मेरुदंडके भीतर रहता है। ऊपरकी ओर वह मस्तिष्क तलके साथ सम्बन्धित है। नीचेकी ओर कटि प्रदेश तक आकर वह पतला होकर निराधार लटकता है। ग्रीवा, पृष्ठभाग, कटि प्रदेश और त्रिक भागमें इससे बहुत-सी नाड़ियाँ निकलती हैं जो शरीरकी शाखाओं, एवं ग्रीवा, कोष्ठ, आदि अवयवोंमें फैलती हैं। जिस स्थानपर ये नाड़ियाँ निकलती हैं वहाँ वह अधिक स्थूल मालूम पड़ता है। मस्तिष्ककी भाँति सुषुम्णा भी श्वेत और धूसर पदार्थोंसे बनी है। इसके मध्य भागमें भी एक नाली-सा रिक्तस्थान होता है जो अनुप्रस्थ (आड़ा) छेदनमें एक छिद्र-सा दिखाई देता है। मस्तिष्कसे इसमें विलक्षणता यह है कि सुषुम्णामें धूसर द्रव्य भीतरकी ओर और श्वेत

---

* मेरोर्बाह्य प्रदेशे शशि मिहिरशिरे सव्यदक्षे निषण्णे।
मध्ये नाड़ी सुषुम्णा त्रितयगुणमयी चन्द्रसूर्याग्निरूपा॥
धुस्तूरस्मेरपुष्पग्रथिततमवपुः कन्दमध्या शिरःस्था।
वज्राख्या मेढ्र देशाच्छिरसि परिगता मध्यमेऽस्याज्वलन्ती॥

षट् चक्रनिरूप

'या मुण्डाधार दण्डान्तर विवर गता'

त्रिपुरासार समुच्च

द्रव्य बाहरकी ओर होता है। सुषुम्णाके रास्ते चेष्टावहवेग नीचे आते हैं और संज्ञावहवेग ऊपर मस्तिष्ककी ओर जाते हैं। अर्थात् सुषुम्णा दोहरी रेल्वे लाइन-सी है। अब हम नाड़ीतन्त्रके इन तीनों भागोंका आन्तरिक सम्बन्ध देखेंगे।

इस प्रकरणके प्रारंभमें हम नाड़ी कोषों एवं उनसे निकलनेवाले अक्षतन्तुओंका वर्णन कर चुके हैं। इन अक्षतन्तुओंका विशिष्ट गुण यह है कि इनमें होकर वेग एक ही दिशामें और कोषके बाहर जा सकते हैं और कोषकी छोटी शाखाओंके रास्ते अन्य कोषोंसे आनेवाले वेग इसी कोषमें प्रविष्ट हो सकते हैं। अर्थात् वेगकी दिशा बदली नहीं जा सकती। यदि यह दीर्घतन्तु अपने कोषसे कटकर अलग हो जाय तो वह जी नहीं सकता क्योंकि उसका जीवन वह जिस कोषसे निकलता है उसकी केन्द्र कणिका के अधीन है। इसके विपरीत यदि उसका कोई हिस्सा कोषसे कटकर अलग हो गया हो तो जो भाग कोषसे लगा रहता है वह फिरसे बढ़ने लगता है, क्योंकि उसका पोषककेन्द्र सुरक्षित रहता है और कटे हुए मेंहदीके पौधेकी भाँति अपने पूर्व आकारको प्राप्त कर लेता है। विभिन्न कोषोंके अक्षतन्तु इकट्ठे होकर सूक्ष्म नाड़ीसूत्र (Nerve fibres) बनाते हैं और सूक्ष्म नाड़ीसूत्र मिलकर बड़ी नाड़ियाँ (Nerve trunks) बनती हैं।

कार्योंके अनुसार नाड़ी तन्तुओंके दो प्रकार हैं; संज्ञावाही (Sensory) और चेष्टावाही (Motor)। इनमें संज्ञावाही तन्तु, शरीरके भीतरके भागों या त्वचामें स्थित उनके प्रान्त भाग

उत्तेजित होनेपर उत्पन्न होनेवाले वेगोंको मस्तिष्ककी ओर ले जाते हैं। ये तन्तु सुषुम्णामें प्रविष्ट होकर ऊपरकी ओर जाते हुए सुषुम्णा शीर्षकमें (Medulla obongata) मध्य रेखाको लांघ कर अपनी बाजू बदलते हैं और मस्तिष्कके मध्य भागमें स्थित दृक् कन्दोंमें (Optic Thalami) प्रविष्ट होते हैं, और वहाँ स्थित नाड़ी कोषोंके चारों ओर फैल जाते हैं। दृक् कन्दोंमें स्थित कोषोंके अक्षतन्तु ऊपर की ओर चलकर मस्तिष्ककी बाह्य सतहपर स्थित विभिन्न संज्ञा क्षेत्रोंमें जाते हैं और स्पर्श, शैत्य, ऊष्मा, वेदना आदि का ज्ञान कराते हैं। इस सम्पूर्ण संज्ञावह मार्ग (Sensory Path) में दृक् कन्दोंका स्थान बहुत महत्त्वका है। इन दोनों कन्दोंके बीचका रिक्त भाग तीसरी गुहा या ब्रह्म गुहा (Third ventricle) नामसे प्रसिद्ध है। इन दोनोंके नीचेके प्रदेशमें मस्तिष्कके तल भागमें मूल-कन्द (Basal Ganglia) नामसे प्रसिद्ध बड़े कोष समूह स्थित हैं। इन सब कन्दोंका मस्तिष्क के साथ गाढ़ सम्बन्ध है।

लगभग इसी प्रकार चेष्टावाही सूत्र मस्तिष्क की बाहरी सतह पर स्थित नाड़ी कोषोंके अक्ष तन्तु चेष्टा क्षेत्रोंमें स्थित नाड़ी कोषों में हमारी इच्छाके अनुसार उत्पन्न होनेवाले वेगोंको नीचे लाते हुए सुषुम्णा शीर्षकमें मध्य रेखाको लाँघकर अपनी बाजू बदलते हैं और सुषुम्णामें विपरीत बाजूके अर्ध भागमें नीचे उतरते हुए दिखाई देते हैं। ये तन्तु सुषुम्णामें धूसर द्रव्योंके भीतर स्थित नाड़ी कोषोंके चारों ओर फैलते हैं। मस्तिष्कसे नीचे उतर आने-

वाले चेष्टावाही सूत्र सुषुम्णामें विभिन्न स्थानोंमें रुक जाते हैं। इसका परिणाम यही होता है कि सुषुम्णाके विभिन्न भाग जिनसे नाड़ियाँ निकलती हैं वे मस्तिष्कके अंकुशके नीचे आ जाते हैं। सुषुम्णामें स्थित नाड़ी कोषोंसे बाहर निकलनेवाले अक्ष तन्तु एक साथ मिलकर और आवरणसे लिपटकर बड़ी नाड़ियाँ बनाते हैं, जो शरीरके विभिन्न प्रदेशोंमें जाती हैं।

इन दोनों प्रकारके तन्तुओंके अतिरिक्त एक तीसरे प्रकारके तन्तु भी हैं, जो संयोजक तन्तु (Association fibres) नामसे प्रसिद्ध हैं। ये छोटे होनेपर भी मस्तिष्क, लघु मस्तिष्क, सुषुम्णा आदि भिन्न-भिन्न भागोंको एक दूसरेके साथ निकट सम्पर्कमें लाते हैं। यदि यह व्यवस्था न होती तो खोपड़ीमें बन्द मस्तिष्कको सम्पूर्ण शरीरपर नियन्त्रण करना अशक्य हो जाता। चेष्टावाही तन्तुओंको आघात पहुंचनेपर पक्षाघात, एकाङ्गाघात इत्यादि विकृतियाँ होती हैं और संज्ञावाही तन्तुओंको आघात पहुंचनेपर शरीरके उन-उन भागोंमें संज्ञानाश हो जाता है।

४ मस्तिष्क और सुषुम्णासे निकलनेवाली नाड़ियाँ-
(Cerebrospinal Nerves)—

मस्तिष्कके प्रत्येक गोलार्धसे बारह नाड़ियाँ निकलती हैं, जो शीर्षण्य नाड़ियों (Cranial nerves) के नामसे प्रसिद्ध हैं। उनके नाम निम्न हैं।

*(१) घ्राण नाड़ी (Olfactory N.)

*(२) दृष्टि नाड़ी (Optic N.)
(३) नेत्रचेष्टनी नाड़ी (Oculomotor N.)
(४) कटाक्षिणी नाड़ी (Trochlear N.)
*(५) त्रिधारा नाड़ी (Trigeminal N.)
(६) नेत्रपार्श्विकी नाड़ी (Abducent N.)
(७) वक्त्र नाड़ी (Facial N.)
*(८) श्रुति नाड़ी (Accoustic N.)
(९) कण्डरासनी नाड़ी (Glossopharyngeal N.)
(१०) प्राणदा नाड़ी (Vagus N.)
(११) ग्रीवा पृष्ठगा नाड़ी (Accessory N.)
(१२) जिह्वा मूलिनी नाड़ी (Hypoglossal N.)

इस तालिकामें * चिह्नाङ्कित नाड़ियाँ गंध, रूप, स्पर्श, शब्द, और रस आदि इन्द्रियार्थोंका मस्तिष्कको ज्ञान करती हैं। इसलिये उचित ही कहा गया है कि—

प्राणाः प्राणभृतां यत्र श्रिताः सर्वेन्द्रियाणि च।
यदुत्तमाङ्गमङ्गानां शिरस्तदभिधीयते ॥ चरक अ. १७-१२

शिरस्ताल्वन्तरगतं सर्वेन्द्रियपरं मनः।
तत्रस्थं तद्धि विषयानिन्द्रियाणां रसादिकान्।
समीपस्थान् विजानाति त्रीन्भावांश्च नियच्छति
तन्मनः प्रभवंचापि सर्वेन्द्रियमयं बलम्।
भेल. सं. चि. स्था अ. ७

इसी प्रकार सुषुम्णाकी प्रत्येक बाजूसे इकतीस नाड़ियाँ

निकलती हैं जो शरीरके विभिन्न भागोंमें जाती हैं। वे मेरुजा (Spinal N.) नामसे प्रसिद्ध हैं। इन सब नाड़ियोंमें शीर्षण्य और मेरुजाओंमें कुछ संज्ञावह तन्तुओं, कुछ चेष्टावह तन्तुओं और कुछ दोनों प्रकारके तन्तुओंके मिलनेसे बनी होती हैं। अर्थात् वे क्रमशः संज्ञावाही नाड़ियाँ, चेष्टावाही नाड़ियाँ और मिश्र नाड़ियाँ (Mixed Nerves) इन नामोंसे प्रसिद्ध हैं। शीर्षण्य नाड़ियोंमें इन तीनों प्रकारकी नाड़ियाँ देखनेमें आती हैं परन्तु मेरुजा सम्पूर्ण नाड़ियाँ मिश्र नाड़ियाँ हैं। अपने नामोंके अनुसार वे वेगोंको ऊपरकी ओर या नीचेकी ओर ले जाती हैं।

(५) स्वतन्त्र* नाड़ीमण्डल (Autonomic Nervous System)--नाड़ीतन्त्रका यह महत्त्वपूर्ण भाग स्वतन्त्र नाड़ीमण्डल नामसे इसलिये प्रसिद्ध है कि वह हमारी इच्छाके अधीन नहीं है और अपना कार्य स्वतन्त्र रूपमें करता रहता है। जीवनको स्थिर रखनेके लिये कुछ महत्त्वपूर्ण व्यापार इस नाड़ीमण्डलके अधीन हैं। जैसे रुधिराभिसरण, श्वासोच्छ्वास, अन्नपाचन, मूत्रोत्पादन, प्रजनन आदि व्यापार इस मण्डलके कारण ही चलते हैं। शरीरके लोम एवं निःस्रोत ग्रन्थियाँ (Dcuet less

---

* स्वतन्त्र नाड़ीमण्डलका इड़ा और पिङ्गला नामसे वर्णन किया गया है

इड़ावामेस्थिता नाड़ी दक्षिणे पिङ्गलामता।
तयोर्मध्यगता नाड़ी सुषुम्णावंशमाश्रिता॥

विश्वानाथ-कृत षट्चक्र विवृतिः

glands) भी इन्हींके नियन्त्रणमें हैं। हम जागते हों या नींदमें हों, बैठे हों या खड़े हों, उक्त जीवन व्यापार इस मण्डलके नियन्त्रणमें अविरत चलते रहते हैं।

इस नाड़ी मण्डलमें भी दो प्रकारके तन्तु—संज्ञावाही और चेष्टा-वाही—होते हैं। वे कभी मस्तिष्क या सुषुम्णामेंसे निकलती हुई नाड़ियोंके साथ तो कभी रक्तवाहिनियोंकी दीवारोंके चारों ओर फैलकर शरीरमें सर्वत्र फैल जाते हैं। स्वतन्त्र नाड़ी-मण्डलके तन्तु भी नाड़ी कोषोंसे उत्पन्न होते हैं। इनके जन्मदाता नाड़ी कोषोंके समूहों किंवा कन्दों (Ganglia) में से कुछ मस्तिष्क और सुषुम्णाके भीतर, कुछ सुषुम्णाके दोनों ओर एक खड़ी पंक्तिमें स्थित मालूम पड़ते हैं। सुषुम्णाके दाहिनी ओर स्थित स्वतन्त्र नाड़ी मण्डलके कन्दोंकी पंक्तिको पिङ्गला (Rt. sympathetic trunk) और इस प्रकारकी बांयी पंक्तिको इडा (Left sympathetic trunk) कहते हैं। प्राचीन तान्त्रिकोंने अपने ग्रन्थोंमें इनका बहुत सुन्दर वर्णन किया है और इन तीनोंको शरीरकी प्रधान नाड़ियाँ कहा है। कुछ खास-खास स्थानोंमें इस नाड़ी मण्डलके तन्तु परस्पर मिलकर गुल्म सदृश चक्र (Plexuses) बनाते हैं*। मस्तिष्क, सुषुम्णा आदिके साथ भी इनका

---

* इन चक्रोंके नाम निम्न हैं—

(१) मूलाधार चक्र (pelvic Plexus)

(२) स्वाधिष्ठान चक्र (Hypogastric plexus)

(३) मणिपूर चक्र (Solar ,,)

गाढ़ सम्बन्ध होता है। मानसिक व्यापारोंके साथ इस नाड़ीमंडल का विशेष सम्बन्ध होता है यह ध्यानमें रखना चाहिये। जब हम उत्तेजित हो जाते हैं, या आवेगोंके प्रवाहमें खींचे जाते हैं तब (Emotional storm) यह सम्बन्ध विशेष लक्षित होता है।

शरीरकी निःस्रोत ग्रन्थियाँ (Ductless glands)

शरीरमें ऐसी बहुतसी ग्रन्थियां (Glands) हैं जो अपना स्राव (Secretion) उत्पन्न करती हैं और अपने स्रोतोंके रास्ते उनको यथास्थान पहुंचाती हैं। उदाहरणतया लालास्रावी ग्रंथियां हैं। परन्तु कुछ ऐसी ग्रन्थियां भी होती हैं जिनके स्रोत होते

---

(४) अनाहत „ (Cardial Plexus)
(५) विशुद्धि „ (Carotid „)
(६) आज्ञाचक्र „ (Cavernous „)

सुषुम्णा, इड़ा, पिङ्गलाके अतिरिक्त भी कुछ नाड़ियोंकी गणना की है जो शरीरमें फैलती हैं। इनमें मस्तिष्क और सुषुम्णासे उत्पन्न होनेवाली नाड़ियों का समावेश हो जाता है। ऐसी असंख्य नाड़ियाँ साढे तीन करोड़ हैं परन्तु इनमें भी ग्यारह मुख्य हैं। उनके नाम निम्न हैं:—

(१) गांधारी—बांयी आँखकी सब नाड़ियाँ
(२) पूषा—दाहिनी आँखकी सब नाड़ियाँ
(३) शङ्खिनी—ग्रीवा चक्रमेंसे कानकी ओर जानेवाली नाड़ी (Auricular branch of the Cervical Plexus)
(४) कुहू—(Pubic Nerve) यह नाड़ी दूसरी, तीसरी और चौथी त्रिक नाड़ियोंके तन्तुओंके संयोगसे बनती है।

ही नहीं और जो अपने स्रावोंको सीधा रक्त प्रवाहमें ही छोड़ देती हैं जिनसे शरीरमें विशिष्ट प्रकारके व्यापार उत्पन्न होते हैं। इस प्रकारके स्राव, अन्तःस्राव (Internal secretion) नामसे प्रसिद्ध हैं। वे शरीरमें रक्तके साथ घूमकर बड़े महत्वपूर्ण व्यापार करते हैं। कुछ ग्रन्थियाँ दोनों तरहके स्राव उत्पन्न करती हैं और अपने वाह्य स्रावको स्रोतके द्वारा और अन्तः स्रावको रुधिराभिसरणके रास्ते शरीरमें भेज देती हैं उदाहरणतया अग्न्याशय। इन ग्रन्थियोंमें प्रधान भूत तीन ग्रन्थियोंका वर्णन यहाँ देते हैं।

---

(५) वारुणी—त्रिक चक्रमेंसे ऊपर और नीचे जानेवाली नाड़ियाँ

(६) यशस्विनी—महागृध्रसी (?) (Sciatic Nerve) इसका विस्तार पैरके अंगूठे तक बताया गया है।

(७) पयस्विनी—दाहिनी कर्ण नाड़ी

८) अलंबुषा—अनुत्रिक नाड़ी (Coccygeal N.)

९) विश्वोदरा—कटि चक्रमेंसे ऊपर और नीचे जानेवाली नाड़ियां

(१०) सरस्वती—जिह्वामें जानेवाली नाड़ियाँ

(११) हरित जिह्वा—बांयी आँखके कोनेसे बाँये पैरके अंगूठे तक जानेवाली नाड़ी, कहा नहीं जा सकता यह कौनसी है।

आधुनिक पर्याय मैंने अनुमानके आधारपर दिये हैं। विशेष विवेचनके लिये देखिये--शाण्डिल्य उपनिषद और Positive sciences of the Hindus by Sir B.N. Seal. उन्होंने संगीत रत्नाकर और योगार्णवसे उद्धरण दिये हैं।

थायरोईड् (Thyroid) किंवा चुल्लिका ग्रन्थि

यह बहुत महत्त्वकी ग्रंथि गलेके सामनेकी ओर मध्य रेखामें टेंटुएके नीचे रहती है। यह रक्तवाहिनियोंसे घिरी रहती है। इससे सूचित होता है कि यह शरीरके लिये बहुत उपयोगी है। इसका अंतःस्राव रक्तमें सीधा ही प्रविष्ट होता है और सारे शरीरमें व्याप्त हो जाता है। इसमें आयोडिन नामक प्रसिद्ध मूलद्रव्य अधिक मात्रामें मिलता है। यह स्राव शरीरके विभिन्न कोषोंकी वृद्धिको उत्तेजना देता है, हृदय, फुफ्फुस आदिकी क्रियाओंमें सहायता करता है और शरीरमें ऊष्माक मात्राका भी नियन्त्रण करता है। मनुष्यों और अन्य प्राणियोंपर किये गये प्रयोगोंसे निम्न बातें सिद्ध हुई हैं—

(अ) जिन बच्चोंमें इस ग्रन्थिका यथोचित विकास नहीं हुआ होता या विकृत हो गई हो, उनके शरीरकी वृद्धि नहीं होती और वे बौने रहते हैं, (Cretins)। यह नहीं, इनका मानसिक विकास भी कुण्ठित हो जाता है, इसलिये वे बिल्कुल जड़से (Idiots) रहते हैं। ऐसे बच्चोंको यदि दूसरे प्राणियोंकी चुल्लिका ग्रंथिका स्राव दिया जाये तो उनमें चमत्कारपूर्ण परिवर्तन दिखाई देते हैं। उनके शरीर एवं मनका विकास फिरसे शुरू होता है और वे बुद्धिशाली हो जाते हैं। इसी प्रकार बड़ी वयके मनुष्योंमें भी, इस ग्रन्थिकी विकृतिसे हाथ, पैर, गला, इत्यादि स्थानोंमें मेदके स्तर जम जाते हैं (Myxœdema) उनके शरीर स्थूल हो जाते हैं। त्वचा रूक्ष हो जाती है और रोंवे झड़ जाते हैं। इसके अतिरिक्त वे अत्यन्त आलसी बन जाते हैं और मानसिक व्यापार दुर्बल होनेके

कारण, शीघ्र विचार या निर्णय नहीं कर सकते। उनको पूछे हुए प्रश्नोंका उत्तर देनेमें देर लगती है।

इससे विपरीत जब इन ग्रन्थियोंका अन्तःस्राव बढ़ जाता है, तब रोगीका हृदय तेजीसे धड़कने लगता है; शरीरपर बहुत पसीना होता है और उसके नेत्र गोलक मानो बाहर निकल आये हों ऐसे भयानक और बड़े-बड़े मालूम होते हैं (Exophthalmos)। उसका शरीर सूखने लगता है और वह अतिशय उतावला और चिड़चिड़ा हो जाता है। उसके हाथ पैरमें कम्पन होने लगते हैं। इससे ग्रंथिकी क्रियाओंपर स्वतन्त्र नाड़ी मण्डल के तन्तुओंका नियन्त्रण होता है आगे वर्णित दो ग्रंथियोंके व्यापारोंके साथ भी इस ग्रन्थिका गाढ़ सम्बन्ध होता है।

एड्रीनल (Adrenal) किंवा अधिवृक्क ग्रन्थि

इस नामसे प्रसिद्ध तिकोनाकार ग्रंथियाँ प्रत्येक मूत्र पिंडके ऊपर स्थित हैं। ये दोनों ग्रन्थियाँ (Adrenaline) एड्रीनालिन नामसे प्रसिद्ध स्रावको पैदा करती हैं। सामान्य अवस्थामें इस स्रावकी मात्रा रक्तमें कम होती है, परन्तु जब मनुष्य (किंवा प्राणी) डरता है या क्रोध करता है तब इस स्रावकी बहुत बड़ी मात्रा रक्तमें मिल जाती है। परिणामतः हृदयका वेग बढ़ जाता है, श्वासोच्छ्वास तेजीसे चलते हैं, रक्तका दबाव (Blood pressure) बढ़ जाता है, रोवें खड़े हो जाते हैं, नेत्रकी पुतली फैलती है और रक्तमें द्राक्षा शर्करा (Glucose) की मात्रा भी बढ़ जाती है जिसका उद्देश मांस पेशियोंको विशेष पोषण पहुंचाना

होता है। कोई भी मनुष्य (या प्राणी) गुस्सा होकर दूसरेसे लड़नेके लिये दौड़े उस समयकी उसकी अवस्थाको पाठक लक्ष्यमें रखें तो इस स्रावके प्रभाव याद रह जायँगे। जब इस ग्रन्थिमें विकृति होती है या किसी भी कारणसे उसका स्राव कम होता है तब मनुष्यका शरीर श्याम वर्णका हो जाता है। उसकी मांस पेशियाँ शिथिल हो जाती हैं। हृदयकी गति मन्द हो जानेसे रक्तका प्रवाह ठीक नहीं चलता। उसका उत्साह मन्द हो जाता है और प्रजनन अवयव पर भी विचित्र प्रभाव होता है। उदाहरणतया इस ग्रन्थिकी विकृतिके कारण छोटे लड़कोंकी जननेन्द्रिय बहुत बड़ी हो जाती है। तरुण स्त्रियोंमें पुरुषत्वके चिन्ह जैसे—मूछोंकी रेखा फूट आना, स्तनोंका छोटा हो जाना, भग शिश्निका (Clitoris) का बड़ा हो जाना इत्यादि—मालूम होने लगते हैं। सगर्भावस्थामें ये ग्रन्थियाँ थोड़ी बड़ी हो जाती हैं जिससे सूचित होता है कि इस अवस्थामें इनके व्यापार माताके लिये बहुत उपयोगी होते हैं।

पिच्युइटरी बोडी (Pituitary Body) पोषणक ग्रन्थि

यह ग्रन्थि मस्तिष्कके तलभागमें स्थित है। वह बहुत-से अन्तःस्राव पैदा करती है जिनका प्रभाव विभिन्न शारीरिक व्यापारों पर होता है। इसके अन्तःस्राव कम होने पर छोटे बच्चोंका मानसिक एवं शारीरिक विकास स्थगित हो जाता है। उनकी अस्थियाँ कमजोर रहती हैं। यौवनका प्रारम्भ होनेपर भी इस प्रकारके रोगियोंमें प्रजनन अवयव समुचित रूपमें विकसित

नहीं होते और मूँछ, दाढ़ी, स्तन आदि गौण जातिसूचक लिङ्ग (Secondary sexual characters) पर्याप्त रूपमें नहीं प्रकट होते। जब इसका स्राव हदसे ज्यादा होता है तब विवर्धमान बच्चोंके हाथ पैर और जबड़की अस्थियां हदसे अधिक बड़ी हो जाती हैं, इससे वे देखनेमें राक्षस-से मालूम होते हैं। उनके हृदय तेजीसे धड़कते हैं, रक्तका दबाव बढ़ जाता है और शरीरके ऊपरके अर्धभागमें मेदके स्तर जमने लगते हैं। इससे भी अधिक विचित्र घटना यह है कि इस ग्रन्थिकी विकृतिके परिणाम स्वरूप स्त्रियोंमें पुरुषोंके और पुरुषोंमें स्त्रियोंके गौण जाति सूचक लिङ्ग प्रकट होते हैं !! उदाहरणके तौर पर स्त्रियोंमें यकायक मूछें फूटने लगती है, रजो दर्शन बन्द हो जाता है, उनका कंठ कर्कश होने लगता है और स्तन संकुचित होकर छोटे बन जाते हैं। इसके विपरीत पुरुषकी आवाज कोमल हो जाती है। दाढ़ी मूँछ बहुत कम रह जाती है। स्तन बड़े हो जाते हैं और जननेन्द्रियां शिथिल हो जाती हैं और मेद से ढँक जाती हैं इत्यादि।

स्त्री और पुरुषके शरीरमें प्रजनन व्यापारके अवयवोंका विकास इस ग्रन्थिके स्रावपर निर्भर है। इतना ही नहीं, सगर्भावस्थामें भी इसका प्रभाव स्तन व्यापार पर होता है। व्यक्तिकी मानसिक शक्तियोंपर भी इसका प्रभाव मालूम होता है। इस ग्रन्थिके बहुत-से स्राव हैं। प्रत्येककी उत्पत्ति और क्रियाके विषयमें जिज्ञासुओंको शारीर व्यापार शास्त्रके ग्रन्थ देखने चाहिये।

इन तीनों ग्रन्थियोंके स्रावोंका प्रभाव नाड़ी-तन्त्रपर—मानसिक व्यापारोंपर—अधिकतया होनेके कारण इनका यहाँ वर्णन किया गया है। परन्तु इनके अतिरिक्त पुरुष देहमें वृषण, और स्त्री शरीरमें बीजाशय (Ovaries) भी विशिष्ट प्रकारके अन्तः स्राव पैदा करते हैं। इनकी वृद्धि या क्षय मानसिक विकृतियोंको पैदा करते हैं। उदाहरणतः काम वृत्ति (Sexual instinct) की प्रबलता या दुर्बलता है।

नाड़ी तन्त्र—सामान्य विवेचन

प्राणि शास्त्र (Zoology) की दृष्टिसे विभिन्न प्राणियोंके नाड़ीतन्त्रोंका अध्ययन करनेसे मालूम होता है कि यह तन्त्र भी क्रमशः विकसित हुआ है। मनुष्योंमें वह सबसे अधिक विकसित स्वरूप खाई देता है। मानसिक शक्तियोंका विकास भी इसीके अनुसार हुआ प्रतीत होता है। किसी भी प्राणीके व्यवहार (Behaviour) के विषयमें उसके नाड़ीतन्त्रके अध्ययनसे अनुमान किये जा सकते हैं।

अब मनुष्य शरीरमें यह तन्त्र किस तरह काम करता है इस विषयका थोड़ा विचार करते हैं। नाड़ी कोषोंके अक्षतन्तुओंसे बनी हुई नाड़ियाँ टेलीफोनके तारकी भाँति सन्देश लाती हैं और ले जाती हैं। नाड़ियोंके सिरोंपर होनेवाली उत्तेजनाओंके (Stimuli) परिणाम-स्वरूप नाड़ीतन्तुमें—नाड़ी तन्तु निर्मापक परमाणुओंमें होनेवाले परिवर्तनको आन्दोलन किंवा वेग (Impulse) कहा जाता है। इस प्रकारके वेग शरीरके

प्रान्त भागों तथा इन्द्रिय द्वारोंमें उत्पन्न होकर मस्तिष्ककी ओर जाते हैं या मस्तिष्कसे नीचे आते हैं। परन्तु इन परमाणुओंमें होनेवाले आन्दोलन (Molicular Disturbance) का स्वरूप क्या है यह अभी तक कोई नहीं जानता, क्योंकि आन्दोलन प्रयोगोंसे उत्पन्न करनेपर भी परिणाम तो वही होता है। उदाहरणके तौरपर आँख या कानपर प्रकाश ध्वनिके प्रभावके कारण नेत्रनाड़ी और श्रवण नाड़ीमें वेग उत्पन्न होते हैं ; ये वेग मस्तिष्कके संज्ञाक्षेत्रोंमें पहुंचनेपर मनुष्यको रूप और ध्वनिकी प्रतीति (Sensation) होती है ऐसा हमारा अनुभव है। इन्हीं आँख और कानकी नाड़ियोंको, विद्युत् प्रवाहसे उनके मार्गमें किसी भी स्थानपर उत्तेजित किया जाय तो भी मनुष्यको रूप और ध्वनिका प्रतीति होती है। आँख और कानके रोगोंमें विकृत पदार्थ एकत्र होकर जब इन नाड़ियोंको उत्तेजित करते हैं तब रोगीको प्रकाशका भास होता है और कानमें ध्वनि सुनाई पड़ती है। इसी प्रकार चेष्टा वह नाड़ियोंको उनके मार्गमें किसी भी स्थानपर विद्युत् प्रवाहसे उत्तेजित करनेपर चेष्टायें उत्पन्न होती हैं। आक्षेपक इत्यादि रोगोंमें विषयजन्य उत्तेजनाओंके प्रभावसे वेग उत्पन्न होनेपर रोगीको आक्षेप आते हैं। अर्थात् वेगोंके अस्तित्व को जाननेपर भी हम उनके स्वभावको अभी नहीं जानते। प्राचीनोंने वायुको "अचिन्त्यशक्ति" कहा है। इसीके समान यह बात है।

मेंढककी नाड़ियोंमें वेगोंकी गति प्रति सेकेंड २७ मीटर और

इतर उष्णरक्त प्राणियोंमें प्रति सेकंड ९०-१२० मीटर तक नापी जा सकी है। संज्ञावह नाड़ियोंकी अपेक्षा चेष्टावह नाड़ियोंमें आन्दोलन अधिक—कोई तीन गुनी—तेजीसे चलते मालूम हुए हैं। पतली नाड़ियोंकी अपेक्षा मोटी नाड़ियोंमें वेग अधिक तेजीसे चलते हुए जाने गये हैं।

जब मनुष्योंमें वेग चलने लगते हैं तब उनमें विद्युन्मय परिवर्तन भी होते हैं—अर्थात् विद्युत् प्रवाह उत्पन्न होते हैं। उनके तापक्रमका मात्रा भी बढ़ती है। इस कार्यमें नाड़ियाँ प्राणवायुका अधिक उपयोग करती हैं। इन रासायनिक परिवर्तनोंके फलस्वरूप कुछ विषैले पदार्थ भी बनते हैं। मांस-पेशियोंकी भाँति नाड़ीतन्तु भी कुछ समय बाद थक जाते हैं और विश्रान्ति की आवश्यकता अनुभव करते हैं। यह तो नाड़ियोंके वेगोंकी बात हुई; परन्तु जब हम विचारमें लीन होते हैं या निद्रामें-स्वप्नसृष्टिमें पड़े होते हैं तब भी मस्तिष्कमें, विभिन्न मानसिक व्यापारोंके फलस्वरूपमें उत्पन्न होनेवाले विद्युन्मय परिवर्तनोंका अङ्कन कर सकते हैं। अर्थात् आजकल हृदयके रोगोंकी परीक्षामें जैसे हृदयके स्पन्दनोंसे उत्पन्न होनेवाले विद्युत् प्रवाहोंका यन्त्रसे अङ्कन करके हृद्विद्युच्चित्र (Electro Cardiogram) बनाया जाता है उसी प्रकार मस्तिष्कके विद्युत्प्रवाहोंका मस्तिष्क-विद्युच्चित्र (Cephalogram) भी बनाया जा सकता है। हिस्टिरिया, छलोन्माद (Feigned Insanity) आदिकी परीक्षामें भी इसका सफलतापूर्वक उपयोग किया जा सकता है।

आमतौरपर—ये वेग केवल एक ही दिशामें—ऊपर या नीचे जा सकते हैं यह हम देख चुके हैं, परन्तु जब ये वेग एक कोषके तन्तुसे निकल कर दूसरे कोषके तन्तुओंमें प्रविष्ट होते हैं तब उस स्थानपर थोड़ा समय लेते हैं। जिस प्रकार रेल्वे जङ्क्शनमें गाड़ियाँ पास-पासमें खड़ी रहती हैं और मुसाफिरोंको गाड़ी बदलनेमें थोड़ी देर लगती है उसी तरह वेगोंको भी तन्तु बदलनेमें थोड़ा समय लगता है। इसी उपमाको और आगे बढ़ानेपर मालूम होगा कि इन तन्तुओंके संश्लेष-स्थानोंकी (Synopsis) रेल्वेके जङ्क्शन स्टेशनोंके साथ तुलना कर सकते हैं। दो गाड़ियोंके प्लेटफार्मके बीच दूरी जितनी अधिक होती है उतनी ही अधिक देर मुसाफिरोंको गाड़ी बदलनेमें लगती है। इसी प्रकार संश्लेष-स्थानोंसे निकलनेवाले वेगोंको भी न्यूनाधिक समय लगता है। जिस प्रकार दो गाड़ियाँ एक साथ एक ही पटरीपर नहीं चल सकतीं किन्तु एक-दूसरेसे आगे-पीछे दौड़ती हैं और मेलट्रेन को सबसे अधिक सुविधा मिलती है। उसी प्रकार हमारी नाड़ियोंमें एक साथ दो वेग नहीं चल सकते; एवं सबसे प्रबल वेग प्रथम और दुर्बल वेग उसके बाद चलते हैं। उदाहरणके तौरपर सबसे अधिक चमकदार पदार्थ आँखको जल्दी आकर्षित करते हैं, उच्च ध्वनि पहले सुनाई देती है।

स्वतन्त्र नाड़ीमण्डलके वेगोंके विषयमें अभी हम बहुत कम जानते हैं। हाँ, स्वतन्त्र नाड़ीमण्डल और निःस्रोत ग्रन्थियोंके स्रावोंके बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है यह निश्चित है। इसी प्रकार मस्तिष्कके सम्पूर्ण व्यापारोंको अभी हम नहीं जानते।

नाड़ीतन्त्रकी कार्यक्षमताके लिये निम्न परिस्थिति आवश्यक है—

(१) नाड़ीतन्त्रके सब भाग स्वस्थ और एक-दूसरेके साथ सम्बद्ध होने चाहिए, एकाध तन्तु या कोषको आघातसे या विषसे हानि पहुंचनेपर उसकी कार्यक्षमता घट जाती है।

(२) रक्त द्वारा नाड़ीतन्त्रको पर्याप्त मात्रामें प्राणवायु मिलनी चाहिए। शरीरके अन्य किसी भी अवयवकी अपेक्षा मस्तिष्क-रक्तका—उसके रास्ते प्राप्त होनेवाले पोषण द्रव्यका—अधिक उपयोग करता है और प्रकृतिने महामातृका धमनी द्वारा उसको यह पहुंचानेका प्रबन्ध भी किया है।

(३) रक्तमें कुछ द्राक्षाशर्करा (Glucose) भी अवश्य रहनी चाहिए।

(४) रक्तमें विषैले पदार्थ न होने चाहिए।

यदि ये शर्तें पूरी न की जायँ तो नाड़ीतन्त्र यथावत् कार्य नहीं कर सकता। शिरपर या अन्य स्थानमें आघात पहुंचनेपर, मधुमेह जैसे रोगोंमें शर्कराकी मात्रा रक्तमें बढ़ जानेसे मलिन हवा वाले स्थानोंमें प्राणवायुका प्रमाण कम होनेसे अथवा वृक्क, यकृत् आदिके रोगोंमें, रक्तमें विषमय पदार्थोंका प्रमाण बढ़ जानेसे, नाड़ीतन्त्र विकृत होता है ऐसा सामान्य अनुभव है।

ज्ञानेन्द्रियोंका वर्णन (Organs of Senses)—

नाड़ीतन्त्रके इस महत्त्वपूर्ण विभागका अब वर्णन करते हैं।

पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके आभ्यन्तराधिष्ठान-मस्तिष्कके वर्णनमें, बताये जा चुके हैं। यहाँ केवल इन्द्रियोंके वाह्याधिष्ठानोंका वर्णन करेंगे, इन इन्द्रियों द्वारा हमको वाह्यजगत्का ज्ञान प्राप्त होता है इसलिये इनका नाम अन्वर्थ रखा गया है। इनमें सबसे कम ज्ञान करानेवाली इन्द्रियका वर्णन प्रथम और सबसे अधिक ज्ञान करानेवाली इन्द्रियका वर्णन अन्तमें करेंगे।

(अ) रसना (Organ of Taste)—का अर्थ है मधुर, खट्टा, नमकीन इत्यादि रसोंको ग्रहण करनेवाली इन्द्रिय। इसके अतिरिक्त वाग्व्यापारमें, चबानेमें, निगलनेमें भी यह महत्त्वपूर्ण भाग लेती है। यह मुखविवरके भीतर पेशियों एवं स्नायुओंसे मुखके तल भाग और पीछेकी ओर गलेमें सटी रहती है। यह मुख्यतया मांस-पेशियोंसे बनी हुई और एक पतली श्लेष्मस्रावी-कलासे आवृत होती है। इसकी ऊपरी सतह और बाजुओंपर रसनांकुर (Jingual Papillac) रहते हैं जो जीभकी विशिष्टता है। रसनांकुरोंके तीन प्रकार निम्न हैं—

(१) कूर्चाकार (Filiform Papillac)—ये अंकुर जीभकी ऊपरी सतहपर आगेके दो तिहाई भागमें अधिक संख्यामें दिखाई देते हैं। कुछ कूर्चाकार और कुछ शंक्वाकार होते हैं। मांसाहारी पशुओंमें ये अधिक बड़े और खुरदरे होते हैं। ये जीभके स्पर्श ज्ञानमें उपयोगी हैं, इनका कार्य रस ज्ञान नहीं है, यह ख्यालमें रखना चाहिए।

(२) शिलीन्ध्राकार (Fungiform P.)—बिल्लीके टोपके

सामान ये अंकुर अधिकांश जीभके अग्रभाग और दोनों पार्श्वोंपर रहते हैं। इनके ऊपर बहुतसे स्वादकोरक (Taste buds) रहते हैं जो रसास्वादनका कार्य करते हैं।

(३) द्वीपाकार (Circumvallate P.)—इस नामसे प्रसिद्ध बड़े-बड़े अंकुर जीभके पीछेके एक तिहाई भागमें खाली आंखसे दिखाई देते हैं। जीभकी ऊपरी सतहपर ये त्रिकोनकी दो भुजाओंकी भाँति स्थित होते हैं। इनकी संख्या कोई आठसे बारह तक होती है। इनकी सतहपर बहुतसे स्वादकारक रहते हैं, जो रसज्ञानमें उपयोगी हैं।

(ब) आदानयन्त्रिका (End organs) **स्वादकोरक**—इनका आकार गोल या अण्डाकार होता है। इनके अग्रभागपर एक गढ़ा होता है। इस गढ़ेके चारों ओर बाल जैसे सूक्ष्मतन्तु (Gustatory Hairs) होते हैं, सूक्ष्मदर्शक यन्त्रसे देखनेपर स्वादकोरक अण्डाकार स्वादग्राही कोषोंसे (Gustatory cells) पूर्ण दिखाई देते हैं और इन कोषोंकी बाल-सी शाखाएँ स्वाद-कोरकोंके अग्रभागमें स्थित गढ़ेमें दिखाई देती हैं। जीभके पीछेके एक तिहाई भागमें, तालुमें और गलेमें भी स्वादकोरक बिखरे रहते हैं। उपरिवर्णित स्वादग्राही कोष रसग्राही नाड़ियोंके तन्तुओंसे घिरे रहते हैं। जिह्वाके मध्यभागमें रस संज्ञा ग्रहण करनेकी शक्ति कम होती है परन्तु उसके पिछले एक तिहाई भागमें, अग्रभागमें और दोनों पार्श्वोंपर यह शक्ति अधिक प्रमाणमें होती है।

(क) नाड़ियाँ(N.)——निम्न निर्दिष्ट नाड़ियाँ जिह्वाके विविध व्यापारोंमें भाग लेती हैं।—

(१) रसग्रहाकर्णान्तिका (Chorda Tympani)—इसकी सूक्ष्म शाखाएँ जिह्वाके पूर्वके दो तिहाई भागमें और कण्डरासनी नामकी शीर्षण्य नाड़ीकी।

(२) रसनाभिगा शाखा (Tingual branch) पीछेके एक तिहाई भागमें फैल कर स्वादकोरकोंमें प्रविष्ट होती है और रससंज्ञाका मस्तिष्कमें स्थित अंकुशकर्णिका (Uneus) की ओर वहन करती है। ये दोनों रसग्राही नाड़ियाँ हैं।

(३) जीभकी स्पर्श संज्ञाका वहन करनेवाली नाड़ी तो एक ही है जिसका नाम रासनीशाखा (Tingual branch of the mandibular division of the 5th N.) है, जो पाँचवीं शीर्षण्य नाड़ीकी अधोहानव्या शाखाकी एक उपशाखा है।

(४) जिह्वाकी सम्पूर्ण मांस-पेशियोंकी चेष्टामें वेग देनेवाली नाड़ीका नाम जिह्वातलगा (Hypoglossal N.) है। इससे मालूम होता है कि जिह्वाके व्यापारोंकी अपेक्षा उसकी नाड़ियाँ भ अधिक हैं।

(ख) रससंज्ञा ग्रहण प्रकार——रसनामें स्थित स्वादकोरक विभिन्न पदार्थोंसे उत्तेजित होनेपर मनुष्योंको रसज्ञानकी प्रतीति होती है। स्वादकोषोंकी बाल-सी सूक्ष्म शाखाओंको उत्तेजित करनेवाले ये पदार्थ या तो द्रव होने चाहिये या द्राव्य Soluble

होने चाहिये। मुखान्तर्गत लाला ग्रन्थियाँ और श्लेष्मस्त्रावि ग्रन्थियाँ इस कार्यमें बहुत उपयोगी हैं। ये चने जैसे शुष्क पदार्थोंको भी थोड़ी देरमें तर कर देती हैं। जिससे वे स्वादिष्ट मालूम होते हैं। परन्तु जीभके प्रत्येक स्थानपर सब रसोंका ज्ञान एक-सा नहीं होता। उसके अग्रभागमें मधुर रसका उसके पार्श्वोंमें अम्लका और पीछेके भागमें तिक्त रसका ज्ञान होता है। इससे मालूम होता है कि इस प्रकार विभिन्न रसोंकी प्रतीति होना विभिन्न द्राव्य पदार्थों और जीभकी विभिन्न आदानयन्त्रिकाओंके बीच होनेवाले रासायनिक संयोगका—एक स्पर्श विशेषका परिणाम है।

रसोंकी संख्या—रसोंकी संख्या प्राचीनोंके मतानुसार छः हैं। आधुनिक शरीर व्यापार शास्त्रियोंके मतके अनुसार रस चार (Primary sensation of Taste) तिक्त, लवण, अम्ल और मधुर हैं। उनके मतानुसार कषाय और कटु—गौण रस हैं (Mixed sensations of taste and touch)। इनके अतिरिक्त इन छः रसोंके न्यूनाधिक प्रमाणमें मिश्रणसे असंख्य रस उत्पन्न होते हैं जिनकी प्रतीति द्रव्य विशेष और व्यक्तिकी रस ग्रहण शक्तिपर निर्भर है। यहाँ यह भी बता देना आवश्यक है कुछ तज्ज्ञ छहों रसोंको मुख्य मानते हैं अर्थात् रस छः हैं या चार इस विषयका अभी तक पूरा निर्णय नहीं हुआ है। इस मत-भेदका कारण यह है कि तिक्त, मधुर आदि रसयुक्त द्रव्य तो रसनामें स्थित स्वादकोरकोंके भीतरके रसग्राही नाड़ियोंके

(Gustatory Nerves) तन्तुओंको उत्तेजित करते हैं, परन्तु कषाय और कटु रस प्रधान द्रव्य जिह्वाकी संज्ञावाहिनी नाड़ियोंके तन्तुओंको उत्तेजित करते हैं जिनसे कषाय और कटु रसकी प्रतीति होती है।

कोकेन और मधुनाशिनी (गुडमार, (Gymnama Sylvestre) का रस क्रमशः तिक्त और मधुर रसकी प्रतीतिको थोड़ी देरके लिये रोक देते हैं, क्योंकि ये रसग्राही नाड़ियोंकी आदान-यन्त्रिकाओंको क्षणभरके लिये निष्क्रय बना देते हैं। एवं एक रस दूसरे रसके प्रभावको दूर करता है यह सबके अनुभवका विषय है। जैसे कि मधुर और लवण। रसज्ञानके लिये रसयुक्त पदार्थोंका तापांश मुखमें प्रवृष्टि होते समय १०% से ३५% तक होना चाहिये। अतिशय शीतल या उष्ण पदार्थ रसादान-यन्त्रिकाओंको मूर्छित (जड़) कर देते हैं। शीतल भोजनकी अपेक्षा उष्ण भोजन अधिक स्वादिष्ट मालूम होता है, इसका कारण यही है। रसकी प्रतीतिके साथ ही गन्ध विशेष और स्पर्श विशेषकी भी प्रतीति होती है, यह ख्यालमें रखना चाहिये।

घ्राणेन्द्रियका वर्णन (Organ of smell)

(अ) घ्राणेन्द्रिय—का अर्थ है गन्धज्ञान करानेवाली इन्द्रिय इसका बाह्य अधिष्ठान नासिका या और भी स्पष्ट कहा जाय तो नासागुहाको श्लेष्म कलामें व्याप्त घ्राण नाड़ीके तन्तु और उनकी गन्धादान यन्त्रिकायें हैं। इनका आभ्यन्तराधिष्ठान मस्तिष्कमें

स्थित उपधान पिण्डिका (Hippocampal Gyrus) है। इस पिण्डिका और अंकुश कर्णिका (Uneus) के बीच मस्तिष्कमें गाढ़ सम्बन्ध है जिससे रससंज्ञा और गन्धसंज्ञामें मिश्रण होता रहता है। इतर प्राणियोंमें यह भाग अधिक विकसित हुआ मालूम होता है क्योंकि उनकी जीवन-रक्षाके लिये ये दोनों ज्ञान अति महत्त्वके हैं। प्राणिशास्त्रवेत्ता कहते हैं कि इन प्राणियोंके इन्द्रियोंके विकास-क्रममें, ये इन्द्रियाँ बहुत पहले उत्पन्न हुईं।

नासागुहान्तर्गत भाग श्लेष्मस्रावी कलासे आवृत रहता है। गन्ध ग्रहणके अतिरिक्त श्वासोच्छ्वास व्यापारमें भी यह गुहा भाग लेती है।

(ब) गन्धादान यन्त्रिका (End organ)—मनुष्य देहमें नासागुहाके भीतर गन्धग्राही प्रदेश थोड़ा ऊपर और पीछेकी ओर स्थित है। इस गन्धग्राही प्रदेशका अर्थ—ऊर्ध्वशुक्तिका और उसके समीपमें स्थित मध्य प्राचीरके थोड़े भागको ढकेनेवाली श्लेष्मकला है। इस कलामें गन्धग्राही कोष (Olfactory cells) रहते हैं। इसके बीचमें स्थित कुछ स्तम्भाकारकोष (Columnar-cells) इनको सहारा देते हैं। प्रत्येक गन्धग्राही कोषकी दो शाखायें होती हैं—एक अन्तर्गामिनी और दूसरी बहिर्गामिनी। इनमें बहिर्गामिनी शाखा गन्धग्राही प्रदेशकी कलामें कीलकी भाँति उठी हुई दिखाई देती है और अन्तर्गामिनी शाखा इस कलाके भीतरी भागके गहराईमें जा कर अन्य कोषोंकी

अन्तर्गामिनी शाखाओंके साथ मिल कर गन्धग्राही नाड़ी बनाती है।

(क) गन्धग्राही या घ्राण नाड़ीके सूक्ष्मप्रतान इस प्रकार एकत्र हो कर झर्झरास्थिके चालनी पटल (Cribriform plate of the Ethmoid bone) में होकर मस्तिष्कमें स्थित उपधान पिण्डिकामें जाते हैं।

(ख) गन्धसंज्ञा ग्रहण प्रकार—गन्धसंज्ञाका पृथक्करण दुष्कर है इसलिये उसके केवल दो भेद कर सकते हैं—सुगन्ध और दुर्गन्ध। परन्तु इन विशेषणोंसे सिर्फ हमारा अभिप्राय ही व्यक्त होता है न कि गन्धका वास्तविक स्वभाव। प्रकृतिसे ही गन्धसंज्ञाका रस-संज्ञाके साथ सम्बन्ध है। गन्ध ग्रहण करनेवाली श्लेष्मकला यदि बहुत शुष्क या बहुत आर्द्र हो जाय तो गन्धज्ञान यथावत् नहीं हो पाता, क्योंकि गन्धग्राही कोषोंके व्यापार अत्यन्त शुष्कता या आर्द्रताकी उपस्थितिमें निष्क्रिय हो जाते हैं। गन्धयुक्त पदार्थ वायवीय स्वरूपमें (Gaseous state) होना चाहिये जिससे उसके सूक्ष्म परमाणु नाकमें जानेवाले श्वासके साथ प्रविष्ट होकर गन्धग्राही कोषोंकी बहिर्गामिनी शाखाओंको उत्तेजित करें। इसके फल स्वरूप उत्पन्न होनेवाले वेग घ्राण नाड़ीके रास्ते मस्तिष्क में जाकर गन्धकी प्रतीति कराते हैं। उदाहरणतया—कस्तूरी, कपूर आदि पदाथ देखनेमें घन होनेपर भी प्रत्येक क्षणमें उनके सूक्ष्म परमाणु वायवीय अवस्थामें परिणत होकर श्वासके साथ हमारे नाकमें जाते हैं। उग्रगन्धवाले पदार्थोंके परमाणु केवल

गन्धग्राही कोषोंको ही नहीं किन्तु तत्रस्थ स्पर्शसंज्ञादान यन्त्रिकाओंको भी उत्तेजित करते हैं। उदाहरणके तौरपर—नौसादर और सूँघनी (तमाखू) समझें।

त्वगिन्द्रियका वर्णन (Organ of Touch)

(अ) त्वचा—के माने हैं शरीरका आवरण जो स्पर्शेन्द्रियका वाह्याधिष्ठान है। इसमें स्वेद वह स्रोत, रोम और रोमकूप दिखाई देते हैं। स्थूल दृष्टिसे इसके दो विभाग कर सकते हैं वहिस्त्वग् (Cuticle-Epidermis) और अन्तस्त्वग् (Cutis vera or true skin)। इनमें बाह्य त्वचा बहुत पतली होती है और रञ्जक कणोंको आश्रय देती है। फफोला उठनेपर यह अलग हो जाती है। अन्तस्त्वचा मोटी होती है, शरीरका रक्षण करती है, ऊष्माके संग्रहमें यह बड़ा महत्त्वपूर्ण भाग लेती है और कुछ अंशमें स्नेहका शोषण भी करती है। इसमें संज्ञावह नाड़ियोंके प्रान्त रहते हैं। ये नाड़ियाँ स्पर्श ज्ञानका वहन करके, मस्तिष्कमें मध्यकुल्याके पीछेके किनारेपर स्थित स्पर्शसंज्ञा क्षेत्रोंमें (Tactile area) ले जाती हैं।

(ब) आदान यन्त्रिकायें (End organs)—त्वचामें स्थित स्पर्शज्ञानको ग्रहण करनेवाली यन्त्रिकायें स्पर्शांकुरिका नाम से प्रसिद्ध हैं। उनके बहुत-से प्रकार हैं। कुछ पतली होती हैं और कुछ मोटी। इनमें पतली या छोटी स्पर्शांकुरिकायें अन्तस्त्वचाके प्रथम स्तरमें दिखाई देती हैं। वे आकारमें छोटे पौधेके समान होती हैं और अग्रांकुरिका (Tactile corpuscles)

नामसे प्रसिद्ध हैं। मोटी और बड़ी स्पर्शांकुरिकाओंमें कुछ चींटियोंके अंडोंके समान स्पर्शांकुरिका (Pacinian corpuscles) नामसे प्रसिद्ध हैं। वे तीव्र स्पर्शज्ञानवाले प्रदेशोंमें, त्वचाकी गहराईमें स्थित होती हैं। कुछ पुष्पके समान अग्रभाग वाली, कुछ बड़े अंडाकार सिरेवाली और कुछ वंशांकुरके समान दिखाई देती हैं। सम्पूर्ण स्पर्शांकुरिकाओंके मूल प्रदेशोंमें नाड़ी प्रतान फैले हुए दिखाई देते हैं। यह मुख्य स्पर्शसंज्ञाको ग्रहण करनेवाली आदान यन्त्रिकाओंका वर्णन हुआ। अब गौण स्पर्श को ग्रहण करनेवाली आदान यन्त्रिकाओंका वर्णन करते हैं। वे मुख्यतया पेशियोंकी कण्डराओंके मूलमें रहती हैं। वे जालकी भाँति फैले हुए संज्ञावह नाड़ियोंके सूक्ष्म प्रतानोंसे पहचानी जाती हैं और नाड़ीगुल्मिका (Organ of Golgi) नामसे प्रसिद्ध हैं। अस्थ्यावरक कलाओं और सन्धियोंका आवरण करनेवाले स्नायुकोषोंमें भी इसी तरहकी यन्त्रिकायें पायी जाती हैं। ये सब यन्त्रिकायें गौण स्पर्शको ग्रहण करती हैं।

(क) नाड़ियाँ (Sensory N.)—त्वचाकी सब संज्ञावह नाड़ियाँ सुषुम्णामें प्रविष्ट होकर ऊँचे जाती हैं और आज्ञाकन्दों किंवा दृक्कन्दोंमें होकर मस्तिष्कके स्पर्शसंज्ञा क्षेत्रमें जाती हैं।

(ख) स्पर्शसंज्ञाके दो प्रकार हैं; मुख्य और गौण। इनमें मुख्य स्पर्शसंज्ञा, त्वचामें स्थित स्पर्शांकुरिकाओंकी उत्तेजनासे उत्पन्न होती है। इससे उत्पन्न होनेवाले वेगोंसे मस्तिष्कमें केवल स्पर्शका शैत्य एवं ऊष्मा, रुजा किंवा पीडा और दबाव (Pressure)

का ज्ञान होता है। गौण स्पर्शसंज्ञा मांस-पेशियों, कण्डराओं, सन्धियों आदिसे उत्पन्न होती है और शरीरावयवोंकी स्थिति (Position) और गति (Motion) का ज्ञान कराती है।

इससे मालूम होता है कि स्पर्शसंज्ञादान यन्त्रिकायें भी विविध प्रकारकी होती हैं और उनसे विविध प्रकारोंके स्पर्शोंका ज्ञान होता है। सब स्थानोंमें इन स्पर्शादान यन्त्रिकाओंकी संख्या एक-सी नहीं होती। जिह्वाग्र, ओष्ठ, गाल, जननेन्द्रियके कुछ भाग आदि स्थानोंमें और नेत्र गोलकमें स्पर्श संज्ञा अधिक प्रमाणमें उत्पन्न होती है। पीड़ाकर स्पर्श भी एक विशिष्ट प्रकारका स्पर्श ही है।

प्राणियोंमें, इन्द्रियोंके विकास क्रममें त्वचा—सबसे पहली इन्द्रिय है। इसमें होनेवाले परिवर्तनोंके फलस्वरूप दूसरी इन्द्रियाँ क्रमशः उत्पन्न हुई हैं यह नहीं भूलना चाहिए। हरेक आदान यन्त्रिका और उसके उत्तेजकका संयोग भी एक प्रकारका स्पर्श ही है यह भी याद रखना चाहिए।

श्रवणेन्द्रियका वर्णन (Organ of Hearing)

श्रवणेन्द्रिय—यह शब्दरूप अर्थका ग्रहण करनेवाली इन्द्रिय है जिसका वाह्य अधिष्ठान कान और आभ्यन्तराधिष्ठान मस्तिष्कमें स्थित शंखक पिण्डकी ऊपरकी किनारी (उत्तर शङ्खिका कर्णिका) का पीछेका हिस्सा है। श्रवणेन्द्रियके वाह्याधिष्ठानभूत इस कर्णके तीन विभाग होते हैं—वहिः कर्ण, मध्यकर्ण, और अन्तः कर्ण। इनमें वाह्य भाग आँखसे दिखाई देता है और शेष दोनों भाग शंखास्थिसे ढके रहते हैं।

बहिःकर्ण—(External Ear)—कानका वाह्यभाग त्वचासे आवृत तरुणास्थियोंका बना है और शंखास्थिसे लगा हुआ है। इसके दो विभाग होते हैं—कर्ण शष्कुली (pinna) और कर्ण कुहर (Ext. auditory meatus) कर्ण शष्कुलीमें मध्यखात (Concha) खास लक्ष्य खींचता है और कर्ण-कुहर या बाह्य कर्णका नाली-सा भाग कुछ घुमावदार होकर कानके पर्दे तक जाता है और वायु तरंगोंको इस पर्दे तक ले जाता है।

मध्यकर्ण—(Tympanum) या मध्यकर्ण गुहा शंखास्थि के अश्मकूट भागके भीतर स्थित है। कानके पर्देके कारण वह बाह्यकर्णसे अलग होती है। इसका आकार अनियमित-विषम-है। यह गुहा भीतरकी तरफकी दीवालके दो छिद्रों-तुम्बिका छिद्र और शम्बूक छिद्र—जो पतली कला (झिल्ली) से ढके हुए हैं और इसकी बाह्य दीवाल जिसमें श्रुतिपटह—कानका पर्दा—स्थित है—इनको छोड़कर पूर्णतः अस्थिमय है। इसका वाह्य वातावरणके साथ सम्बन्ध करानेवाला सिर्फ एक ही मार्ग है और वह है पटह पूरणिका सुरङ्गा, जो इस मध्यकर्णका कंठके साथ सम्वन्ध कराती है। इस गुहाकी श्रेष्मकला गलेकी श्लेष्मकलाके समान ही है।

श्रुति पटह—(Tympanic membrane) या कानका पर्दा पतला, दृढ़ और गोल आकारका है। वह अत्यन्त सूक्ष्म स्नायु सूत्रोंका बना है जिनमें कुछ पहिये के आरेकी भाँति और

कुछ गोलाईमें लिपटे हुए दिखाई देते हैं। इसकी वाह्यसतह वाह्य कर्णके साथ सम्बन्धित होती है। भीतरी सतह श्लेष्म कलासे ढँकी होती है और मध्यकर्ण गुहा और पटह पूरणिका नलीकी श्लेष्म-कलाके साथ सम्बन्धित होती है। इस पर्देकी किनारी, एक चूड़ीकी भाँति गोल तरुणास्थिसे लगी रहती है। यह पर्दा सीधा न होकर कुछ टेढ़ा या ढलुवाँ रहता है।

मध्यकर्ण गुहामें, वहुत छोटी परन्तु कठिन और अनियमित आकारकी तीन क्षुद्रास्थियाँ रहती हैं जिनका नाम-मुद्गरक, अंकुशक, और धारणक हैं। ये तीनों अस्थियाँ परस्पर संयुक्त रहती हैं। मुद्गरकका दंडाकार भाग कानके पर्देके साथ लगा रहता है। और धरणकास्थिका पाद पीठ भाग (Base), कलासे आवृत अन्तःकर्णके तुम्बिका छिद्र (Fenestra ovalis) से लगा रहता है। यह व्यवस्था एक उच्चालन यन्त्रसे मिलती-जुलती है जिससे कानके पर्देमें कंपन होने पर मध्यकर्णकी क्षुद्रास्थियोंमें भी कंपन होता है और इनके स्पन्दन तुम्बिका छिद्र तक पहुंच जाते हैं।

मध्यकर्णगुहामें दो छोटी-सी मांस पेशियाँ भी रहती हैं जो पटहोत्तंसिनी (Tensor Tympani) और पर्याणिका (Stapedius) कहाती हैं। इनमें पहली मुद्गरकास्थिके साथ लगी रहती है, इसलिये कानके पर्देको तंग करती है; और दूसरी धरणकास्थिके साथ लगी रहती है, इसलिये तुम्बिकास्थिविवरपर दबाव कम करती या बढ़ाती है।

पर मध्यकर्णका गलेके साथका सम्बन्ध याद रखने योग्य है। इस रचनासे कानके पर्देपर वायुका दबाव एक-सा रहता है। और पर्दा ध्वनिके अन्दोलनोंको ठीक-ठीक ग्रहण कर सकता है।

अन्तःकर्ण अथवा कान्तारक (Internal Ear or Labyrinth)—यह कानका सबसे भीतरका भाग है, जिसमें श्रुतियन्त्र रहता है। यह भाग शंखास्थिके अश्मकूटके भीतर छिपा रहता है या यों कह सकते हैं कि अस्थिमय दिवालोंसे सुरक्षित रखा गया है। इसके भाग पेचीले हैं, इसलिये इसका नाम कान्तारक पड़ा है। इस भागके अन्दर शब्दसंज्ञावहा श्रुति-नाडीकी शाखायें फैली हुई हैं।

कान्तारकके दो उपविभाग हैं—एक अस्थिमय विभाग (Bony Z.) और दूसरा कलामय विभाग (Membranous Labyrinth)। इनमें दूसरा विभाग प्रथम विभागके अन्दर रहता है। कलामय विभाग लसीका (Endolymph) से भरा हुआ रहता है। इसके बाहर और इसके अस्थिमय विभागके बीचमें एक दूसरे प्रकार की लसीका (Perilymph) रहती है जिसके अन्दर कलामय विभाग मानो तैरता हो इस प्रकार रहता है।

अस्थिमय कान्तारक के तीन विभाग हैं—तुम्बिकाधार (vestibule), श्रुतिशंबूक (Cochlea) और तीन शुण्डिका-धारिकायें (3 Semicircular Canals)। तुम्बिकाधार भागकी

लसीकामें उसीके आकारका कलामय कान्तारक तैरता रहता है। इसकी बाहरी दीवालमें तुम्बिका छिद्र रहता है। इसछिद्रको ढकनेवाली कलाके साथ धरणकास्थिका पाद पीठ जुड़ा होता है। इस विभागमें श्रुति नाड़ीकी तुम्बिकाभिगाशाखा व्याप्त रहती है। उपर्युक्त तीन शुण्डिका धारिकाओंके द्वार भी इस विभागमें खुलते हैं। परन्तु हमारे लिये श्रुति शम्बूक अधिक महत्त्वका है क्योंकि इसमें श्रुति यन्त्रकी स्वरादानिकायें रहती हैं। शम्बूकके मूल भागके पार्श्व पर शम्बूक छिद्र रहता है, जो कलासे ढका रहता है। यहाँ यह विशेष उल्लेखनीय है कि तुम्बिका धार भाग एवं शुण्डिका धारिकाओंमें तैरते हुए कलामय भागों के अन्दर लसीका रहती है, जिसमें रोमाग्र कोषाणुक उतराते हैं। इन कोषाणुकोंके उत्तेजित होने पर उत्पन्न होनेवाली संज्ञायें तुम्बिकाभिगा नाडी (Vestibular N.) के रास्ते मस्तिष्कमें जाती है। कलामय शुण्डिकाओंके भीतर व्याप्त ये नाड़ी तन्तु हमको स्थल, दिशा एवं शारीरिक स्थितिका ज्ञान कराते हैं। अर्थात् श्रुतिनाड़ीकी इन शाखाओंका श्रवण व्यापारमें कुछ भी हिस्सा नहीं होता। उपरि निर्दिष्ट शंक्वाकार श्रुति शम्बूकके भीतर स्थित, कीड़ोंकी तरह गेंडलीदार, कलामय नलिका शम्बूकी (Membranous Cochlea) नामसे प्रसिद्ध है। इस नलिकाके निर्माणमें भाग लेनेवाली तल-पत्रिका नामक कला (Basilar membrane) पर स्वरादानिकायें रहती हैं।

(ब) स्वरादानयन्त्रिकायें (Organ of Corti)

तलपत्रिकाके मध्यभागमें ये यन्त्रिकायें रहती हैं। इनमें रोमाग्रकोषाणुक (Hair Cells) दिखाई देते हैं, और श्रुति नाड़ीकी शम्बूकाभिगा शाखा (Cochlear N.) फैलती है। इस तरहके हजारों कोषाणुक श्रवण व्यापारमें भाग लेते हैं।

(क) श्रवण नाड़ीकी दोनों शाखायें—तुम्बिकाभिगा और शम्बूकाभिगा—आगे चलकर एक साथ मिलकर श्रवण नाड़ी (Acoustic N.) बनाती है। मार्गमें तुम्बिकाभिगा शाखाके तन्तुओंका अधिकतर हिस्सा लघुमस्तिष्कमें और थोड़ा भाग मस्तिष्कके संज्ञा क्षेत्रोंमें जाता है। शम्बूकाभिगा शुद्ध श्रुतिनाड़ी है। मस्तिष्ककी ओर जाती हुई वह तृतीया और चतुर्थी दोनों शीर्षण्य नाडियोंके केन्द्रोंमें थोड़े तन्तु भेजती है, जिससे शब्दका प्रभाव नेत्र पर भी तुरन्त होता है। अन्तमें वह मस्तिष्कमें शंखिक पिण्डपर स्थित शब्द-संज्ञाधिष्ठानमें प्रविष्ट हो जाती है।

(ख) शब्द-संज्ञादान प्रकार—शब्दकी तरंगें वायु द्वारा बहिःकर्णके अन्दर जाकर कानके पर्देके साथ टकराती है, जिससे वह काँपता है। इससे मध्यकर्णकी क्षुद्रास्थियाँ भी काँपती हैं। इसका प्रभाव तुम्बिका छिद्रके रास्ते अन्तः कर्णान्तर्गत लसीका पर होता है। लसीकामें उत्पन्न होनेवाली तरंगें रोमाग्र कोषाणुओंको उत्तेजित करती हैं, जिससे श्रुतिनाड़ियोंमें वेग उत्पन्न होते हैं, जो मस्तिष्कमें स्वर संज्ञाका ज्ञान कराते हैं। शब्द ज्ञान प्राप्त करनेका दूसरा मार्ग भी है जिसे अस्थिद्वारिक (Bony

conduction) कहते हैं। यदि श्रुतिनाड़ी कार्य क्षम होती है तो यह मार्ग काम देता है अन्यथा नहीं।

दर्शनेन्द्रिय का वर्णन (Organ of Vision)

दर्शनेन्द्रिय रूप-संज्ञाग्रहण करनेवाली इन्द्रिय है, जो सब इन्द्रियोंमें श्रेष्ठ मानी जाती है और ज्ञान प्राप्त करनेका परमोत्तम साधन है। इसके वाह्याधिष्ठान रूप दोनों अक्षिगोलक दृष्टि-नाड़ियोंके अग्र भाग पर स्थित है। इसका आभ्यन्तराधिष्ठान मस्तिष्कके पश्चिम पिण्डके पश्चात् भागमें स्थित रूपसंज्ञाधिष्ठान (Visual area) है।

नेत्र गोलक (Eye Ball)

(अ) नेत्र गोलक कबूतरके अंडेकी भाँति गोलाकृति होते हैं। इसका बाहरी भाग कठिन और भीतरी भाग मृदु होता है। आँखके कोटरके मूलमें स्थित छिद्रमें होकर दृष्टिनाड़ी इस गोलकमें पीछेसे प्रविष्ट होती है। इस गोलकका पश्चाद् भाग चर्बीकी एक मोटी तहमें स्थित है। जो इसके लिये गद्दीका काम करती है। नेत्रगोलकके चारों ओर लगी हुई छः मांस पेशियाँ उसको अच्छा स्थान बाँधे रखती हैं और आवश्यकतानुसार इधर उधर घुमाती हैं। नेत्रगोलकका सामनेवाला पार्श्व पलकसे ढंका रहता है। इसके अतिरिक्त यहाँ नेत्रवर्त्म (Conjunctiva) नामकी एक कला रहती है, जो नेत्रगोलकके इस पार्श्वको और दोनों पलकोंको भीतरकी ओरसे ढंके रहती है।

नेत्र गोलकका निर्माण—नेत्र गोलकमें तीन स्तर होते हैं जिसे वाह्य, मध्य, और अन्तर स्तर कहते हैं। नेत्र गोलकमें तीन पारदर्शक वस्तुएँ रहती हैं जो प्रकाश किरणोंके वक्री भवनमें उपयोगी हैं।

वहिर्वृत्ति किंवा वाह्यस्तर (Selera) मजबूत स्नायु सूत्रोंका बना होता है, इसलिये मोटा, कठिन और दृढ़ होता है। इसके कारण नेत्र गोलकका आकार ज्योंका त्यों सुरक्षित रहता है। इसके दो विभाग होते हैं—स्वच्छ मंडल (Cornea) और शुक्लवृत्ति। इनमें शुक्लवृत्ति नेत्रगोलकके ⅚ भागको आवृत करता है और उन्नतोदर (बहिर्गोल) स्वच्छ मण्डल नेत्रगोलक के सामनेकी ओरके ⅙ भाग को ढंकता है। इन दोनोंमें स्वच्छ मण्डल शुक्ल भागसे आगेकी ओर जुड़ा रहता है। आँखमें देखने पर यह भागकाला दीखता है; परन्तु वह रंगीन नहीं होता, वह तो काचसा पारदर्शक है; पर इसके पीछे स्थित तारामण्डलका रंग इसमें होकर दीखता है इसलिये वह रंगीन मालूम होता है। स्वच्छ मण्डल अपने नामके अनुसार वर्तुलाकार और बीचसे कुछ उभरा हुआ बहिर्गोल है। इसकी गोल किनारीके आसपास जुड़े हुए शुक्ल भाग और इसके बीचका संधिस्थान 'स्वच्छ शुक्ल संधि' (Sclero corneal junction) कहाता है। इस मण्डल संधिके समीप सिरा धमनी चक्र दिखाई देते हैं। शुक्ल वृत्ति अथवा नेत्रगोलकका श्वेतस्तर इस संधिके समीपसे शुरू होकर सारे गोलकको ढंकता है। दृष्टि नाडी और तारामण्डलकी

ओर जानेवाली सिरायें, धमनियाँ, नाड़ियाँ आदि इसको भेद करके भीतर जाती है और मांसपेशियाँ इसके वाह्य भागमें लगी रहती है। इस श्वेत स्तरका भीतरी भाग कृष्णवर्णका होता है और नेत्रगोलकके मध्यमस्तरसे चिपका रहता है। इस स्तरकी मोटाई १/४ यवोदर और स्वच्छ मण्डलकी मोटाई १/१० यवोदर है।

मध्य वृत्ति या बीचका स्तर (Vascular coat) अधिकतर बाह्यस्तरसे चिपका रहता है और इस मध्यस्तरका भीतरी भाग दृष्टिवितान (Retina) नामक नेत्रगोलक भीतरीस्तरके साथ जुड़ा रहता है।

सामनेसे पीछेकी ओर इस मध्यवृत्तिके तीन भाग हैं।

१—तारामण्डल (Iris)

२—संधानमण्डल (Ciliarybody)

३—कर्बुरवृत्ति (Choroid)

(१) तारामण्डल (Iris) या आंखका गोल पतला पर्दा, सूक्ष्म मांसमय तन्तुओंका बना होता है। यह पर्दा स्वच्छमण्डलके पीछे और नेत्र मणि (Lens) के सामने, इस भागमें स्थित एक द्रवपदार्थमें उतराता है। इस गोल पर्देकी किनारी आसपासके संधानमण्डल (Ciliary body) और स्वच्छमण्डल (Cornea) के पिछले स्तरसे जुड़ी रहती है। इसकी मोटाई सिर्फ यवोदर भर है। यह सङ्कोच विकासशील है, इसका रंग काला, पीला, धूसर या सफेद होता है जो स्वच्छमण्डलके भीतरसे दिखाई देता है। इसलिये उस (स्वच्छ) मण्डलके रंगीन होनेका भ्रम पैदा होता है।

इस पर्देके मध्यमें स्थित दैवकृत छिद्र कनीनिका या पुतली (Pupil) नामसे प्रसिद्ध है। इस पर्देमें स्थित मांसतन्तुओंसे होने वाले सङ्कोच विकाससे यह पुतली सिकुड़ती या फैलती है। इसमें हो कर प्रकाशकी किरणें आंखके भीतरी भागमें जाती हैं। इस तारामण्डलके सामने स्थित द्रवपदार्थसे भरा हुआ भाग अग्रिमा-जलधानी (Anterior chamber) और इसके पीछेका भाग पश्चिमा जलधानी (Posterior chamber) कहाता है।

तारामण्डलकी सूक्ष्म रचना बहुत विलक्षण है। इसमें रंगीन द्रव्यवाले कोष, छोटी-छोटी जाली बनानेवाले बहुतसे सूक्ष्म सूत्र और स्वतन्त्र पेशियोंके दो प्रकारके तन्तु होते हैं। इन सूत्रोंमें कुछ पुतलीके चारों ओर चूड़ीकी भांति स्थित हैं जो उसको छोटी या संकुचित करते हैं। कुछ पेशीसूत्र पुतलीके चारों ओर सूर्यकी किरणोंकी तरह स्थित हैं जो इसको चौड़ी या विकसित करते हैं। इन पेशीसूत्रोंमें प्रथम प्रकारके सूत्रोंको तृतीया शीर्षण्य नाड़ीके सूत्र और दूसरे प्रकारके पेशीसूत्रोंको चाक्षुषग्रन्थि और त्रिधारा नाड़ीसे उत्पन्न होनेवाले स्वतन्त्र नाड़ीमण्डलके सूत्र गतिमान् करते हैं। इन नाड़ी प्रतानोंके अतिरिक्त सिराओं एवं धमनियोंकी शाखाएँ इस तारामण्डलमें व्याप्त होती हैं। इसके पीछेका भाग काला होता है।

संधानमण्डल (Ciliary body)—यह मध्यमस्तरका भाग तारा मण्डल और कर्बुरवृत्तिके बीचमें स्थित है। इसके भी तीन सूक्ष्म विभाग हैं—

(१) सन्धान बलयिका (Orbicularis ciliaris)
(२) सन्धान पेशिका (Ciliary muscle)
(३) सन्धान दशिका (Ciliary Processes)

इनमेंसे सन्धान बलयिका, कर्बुरवृत्तिकी आगेकी धाराके साथ मिल जाती है। सन्धान पेशिका स्वतन्त्र मांसपेशिओंके तन्तुओं की बनी होती है और स्वच्छ-शुक्ल सन्धिसे उत्पन्न होती है। इस पेशिकामें भी वृत्त और विस्तारी सूत्र होते हैं और सन्धान दशिकाओंके साथ गाढ़ सम्बन्ध रखते हैं। सन्धान पेशिका समीपके पदार्थोंको देखनेके लिये नेत्रको बहुत सहायक होती है। जब वह संकुचित होती है तब वह सन्धान दशिकाओंको-कर्बुर-वृत्तिको-आगेकी ओर खींचकर काच निबन्धनीको शिथिल करती है जिससे काच और भी बहिर्गोल होकर समीपके पदार्थोंको देखनेमें सफल हो जाता है।

संधान दशिकायें---ये नागकेसरके केसर सदृश अवयव हैं। कर्बुरवृत्तिकी आगेकी किनारी सिकुड़कर इस प्रकारका स्वरूप धारण करती है। इनकी संख्या करीब ७० से ८० तक होती हैं। ये रक्तवाहिनियों, स्नायुसूत्रों और रंगीन कोषोंके मिलनेसे बनी होती हैं। ये काचनिबन्धनीकी बाह्यकिनारीमें प्रविष्ट होकर वर्तुलाकारमें स्थित होती हैं। सन्धान पेशिकाओंके गोल सूत्र इनके मूलमें लगे होते हैं।

कर्बुरवृत्ति (Choroid)—आँखके मध्यम स्तरके पीछेका हिस्सा इस नामसे प्रसिद्ध है क्योंकि वह चित्र-विचित्र वर्णका

होता है। इसकी भीतरी बाजूपर दृष्टि वितान नामका नेत्र-गोलकका आन्तर स्तर लगा रहता है। इसमें बहुत-सी रक्तवाहिनियाँ दिखाई देती हैं। इसकी आगेकी किनारी मुड़कर (दोहरी होकर) सिकुड़कर सन्धान दर्शिकाएँ बनाती हैं। इसमें कालेरंगके तारकाकार कोष रहते हैं।

अंतरवृत्ति किंवा दृष्टि-वितान (Retina) नामका स्तर बहुत पतला होता है और शेष दोनों स्तरोंसे आवृत रहता है। यह स्तर नेत्रगोलकके भीतर प्रविष्ट होनेवाली दृष्टिनाड़ीका विस्तार-स्वरूप है। इसलिये इसका नाम "दृष्टि-वितान" सार्थक ही है। दृष्टिनाड़ी नेत्रगोलककी अक्षरेखामें—स्वच्छमण्डल और दृष्टिमंडल आदिके मध्यबिन्दुओंको जोड़नेवाली रेखामें—नेत्रगोलकके भीतर नहीं प्रविष्ट होती परन्तु उसकी भीतरी बाजूसे—नासिकाके समीपवर्ती बाजूसे प्रविष्ट होती है। यह स्थान **दृष्टिनाड़ी प्रवेश स्थान** (Optic disc) कहा जाता है। भीतर प्रविष्ट होकर वह ज्ञान तन्तुमय वितानके रूपमें परिवर्तित हो जाती है और नेत्रान्तर्वीक्षण यन्त्रसे (Ophthalmoscope) देखनेपर यह स्थान श्वेत और इसके चारों ओरका भाग लाल दीखता है इसलिये यह सितबिम्ब या अन्धबिम्ब (Blind Spot) भी कहाता है, क्योंकि इस स्थानमें दर्शनशक्ति होती ही नहीं। इस सितबिन्दुसे कुछ बाहरकी ओर दृष्टिवितानके मध्य भागमें एक अण्डाकार गढ़ा है जो पीतबिम्ब (Yellow Spot or Macula Lutea) कहाता है, क्योंकि इसका वर्ण पीला है।

इसके गहरे मध्य भागमें दर्शनशक्ति बहुत तीव्र होती है इसलिये वह दर्शन केन्द्र भी कहा जाता है। इस दर्शनकेन्द्रको भगवान् सुश्रुतने मसूरकी दालके बराबर बड़ा और रंगयुक्त होनेके कारण ही "खद्योत-विस्फुलिङ्गाभ" कहा है जो यथार्थ ही है। इस आकारके कारण ही इसको 'विवराकृत' भी कहा है।

(ब) निर्माण--इसकी सूक्ष्म रचना अद्भुत है। इसमें दस स्तर होते हैं। इनमेंसे अन्तिम दो स्तर बहुत महत्त्वके हैं—नवाँ रूपादानिका (Layer of Rods and Cones) और दसवाँ चित्रजवनिका (Pigmentary layer) है नवें स्तरमें शूलाकार और वेमाकार कोषाणुक एक-दूसरेके समीप-समीपमें रहते हैं। दसवें स्तरमें रंग द्रव्ययुक्त असंख्य कोषाणुक दिखाई देते हैं। इस स्तरमें स्थित रंग (Visual Purple) प्रतिक्षण बदलते रहते हैं। ये रंग परिवर्तन, जो एक प्रकारके भौतिक एवं रासायनिक परिवर्तन हैं, दृष्टिनाड़ीके अग्रोंको उत्तेजित करके उनमें वेग उत्पन्न करते हैं। प्राचीनोंका आलोचक पित्त यही रंग द्रव्य है। यहाँ यह याद रखना चाहिये कि ये दोनों अन्तिम स्तर शेष आठ पतले स्तरोंसे आवृत होते हैं फिर भी वे पारदर्शक हैं इसलिये इन स्तरोंके बिम्ब ग्रहण व्यापारमें कोई बाधा नहीं होती। पीतबिम्बके पास तो ये स्तर अतिशय पतले हो जाते हैं; इसलिये वहाँ दृष्टि अतितीव्र मालूम होती है। जब हम किसी पदार्थको देखना चाहते हैं तब ग्रीवा और सिरकी पेशियाँ हमारे सिरको उस पदार्थकी ओर इस तरह घुमाती हैं कि उस दृश्य पदार्थका बिम्ब सीधा हमारे पीत-

बिम्बपर आकर गिरता है। नेत्रका काच भी सब किरणोंको उस बिम्बपर ही केन्द्रित करता है। इस दृष्टिकेन्द्रसे ज्यों-ज्यों दूर चलते हैं त्यों-त्यों दृष्टिशक्ति कम होती जाती है क्योंकि दृष्टिवितान के शेष आठ स्तर वहाँ अधिकाधिक मोटे होते जाते हैं।

नेत्रमें स्थित कुछ पार दर्शक पदार्थोंमें स्वच्छ मण्डल, और तनुजल (Aqueous humour) का निर्देश हो चुका है। दृष्टिमंडल किंवा दृष्टिमणि (Lens) और सान्द्रजल (Vitreous Humour) का निर्देश अभी बाकी है। आँखके अन्दर तारा-मण्डलके पीछे दृष्टिमणि किंवा काच रहता है। इसका आकार चपटे मोती या यव काच-सा होता है। यह काच, सन्धान दर्शिकाओंके (C. processes) साथ संयुक्त, और काचकी किनारीके चारों ओर स्थित एक बन्धनी (Suspensory ligament) द्वारा अपने स्थानमें बँधा रहता है। इस काचके पीछे एक पतले कोषसे आवृत सान्द्र जल रहता है। यह काच भी एक पार दर्शक कला (Capsule) से आवृत रहता है। इसके सामनेकी पृष्ठकी अपेक्षा पीछेकी पृष्ठ अधिक बहिर्गोल होता है। जैसे प्याजकी गाँठ एकके ऊपर दूसरा इस तरहसे आवृत स्तरोंसे बनी होती है उसी प्रकार यह काच भी एक दूसरे को ढँकनेवाले पार दर्शक स्तरोंका बना होता है। इसमें सिरायें, धमनियाँ, और नाड़ियाँ नहीं होतीं। इसका पोषण केवल लसीका द्वारा होता है। स्मरण रहे इस काचके पार दर्शकता जब नष्ट हो जाती है तब, लिङ्गनाश, नीलिका, काच, मोतिया बिन्द

आदि नामोंसे प्रसिद्धि होती है। तनु जलके स्वाभाविक प्रवाहमें रुकावट हो जानेपर अधिमंथ—(Glaucoma) और स्वच्छ मंडलमें विकृति होनेपर सव्रण या अव्रण शुक्र (Corneal Ulcer) और नेत्र गोलककी कर्बुर वृत्ति या दृष्टि-वितानमें विकृति होनेपर 'तिमिर' के लक्षण उत्पन्न होते हैं।

(क) दृष्टि वितानसे निकल कर मस्तिष्कमें रूपसंज्ञाधिष्ठान प्रदेशमें जाते हुए दृष्टि नाड़ीका मार्ग बहुत पेंचीला होता है। इस प्रदेशमें जाती हुई दृष्टिनाड़ी मार्गमें आज्ञाकन्दों और अन्य चाक्षुष नाड़ियोंकी मूल कंदिकाओंके साथ भी सम्बन्ध स्थापित करती जाती है। दृष्टि वितान और मस्तिष्कके रूपसंज्ञाधिष्ठान प्रदेशके बीचका सम्बन्ध भी पेंचीला है।

दृष्टि नाड़ीके अतिरिक्त, नेत्रमें तृतीया नाड़ी, पञ्चमी नाड़ीकी चाक्षुष शाखा और स्वतन्त्र नाड़ी मंडलके तन्तु फैले रहते हैं।

(ख) रूपसंज्ञादान प्रकार (Vision)—

आंखकी रचना, फोटो खींचनेके लिये व्यवहृत होनेवाले केमेरासे मिलती-जुलती है। जिस प्रकार केमेरा समीप या दूरके पदार्थोंकी फोटो खींच लेता है उसी प्रकार आँख भी समीप एवं दूरके पदार्थोंकी फोटो खींच लेती है। दोनोंकी तुलना निम्नानुसार कर सकते हैं—

आँख	केमेरा
(१) आंखका दृष्टिवितान	(१) केमेराके भीतर स्थित फिल्म
(२) आंखकी कर्बर वृत्ति	(२) केमेराके भीतरका कालाभाग

(३) आँखका तारामंडल (संकोच और विकासशील)	(३) केमेराके सामनेकी ओर स्थित खिड़की (जो खुलती या बन्द होती है)
(४) सन्धान पेशिका	(४) केमेराकी खिड़कीकी चाबी
(५) आँख, शिर और ग्रीवाकी मांस पेशियाँ	(५) चाहे किसी भी स्थानपर ले जा सकें ऐसा केमेरा और उसका आसन (स्टेण्ड)

इस प्रकार तुलना करनेपर आँख और केमेरामें बहुत कुछ समानता मालूम होती है, परन्तु दोनोंमें थोड़ा फर्क भी है। केमेरामें समीप या दूरसे आनेवाली प्रकाश किरणोंको एकत्रित करनेके लिये सिर्फ एक ही यवकाच (Lens) होता है, परन्तु आँखमें किरणोंको एकत्रित करनेके लिये दोहरी व्यवस्था की गई है। एक स्वच्छ मंडल (Cornea) जिसका सामनेका पृष्ठ बहिर्गोल है और पीछेका पृष्ठ अन्तर्गोल है। दूसरा दृष्टिमंडल अथवा काच (Lens) है जिसके दोनों पृष्ठ बहिर्गोल हैं।

बाहरसे आँखपर पड़नेवाली किरणें उसके भीतर प्रविष्ट होनेके पहले कुछ अंशमें स्वच्छमण्डल द्वारा एकत्रित की जाती हैं। इसके बादतनुजलसे (A· Humour) गुजरनेपर वे और भी एकत्रित होकर तारामण्डल द्वारसे आगे बढ़कर दृष्टिमण्डलके सामनेके पृष्ठपर पड़ती हैं। इससे तारामण्डलके संकोच या विस्तारके अनुसार आँखकी पुतली छोटी या बड़ी (संकुचित या विस्तृत) हो जाती है और किरणोंका छोटा या बड़ा समुदाय काचपर

गिरता है। काचके दोनों पृष्ठ बहिर्गोल हैं इतना ही नहीं किन्तु उसकी बहिर्गोलाईमें भी परिस्थितिके अनुकूल घट-बढ़ सन्धान-पेशिकाओं द्वारा होती रहती है। इससे किरणें एकत्र होकर सान्द्र जलमें प्रवेश करती हैं और अधिकाधिक एकत्र होते-होते दृष्टिवितानकी चित्रजवनिकापर आती हैं। परिणामतः जिस पदार्थसे किरणें निकलती हैं उस पदार्थका फोटो दृष्टिवितानपर पड़ता है।

जिस प्रकार केमेरामें नेगेटिव या उल्टी फोटो पड़ते हैं उसी प्रकार दृष्टिवितानपर भी फोटो उल्टे पड़ते हैं, परन्तु फोटो हमको तो वे सीधे ही दिखाई देते हैं, क्योंकि हमारा अनुभव वैसा ही होता है। मनके अभ्याससे वाह्य पदार्थोंकी स्वाभाविक परिस्थितिका ज्ञान होता है।

आँखमें एक अन्य शक्ति भी है और वह है पदार्थोंके वर्णका ज्ञान करनेकी। रूपमें रंगका भी अन्तर्भाव हो जाता है। परन्तु केमेरासे रंगीन फोटो खींचनेके लिये विशिष्ट प्रकारकी फिल्मका उपयोग करना पड़ता है। कुछ मनुष्योंमें पदार्थके कद, स्थान, अन्तर आदिका ग्रहण करनेकी शक्ति होनेपर भी पदार्थोंका रंग ग्रहण करनेकी शक्ति होती (Colour blindness), जिससे दृष्टिवितानकी विकृति सूचित होती है।

चित्रजवनिका स्तरमें स्थित रंगों (आलोचक पित्त) के परिवर्तनोंके फलस्वरूप वाह्य पदार्थोंका फोटो वहांपर क्षणभरके लिये टिकता है। इस समय इस स्तरके शूलाकार और वेमाकार

कन्दानुओंमें जागृति उत्पन्न होती है। वे अपने पीछे स्थित कन्दाणुओंको और अन्तमें दृष्टिनाड़ीके तन्तुओंको उत्तेजित करते हैं। इस उत्तेजनाके फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाले वेग दृष्टिनाड़ीके रास्ते मस्तिष्कके रूपसंज्ञाधिष्ठान क्षेत्रमें जाते हैं और हमको पदार्थ के रूपका ज्ञान (Sensation) होता है। यहाँ स्पष्टरूपमें बता देना चाहते हैं कि पदार्थोंका ज्ञान ता मस्तिष्कमें होता है और इसमें मस्तिष्कका बहुत बड़ा हिस्सा होता है। मन अपने अनुभवके बलपर उन-उन पदार्थोंका ज्ञान कराता है और उसको यथावत् पहचानता है।

संक्षेपमें ग्रीवा एवं सिरकी पेशियों और नेत्रगोलकपर स्थित पेशियों द्वारा आँख विभिन्न दिशाओंमें स्थित पदार्थोंको देखनेके लिये अपना स्थान बदलती है, पहले कहे प्रकारसे वक्री भवन (Refraction) पैदा करती है और बहुत कम किरणोंको पुतली के रास्ते अन्दर घुसने देती है। दूर या समीपके पदार्थोंको देखनेके लिये वह काचको न्यूनाधिक बहिर्गोल बनाती है और दोनों आँखें पदार्थको अधिक निश्चिन्ततासे देखनेके लिये एक ही पदार्थपर केन्द्रित हो जाती हैं (Convergence)।

यहाँ नेत्रेन्द्रियका वर्णन समाप्त होता है। कहनेकी शायद ही आवश्यकता होगी कि आँखका अध्ययन शरीर क्रिया विज्ञान शास्त्र एवं मानस शास्त्रमें बहुत विस्तरके साथ किया गया है। इसलिये जिज्ञासुओंको तत्तद् विषयके ग्रन्थोंमें देखना चाहिये। ज्ञानेन्द्रियाँ बहुत उपयोगी हैं और आपसमें गाढ़ सम्बन्ध रखती

, इतना तो हरेक मनुष्य जानता है। परन्तु इसमें भी आँख और कानके बीच एवं घ्राण और रसनाके बीच अधिक गाढ़ सम्बन्ध है यह विद्यार्थियोंको ख्यालमें रखना चाहिये।

विभिन्न ज्ञानेन्द्रियोंसे आनेवाले वेगोंके फलस्वरूप मस्तिष्कमें विभिन्न पदार्थोंका ज्ञान होता है और इस ज्ञानके परिणामसे विषयोपलब्धि किंवा प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है। यह मनो-व्यापार है। मस्तिष्क, ज्ञानेन्द्रियाँ और अन्य नाड़ियाँ इसके उपकरण साधनमात्र ही हैं*।

---

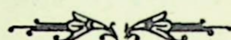
* That when in the developing Soma its integrated assembly of chemico-physical's ystems reaches a certain completeness and complexity mind appears, does seem to prompt an inference that the latter is a result of the former.

But against that rises the difficulty that mental phenomena, on examination, do not seem amenable to understanding under physics and chemistry. I have, therefore to think of the brain as an organ of liaision between Energy and mind, but not as a converter of energy into mind or vice versa. We have it seems to me, to admit that enegy and mind are phenomena of two categories.

(Sherrington—Man on his nature Chap. X.

श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, लिमिटेड

कलकत्ता, पटना, झांसी और नागपुर
का
संक्षिप्त परिचय



श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेडका जन्म अबसे करीब ३० साल पहले बिहार प्रान्तके एक छोटेसे किन्तु पवित्र और प्राकृतिक सौन्दर्यपूर्ण हिन्दुओंके प्रसिद्ध तीर्थस्थान श्रीवैद्यनाथ धाम (देवघर) में हुआ था। जब यह उद्योग बीज-रूपमें उस पवित्र देवस्थानमें उस छोटेसे रूपमें शुरू किया गया था, उसी समयसे इनके प्रवर्तक वैद्यराज पं० रामनारायण शर्माके हृदय में बहुत ही ऊँची अभिलाषाएँ और आशाएँ अपनी उस प्राचीन संस्कृति, साहित्य और कलाके पुनरुद्धारके बारेमें थीं, जिनके कि गौरवमय प्रतीकके रूपमें यह देवस्थान सारे हिन्दुस्तानमें मशहूर है।

करीब-करीब यही वक्त था जब कि हमारे देशमें राष्ट्रीय चेतना और आजादी की लहरका उठना शुरू हुआ था । हमारे समाजके प्रत्येक अङ्गपर जो एक अन्धकारका आवरण था; विदेशी आचार-विचार और सत्ताका प्रभुत्व था, उसके खिलाफ एक सुरसुराहट-सी शुरू हुई थी। महात्मा गांधीजीके नेतृत्वमें धीरे-धीरे हमारे समाजके सोये हुए, अलसाये हुए क्लान्त शरीरमें प्राण-वायुका सञ्चार होना आरम्भ हुआ। हमारा राष्ट्रीय कारवाँ किन-किन बाधाओं, कठिनाइयों, बवण्डरों और तूफानोंका सामना करते हुए बार-बार गिर-गिरकर उठा और अपने लक्ष्यकी ओर विकसित होता रहा, यह हमारे इतिहासका सबसे गौरवपूर्ण पृष्ठ होगा।

राष्ट्रीय ह्रास या समृद्धि केवल राजनैतिक नहीं होती, बल्कि व्यक्तिगत ौर समष्टिगत रूपमें वह समाजकी संस्कृति, साहित्य, कला, उद्योग, व्यापार, ष्टि आदि सभी अङ्गोंके सार्वभौमिक ह्रास या विकासपर निर्भर करता है और ंकि आयुर्वेद—हमारा राष्ट्रीय चिकित्सा विज्ञान—हमारी संस्कृति, साहित्य ौर कलाका सर्वोच्च ज्ञान-भण्डार है अतएव राष्ट्रके जीवनके साथ इसका विच्छिन्न सम्बन्ध कोई नयी और आश्चर्यजनक बात नहीं है।

इसीलिये जब हम श्रीबैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेडके पिछले ३० साल संघर्षमय जीवन और उसमें फलस्वरूप प्राप्त उत्तरोत्तर उन्नतिकी ओर दृष्टिपात करते हैं तो हमें गर्व और प्रसन्नता होती है। गर्व इसलिये कि एक कर्तव्य-परायण सिपाहीकी हैसियतसे राष्ट्रीय पुनरुद्धारके एक जबर्दस्त मोर्चे—राष्ट्रीय चिकित्सा—आयुर्वेदके लिये अपने फर्जको हमने हरेक कठिनाई और बाधामें भी खूबीके साथ निभाया है और खुशी इसलिये कि हमारे राष्ट्रीय संग्रामके नेताओं और सेनानियोंने हमारे कामकी सराहनाकी है, सहयोगियोंने उनकी प्रशंसाकी है, और सम्मान किया है। वर्तमान नव-राष्ट्र-निर्माणके शुरूआत में जबकि प्रकाशकी दो-एक किरणें अन्तरिक्षपर दिखाई पड़ने लगी हैं, हमारे उत्साह और खुशीका सर्वोच्च कारण एकमात्र यही अनुभूति है कि राष्ट्रीय संघर्षके हर आघात और उसकी आगके प्रत्येक शोलेका हमारा हिस्सा हमें प्राप्त करनेका सौभाग्य मिला है।

बिहार, यू० पी०, सी० पी०, सी० आई०, राजपूताना और पञ्जाब हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तोंमें आयुर्वेदके कामको उठानेवाली संस्थाओंमें "श्रीबैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड" अग्रगामी है। हमारे पूर्वजोंके औषध-ज्ञान, रासायनिक क्रियाओं और चिकित्सा-विज्ञानको उस हालतमें एकत्रित संयोजित और नियन्त्रित करना जबकि वह पूरी तरहसे नष्ट हो चुका था और संघर्ष था उन विदेशी औषधिसंघर्ष निर्माताओं और उनकी चिकित्सा पद्धतिसे जिसके पीछे ब्रिटिश साम्राज्यकी पूरी सत्ता और प्रभाव कामकर रहा था, कोई आसान काम नहीं था। यह भी उस हालतमें जब कि पहलेका

किसीका अनुभव इस कामके लिये प्राप्य नहीं था। एक अज्ञात महासागरमें छोटीसी किसी एक नावको खेकर किनारे लगानेवाला यह प्रयास था।

पिछले इन ३० वर्षोंके-कार्य विवरणकी सफलताके बारेमें केवल इतना ही कह देना काफी होगा कि बैद्यनाथ दवाओंके निर्माण करनेमें इस समय ४ वृहत् निर्माणशालाएँ लगी हुई हैं, जिनमें विशेषज्ञोंके एक खास बड़े दलकी देख रेखमें आयुर्वेदिक दवाओंके इतने बड़े स्केलपर निर्माण हो रहा है जो केवल हिन्दुस्तानमें ही अद्वितीय नहीं है, बल्कि किसी भी विदेशी औषधि-निर्माताके वास्ते भी स्पर्धा और ईर्ष्याकी चीज है।

औषध-निर्माण कामके लिये हमें प्रत्येक मुख्य कामके लिये एक-एक अलग विभाग कायम करना पड़ा है जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैः—

१—असिद्ध खनिज एवं बनौषधि

यह विभाग सारे हिन्दुस्तानके प्रत्येक हिस्सेसे अलग-अलग नामोंमें या एक ही नामसे प्रचलित औषधियों और बनस्पतियोंको एकत्रित करता है। इसमें हमारी सभी शाखाओं, वेतनभोगी कर्मचारियों, कमीशन एजेण्टों और दवा विक्रेताओंके अलावा स्वतन्त्र वैद्य व डाक्टर सरकारी जङ्गलात-विभाग व कृषि विभागसे भी सहायता मिलती है। यह सबसे बड़ा विभाग है।

२—परीक्षण विभाग

इसमें इकट्ठीकी हुई जड़ी-बूटियाँ, असिद्ध खनिज एवं औषध निर्माणके काममें आनेवाली अन्य वस्तुओंका परीक्षण स्वयं अपने प्रयोगशालामें अनुभवी वैद्यों और रसायन शास्त्रियों द्वारा किया जाता है। अन्यान्य सार्वजनिक शिक्षण संस्थाओंको नियमित रिसर्च कार्यके लिये आर्थिक सहायता देकर प्रोत्साहन भी इस विभाग द्वारा दिया जाता है और समय-समयपर आवश्यकतानुसार उचित खर्च देकर अन्य रिसर्च लेबोरेटरियोंसे भी अपने परीक्षण के काममें सहायता ली जाती है।

३—औषध-निर्माण-विभाग

इस विभागमें विशेषज्ञ-आयुर्वेदाचार्यों और निर्माणकुशल वैद्य शास्त्रियोंकी ...क सेना ही काम करती है; जिनकी देख-रेखमें औषधियोंका शुद्ध शास्त्रीय-...तिसे निर्माण होता है और निर्माणकी प्रत्येक अवस्थामें भवनके मालिक लोग जो स्वयं औषधि-विज्ञानके विशेष जानकार हैं, उसकी परीक्षा करते हैं। साथ ही इस विभागको दूसरे विभागोंके विशेषज्ञोंकी सहकारिता भी प्राप्त है। इस प्रकार इस विभागके वैज्ञानिक संगठन और सुव्यवस्थित संरक्षणका ही फल है कि आज श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की बनी हुई औषधियां सबसे अच्छी और असली समझी जाती हैं।

आज हिन्दुस्तानके औषधि-निर्माणकर्ताओं एवं औषधियोंके व्यापार करने वालोंमें "श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड" का क्या स्थान है, इसे कितनी प्रतिष्ठा और कैसा सम्मान प्राप्त है, इसकी औषधियोंको लोग कितना प्रमाणित और असली समझते हैं, इसका बखान स्वयं करना 'आप मियाँ मिठ्ठू' बनना है। गांधीजी, मालवीयजी, नेहरूजीके समान काम करनेवाले आयुर्वेद जगत् के यशस्वी महापुरुषोंने तथा देशके अन्य महानुभावों और नेताओंने इन दवाओं की दिल खोलकर प्रशंसा की है।

हमारी दवाओंको व्यवहारमें लाकर असली और प्रमाणित कहकर प्रशंसा करनेवालोंमें हैं—अखिल भारतीय आयुर्वेद महामण्डल (हिन्दुस्तान भरके वैद्योंकी महासभा) के सभापति होनेवाले, राज्य और प्रजासे सम्मानित, अनेक चिकित्सा ग्रन्थोंके लेखक, आयुर्वेदको परीक्षा लेनेवाले भारत प्रसिद्ध वैद्यराज श्री यादवजी त्रिक्रमजी आचार्य (बम्बई), स्वर्गीय पं० श्री गणनाथ सेन सरस्वती (कलकत्ता), श्री गोवर्धन शर्मा छांगाणी (नागपुर), डाक्टर ए० लक्ष्मीपति (मद्रास), कविराज प्रताप सिंह (काशी), स्वर्गीय लच्छीराम स्वामी (जयपुर), श्री शिव शर्मा (लाहौर), आयुर्वेद महामहोपाध्याय श्रीभागीरथजी स्वामी (कलकता) तथा आयुर्वेद पञ्चानन श्री पं० जगन्नाथ प्रसादजी शु... (प्रयाग)। इसके अलावा देशके अनेक सार्वजनिक संस्थाओं (सेवासमिति,

कांग्रेस कमिटी, रिलीफ कमिटियां, सरकारी ग्राम-सुधार विभाग, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्युनिसपैलिटियाँ आदि) ने हमारी दवाएँ काममें लाकर उनकी प्रशंसा की हैं।

हम ऊपर बता चुके हैं कि बैद्यनाथ दवाओंकी लोकप्रियता और ख्याति की वजह है कि हमको औषधि निर्माणके लिये चार-चार जगह बड़े-बड़े कारखाने खोलने पड़े हैं। ऐसा इन्तिजाम हिन्दुस्तानमें तो क्या, औषधि निर्माण जगतमें कहीं भी नहीं है। और सच पूछिए तो हिन्दुस्तान जैसे बड़े देशकी भौगोलिक सीमाओंमें असली शास्त्रोक्त दवा बनानेके लिये इस प्रकारका सङ्गठन, जिससे सारे हिन्दुस्तानमें प्रचलित बनस्पतियाँ, कच्ची खनिज-औषधियां और मूल द्रव्योंका सुलभताके साथ सर्वोत्तम सङ्कलन हो सके और दवा जिस आबहवा, प्राकृतिक वातावरण और अन्यान्य खास परिस्थितिमें तैयार होनी चाहिए, सम्पूर्ण हो सके, की परम आवश्यकता थी। इसके अतिरिक्त एक और विशेष वजह थी जिसके लिये एक ऐसा संगठन बहुत ही आवश्यक था ! वह है हिन्दुस्तानके विभिन्न प्रदेशों और अलग-अलग भाषा-भाषियोंमें जो एक ही सिद्ध औषधिके विभिन्न पाठ और उसके निर्माणके लिये विभिन्न शैलियाँ प्रचलित थीं और हैं, उनमें जो सर्वोत्तम और सबसे अधिक फलदायक हों उनको एकत्रित किया जा सके और सारे हिन्दुस्तानमें एक ही स्टैंडर्डकी सर्वोच्च दवाएँ तैयार कर उन्हें विदेशी दवाओंसे टक्कर लेने लायक बनाया जा सके।

हमें प्रसन्नता है कि हम अपने इस उपरोक्त सिद्धान्तको बड़ी सफलताके साथ कार्यरूपमें परिणत कर सके हैं।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० का उद्देश्य औषधियोंके कारबारसे सिर्फ अर्थोपार्जन करना ही नहीं हैं, बल्कि आयुर्वेदके स्टैण्डर्डको ऊँचा उठाना और उसे सर्वाङ्गपूर्ण करना है। हमारी उन्नति और सुधारका एकमात्र कारण दवाओंकी असलियत, व्यापारकी सच्चाई और जन-सेवा है।

४—पैकिङ्ग विभाग

इस विभागका काम दवाको तौल या नापकर शीशियोंमें भरना, लेबुल लगाना, चपड़ाकी सिलमोहर करना, कार्डबोर्डके बक्सोंमें बन्द करना, आयल पेपर लगाना आदि औषधिका वाह्य स्वरूप बनाना है। यह विभाग जन-रुचिका पूर्ण ध्यान रखता है। हमारी दवाइयां जैसे गुणमें श्रेष्ठ हैं वैसे ही उनके वाह्य-दर्शन भी अनुपम हैं। शीशी, लेबुल, बौक्स आदि सभी सामान ऊँचे दर्जेके होते हैं ? कर्मचारियोंकी देखभाल करनेवाले सुपवाइजर हैं, ताकि किसी कर्मचारीसे गलती न हो जाय।

५—आर्डर-सप्लाई विभाग

एजेन्सियोंसे आनेवाली दवाओंकी मांगको बिना गलती किये उत्तमताके साथ भेजना इस विभागका काम है। एजेन्सीके आर्डरका माल स्टाक-कीपर निकालता है। उसे एक कर्मचारी मिलाकर देखता है कि कोई दवा कम-वेशी तो नहीं है। उसके बाद एक विश्वासी कर्मचारी फिर सम्हालकर अपने सामने होशियार और विश्वासी कर्मचारियोंसे बक्सोंमें बन्द कराकर लोहेकी पत्ती लगवा देता है। प्रत्येक कर्मचारी अपना काम सावधानीपूर्वक समाप्त करके जिम्मेदारीके लिये अपना हस्ताक्षर करता है। तीन बार चेकिङ्ग होनेसे गलतीकी गुञ्जायश नहीं रहती एवं सावधानीसे पुआल लपेटकर पैंक होनेसे टूट-फूटका भय भी नहीं रहता। इस विभागके कर्मचारी बहुत योग्य और विश्वासी हैं।

६—प्रबन्ध विभाग

कारखानोंके प्रबन्धके लिये एक उत्तम और योग्य कर्मचारीमण्डल (Staff) है जो सब कामोंको उत्तम रीतिसे सम्पादित करता है। इस विभागमें मैनेजर, सहायक मैनेजर तथा अन्य क्लर्क आदिके कामपर सभी अच्छे वेतनपर योग्य आदमी बहाल किये जाते हैं। इसलिये हम यह दावे के साथ कहते हैं कि हमारे जैसा उत्तम प्रबन्ध दवा विक्रेताओंमें किसीका नहीं है।

७—एकाउण्ट्स विभाग

कारखानेके लेखा-जोखा, हिसाब-किताबके लिये योग्य व्यक्ति एकाउण्टेण्ट तथा खजाञ्चीके पदपर काम करते हैं, जिन्हें बहुत ऊँची तनख्वाहें मिलती हैं। एजेन्सीसे लेकर रोजमर्रेके हिसाब-किताब तकका लेखा-जोखा यह विभाग बड़े सुन्दर ढङ्गपर रखता है।

८—प्रचार विभाग

हमारा यह विभाग बहुत ही बड़ा है, जिसमें प्रचार मैनेजरके अलावे अनेक व्यक्ति काम करते हैं। इस विभागका एकमात्र उद्देश्य यही है कि हम अपना प्रचार अपनी दवाओंकी उपयोगिताके बारेमें घर-घर सन्देश पहुंचा दें, ताकि दवा बेचनेमें हमारे एजेण्टोंको सुविधा हो। इस विभागके द्वारा अखबारोंका विज्ञापन, सिनेमा स्लाइड, दीवाल लिखवाना, पञ्चाङ्ग, कलैंडर डायरी, सूचीपत्र, पोस्टल तथा अन्य प्रचार साहित्य छपवानेके अलावा सुन्दर और आकर्षक साइनबोर्ड एजेन्टोंके लिये तैयार कराये जाते हैं। इस विभागके अधीन दो-तीन मोटरवान भी हैं जिनके जरिए गाँव-गाँवमें तथा मेले-जलसोंमें घूम-घूमकर प्रचार किया जाता है।

९—प्रेस व प्रकाशन विभाग

लेबुल, सेवनविधि तथा प्रचार विभागके साहित्यकी और आयुर्वेदीय ग्रन्थोंकी छपाईका काम इतना अधिक हमारे यहां होता है कि उसके लिये एक बड़ा प्रेस खोलनेका प्रबन्ध करना पड़ा। उस प्रेसके कर्मचारी मण्डल (Staff) भी बड़े ही योग्य और अनुभवशील हैं।

१०—स्वास्थ्य-रक्षा एवं धर्मार्थ विभाग

इस विभागका काम है जगह-जगह आवश्यकतानुसार धर्मार्थ औषधालय खोलना तथा अन्य उपायोंसे जैसे पीड़ित-क्षेत्रोंमें औषधि और वैद्य भेजकर—दुःखी एवं असहाय प्राणियोंकी सेवा करना। इसक निमित्त ४ धर्मार्थ औष-

लय खुल चुके हैं, जिनका सञ्चालन योग्य वेतनभोगी वैद्य कर रहे हैं। इसके अलावा हमारे वैद्य मुहल्ले-मुहल्ले तथा गांव-गांवमें घूम-घूमकर आयुर्वेदीय स्वास्थ्य-रक्षाका प्रचार करते हैं तथा तत्सन्बन्धी साहित्य एवं संयम-नियम, भोजनके बारेमें छपा हुआ चार्ट बांटते हैं; ताकि लोग उन नियमोंपर चलकर बीमार न होने पावें।

११—यातायात विभाग

यह विभाग लड़ाईके जमानेमें खोला गया है। युद्धके दिनोंमें माल भेजने तथा मंगानेमें बड़ी कठिनाइयाँ उपस्थित होने लगी। इस विभागको खोलनेसे हमें तो सुविधा हुई ही, एजेन्टोंको भी बड़ा लाभ हुआ। यह विभाग रेलवे, जहाज, लारी आदिसे माल भेजनेका जल्दी प्रबन्ध करता है तथा इसके लिये लिखा-पढ़ी, दौड़-धूप, कोशिश-पैरवी सब कुछ करता है। इस विभागके जिम्मे दो मोटर लारियां तथा अनेक अन्य गाड़ियां भी कर दी गई हैं।

१३—एजेन्सी और बिक्री विभाग

सारे हिन्दुस्तानमें हमारे ४५ से अधिक बिक्रीकेन्द्र और १४ हजारसे अधिक एजेन्सियां हैं। मुख्य-मुख्य शहरों, व्यापारीकेन्द्र और कस्बोंमें आयुर्वेदके प्रचारके दृष्टिकोणसे एवं औषधि-वितरणकी सुविधाके ख्यालसे ही हमने अपने ये बिक्रीकेन्द्र खोले हैं।

बैद्यनाथ रस-भस्म श्रेष्ठ क्यों होती है?

रसायन और भस्म बनानेके लिये रसायनशाला एक छोटेसे गांवमें है, जहां रसायन और भस्में बनानेके लिये सब तरहकी सुविधाएँ प्राप्त हैं। इस जगह जङ्गलकी कंडे (बन्योपल-गोंइठे) हजारों मन आसानीसे मिलते हैं। और मजदूरी भी सस्ती है। यहांसे सबसे नजदीकका रेलवे स्टेशन २४ मीलपर है। स्टेशनपर भी पत्थरके कोयलोंकी बिक्री नहीं होती। इस पर देहातमें बिजली वा गैसका कोई प्रश्न ही नहीं। अतः शुद्ध आयुर्वेदीय

पद्धतिसे भस्म और कूपीपक्व रसायन बनानेका जैसा स्वतन्त्र सुप्रबन्ध हमारे यहाँ है वैसा भारतवर्षमें किसीके यहाँ नहीं है । इस रसायनशालाके अध्यक्ष एक सुयोग्य वैद्य हैं जो पारदके संस्कार और भस्मोंके निर्माणकी विशेषताके लिये भारत प्रसिद्ध हैं । इस प्रकार वैद्यनाथ रसायन और भस्में सर्वश्रेष्ठ तैयार होकर हमारे कलकत्ता, पटना, झांसी और नागपुरके कार्यालयोंमें जाकर वहाँ पैक होकर तथा सिल मोहर लगाकर एजेण्टोंके पास बिक्रीके लिये भेजी जाती हैं । भस्में जितनी पुरानी होती हैं उतने ही ज्यादे गुणकारी होती हैं। हमारे यहाँ वजनमें मनों भस्में एक साथ तैयार होती और पुरानी होने पर ही बिक्री की जाती हैं । कई दूसरे प्रतिष्ठित औषधि निर्माता भी हैं जो रस-भस्में अच्छी बनाते हैं, परन्तु उनके मूल्य बहुत ज्यादा होनेके कारण अमीर लोग ही खरीद सकते हैं, साधारण जनता नहीं । इसके विपरीत कई औषधिके निर्माता बहुत ही सस्ते भावमें बेचते हैं जो किसी भी हालतमें विश्वसनीय नहीं हो सकती । श्रीवैद्यनाथआयुर्वेद भवन लि० द्वारा बनी हुई रस-रसायन और भस्में उत्तम श्रेणीकी होने पर भी मूल्यमें अधिक नहीं हैं । थोड़ा-सा अधिक मूल्य देकर आप वैद्यनाथ रस भस्में खरीदकर निश्चित रूपसे फायदा उठायेंगे । हम आपको गारंटी देते हैं कि वैद्यनाथ रस-भस्म निश्चित रूपसे फायदा दिखलाती है और मांके दूधकी तरह निर्दोष होती हैं । इस तरह की उत्तम भस्में डालकर बनने वाले रस भी पूर्ण गुणकारी होते हैं । इन सब कारणोंसे भारत वर्ष भरमें यह प्रसिद्ध हो गया है कि वैद्यनाथ रस-रसायन और भस्में श्रेष्ठ और पूर्ण गुणयुक्त होती हैं ।

श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद भवनके कुछ प्रयत्न

(१) भवनकी बिक्रीपर ज्यादेसे-ज्यादे ५) रु० सैकड़ाके अलावा बाकी सब आयुर्वेदकी उन्नतिमें खर्च होता है और होता रहेगा । आयुर्वेदकी दवाइयाँ सर्वोत्तम बनाने (रिसर्च) में ही सबसे ज्यादे खर्च होता है। ३०००) रु० वार्षिक काशी हिन्दू विश्वविद्यालयको भी आयुर्वेद रिसर्चके लिये

दिया जाता है तथा १५००) रु० वार्षिक धर्मसमाज संस्कृत कालेज मुजफ्फरपुरको आयुर्वेदको व्यवहारिक शिक्षाके लिये दिया जाता है।

(२) राष्ट्रोन्नति और सेवा भावनासे आयुर्वेदकी दवा बनाने वालेको पूर्ण प्रोत्साहन दिया जाता है। बहुत बड़ी तादादमें आयुर्वेदकी दवाइयां किस तरह बनानी चाहिये तथा वे निश्चित गुणकारी कैसे हो सकती हैं, उन को वर्तमान रुचिके अनुकूल कैसे बनाया जा सकता है, इत्यादि हमारा महत्वपूर्ण अनुभव वे खुद देखकर जान सकते हैं। हिन्दुस्तानके स्वतन्त्र होनेके बाद नये राष्ट्रका निर्माण हो रहा है, उसमें आयुर्वेदीय चिकित्सा प्राणली को भी सुन्दर अवसर मिलने वाला है। दवाओंके निर्माणका वृहद् आयोजन द्वारा ही हम डाक्टरी दवाओं तथा चिकित्सासे लड़कर उन्हें इस देशसे खत्म कर राष्ट्रीय चिकित्साके आसनपर आयुर्वेदको वैठा सकते हैं। श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि॰ इसके लिये सतत प्रयत्नशील रहता है।

(३) आयुर्वेद विद्यालयोंसे निकलने वाले वैद्य पूर्ण विद्वान और सेवा भावयुक्त हों —इसके लिये आर्थिक सहायता और छात्रवृत्तियां पहलेसे ज्यादे कर दी गई हैं। बिहार गवर्मेन्ट और काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके आयुर्वेद विभागकी प्रवन्ध सदस्यता हमने इसी उद्देश्यसे स्वीकार की है।

(४) आयुर्वेदके मूल सिद्धान्तोंके अधारपर डाक्टरीके टक्करकी पाठ्य-पुस्तकें प्रस्तुतकरनेके उद्देश्यसे "शरीर क्रिया विज्ञान" (आयुर्वेद क्रिया शारीर) और "पदार्थ-विज्ञान" "सिद्धयोगसंग्रह" "आरोग्य प्रकाश" आदि ग्रन्थोंका प्रकाशन भी इसी उद्देश्यसे हुआ है। आरोग्यप्रकाशका तो ऐसा प्रचार हुआ कि देखते-देखते उसके सात संस्करणोंमें ५३००० कापियाँ बिक गयीं और आठवें संस्करणमें १५००० कापियाँ फिर छापी गयीं हैं। "सिद्धयोगसंग्रह" और "शरीर क्रिया-विज्ञान" भी आयुर्वेदके सर्वोत्तम ग्रन्थ माने गये हैं।

(५) यूनानी चिकित्सा भी हमारे लिये उपयोगी है। पूर्ण अधिकारी विद्वान द्वारा राष्ट्र-भाषामें "यूनानी सिद्धयोग-सग्रह" लिखवाकर इस अभाव की पूर्ति की गई है।

(६) भारतीयोंकी तन्दुरुस्तीका सुधार आयुर्वेदके आधारसे ही हो सकता है–इस उद्देश्यपूर्तिके लिये "सचित्र आयुर्वेद" नामका मासिक पत्र प्रकाशित कर रहे हैं। 'पथ्यापथ्य', किशोर रक्षा और ब्रह्मचर्य' आदि सरीखी पुस्तकें तथा छोटे-छोटे-ट्रैक्ट भी प्रकाशित होते रहते हैं।

(७) वैद्यनाथ धर्मार्थआयुर्वेदीय दवाखानोंकी संख्या अब चार हो गई हैं। यहाँ गरीब रोगियोंको उत्तम दवा ही मुफ्त नहीं दी जाती, बल्कि पथ्य भी ८त दिया जाता है। हर जगह स्वास्थ्य-रक्षा केन्द्र भी खोले गये हैं।

(८) धर्मार्थ दवाखानोंको हमारे यहाँसे लागत मूल्यमें दवा दी जाती थी; अब प्रमाणित दवाखानों को मुफ्त दवा भेजनेका भी प्रबन्ध किया गया है।

(९) हैजा, महामारी,मलेरिया, बाढ़ आदिसे पीड़ित प्राणियों की सेवाके लिये १ वैद्य, २ कम्पाउण्डर, और २ नौकरोंकी एक मंडली संगठित की गई है जो पर्व,मेले आदि पर भी सेवा करने जाती है। इसके अलावे इन स्थानों में बीमारियोंसे बचनेके उपाय छपवाकर काफी तादादमें बंटवाए जाते हैं।

(१०) हर साल हमारे सभी कारखानों एवं बिक्री-केन्द्रोंमें श्रीधन्वन्तरि जयन्ती मनायी जाती है जिसमें हजारों वैद्य भाग लेते हैं। करीब दश हजार रुपये हर साल इसमें खर्च किये जाते हैं। वैद्योंमें भ्रातृभाव और संगठन के लिये इसका अधिक प्रचार करनेकी हमारी योजना है।

(११) राष्ट्रीय काममें भी उत्साह पूर्वक धन दिया जाता है। कई विद्यालय, स्कूल, आश्रम, पुस्तकालय आदि सिर्फ हमारे ही खर्चसे चल रहे हैं।

(१२) आयुर्वेदकी उन्नतिके लिये हम अपने प्रभाव को भी काम में लाते हैं। हमारा प्रयत्न है कि कांग्रेस मन्त्रिमंण्डल आयुर्वेदको पर्याप्त प्रोत्साहन दे। बिहारमें तो निश्चित रूपसे आयुर्वेदको प्रोत्साहन मिलेगा ऐसी हमारी आशा है।

आयुर्वेदके विशेषज्ञोंकी सम्मतियां

चरक, सुश्रुत, वागभट्ट आदि प्राचीन संहिताओंके संशोधक, अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महासम्मेलन और विद्यापीठके भूतपूर्व सभापति आयुर्वेदोद्धारक वैद्य श्री यादवजी त्रिक्रमजी आचार्य (बम्बई) की सम्मतिः—

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवनके अध्यक्ष पं० रामनारायणजी बैद्यको मैं १७-१८ वर्षोंसे जानता हूं ; इनके श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवनमें प्रस्तुत होनेवाली ओषधियोंके नुस्खोंको मैं जानता हूं एवं औषधालय भी ४-५ बार देखा है। मेरा जहांतक अनुभव है इनके यहां विश्वासपात्र दवाएँ बनती हैं। आयुर्वेदकी उन्नतिके लिये भी ये बहुत सचेष्ट हैं। जनता यहां की बनी दवाइयाँ विश्वासके साथ खरीद कर सेवन कर सकती है। मैं इस कार्यालयकी दिनोंदिन उन्नति चाहता हूं।

मुंबई
ता० १३-२-४० } हस्ताक्षर—**वैद्य यादवजी त्रिक्रमजी आचार्य**

भूतपूर्व सभापति अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महासम्मेलन, सुपरिण्टेण्डेण्ट आयुर्वेदीय रसायनशाला काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, प्राणाचार्य, वैद्यरत्न, कविराज प्रतापसिंहजी रसायनाचार्य की सम्मतिः—

"...मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई की यह औषधि-निर्माणशाला बिना किसी वाह्य-आडम्बरके लाखों रुपयोंकी औषधियोंका व्यापार करती है। साथ ही साथ आयुर्वेदीय साहित्य और अन्वेषणका भी कार्य करके आयुर्वेद की भित्तीको सुदृढ़ और सुखद बनानेका भरसक प्रयत्न कर रही है। आशा है,

देशकी नामधारी फार्मेसियाँ भी इनके कार्यका अनुकरण करेंगी तो आयुर्वेद जगतका शीघ्र ही स्थायी उपकार होगा।"

ता० २७-८-४० } हस्ताक्षर—कविराज प्रताप सिंह

प्राणाचार्य, भिषग्केशरी, विद्या-वाचस्पति नि० भा० विद्यापीठ के परीक्षक, भूतपूर्व सभापति अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन प्रिन्सिपल श्रीधन्वन्तरि आयुर्वेद महाविद्यालय नागपुरके वैद्य श्री गोवर्धन शर्मा छांगणीजीकी सम्मति :—

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवनके स्वत्वाधिकारी वैद्यराज पं० श्री रामनरायण जीको मैं वर्षोंसे जानता हूं। आप विद्वान वैद्य हैं और सच्चे कार्य्यकर्ता हैं। आपकी सत्यताका यही प्रभाव है कि आपकी सब औषधियां "यथा नाम तथा गुणः" हैं। आपके यहाँकी बनी हुई औषधियाँ बड़ी लाभप्रद सिद्ध हुई हैं। मैं आपकी उत्तरोत्तर उन्नति चाहता हूं।

ता० १४-५-३० } हस्ताक्षर—वैद्य गोवर्धन शर्मा छांगाणी

अ० भा० आयुर्वेद महामण्डलके भूतपूर्व सभापति, आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिकाके भूतपूर्व यशस्वी सम्पादक, आयुर्वेद परीक्षाओं के गवर्नमेण्ट मान्य परीक्षक, आयुर्वेद केशरी, महामान्य स्वर्गीय वैद्य किशोरीदत्तजी शास्त्री, कानपुरकी सम्मति :—

आज मैं श्रीबैद्यनाथ आयुर्वेद भवनका वैभव, औषधि-चातुर्य, समयोपयोगिता और दार्शनीयता देखकर प्रसन्नतापूर्वक यह स्वीकार करता हूं कि आयुर्वेद जगतमें यह कारखाना अद्वितीय है। इसके सञ्चालक महोदयका सौजन्य और कार्यपटुता प्रशंसनीय है। आपको जिस प्रकार अपने व्यवसायका ध्यान है, वैसे ही आयुर्वेद, देश और जनताका भी ध्यान है और यह बात देशके सौभाग्यकी है। वैद्य-बन्धु और जनता यहाँकी विश्वासी दवा खरीदकर आयुर्वेदोन्नतिमें सहायता और अपनी गुणग्राहकताका परिचय प्रदान करें।

ता० २६-६-३९ } हस्ताक्षर—वैद्य किशोरीदत्त शास्त्री

प्रत्यक्ष शारीर, सिद्धान्त निदान, आयुर्वेद संहिता आदिके लेखक महामहोपाध्याय कविराज स्व० श्री गणनाथ सेन सरस्वती विद्यासागर, प्राणचार्य, एम० ए०, एल० एम० एस० की सम्मति :—

आयुर्वेदके पुनर्जीवनके लिये श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, कलकत्ताके उद्योग प्रशंसनीय है। हमारी इस संस्थाके साथ पूरी सहानुभूति है।

ता० ६-३-४० } हस्ताक्षर—**कविराज गणनाथ सेन**

वैद्य शिवशर्मा आयुर्वेदाचार्य लाहौर, भूतपूर्व सभापति अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महासम्मेलनकी सम्मति :—

मैंने आज श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद भवनका निरीक्षण किया। आयुर्वेदीय औषधियाँ भी बनती देखी। मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि सम्पूर्ण औषधि-निर्माण बहुत स्वच्छ और प्रामाणिक द्रव्योंसे सर्वथा शास्त्रोक्त रीतिसे होता है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि जिस योग्यता, श्रद्धा और परोपकारके भावसे औषधियाँ बनती हैं, उससे वे अवश्य शीघ्र फलदायक होंगी। जनता और वैद्यसमाज दोनों ही ऐसे कार्यालयसे विशेष लाभ उठा सकते हैं और आयुर्वेदका नाम भी उज्ज्वल रह सकता है।

विशेष बात इस संस्थाकी यह है कि इसकी आयका एक बड़ा भाग आयुर्वेद के प्रचारार्थ और परोपकारार्थ उदारतासे व्यय किया जाता है, जिसके कई उदाहरण मेरे सामने हैं। मेरी इच्छा है कि आयुर्वेदकी यथार्थता जनतामें सिद्ध करनेके लिये और आयका सदुपयोग होनेके लिये श्रीवैद्यनाथ आयुर्वे भवनकी औषधियोंका सर्वत्र अधिकाधिक प्रचार हो।

ता० १६-१०-४० } हस्ताक्षर—**वैद्य शिव शर्मा**

देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसादजी की सम्मति :—

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवनने कांग्रेस-प्रदर्शिनीमें भारतीय औषधियों और आयुर्वेदिक रीतिसे चिकित्साका प्रबन्ध किया। मैंने उसे देखा और सब प्रबन्धको देखकर बहुत खुश हुआ। आयुर्वेदका पुनरुद्धार अत्यन्त आवश्यक है और इस प्रकारके प्रयत्नसे उसमें बहुत लाभ होगा। मैं इस संस्थाकी सफलता चाहता हूं।

ता० २१-३-४० } हस्ताक्षर—**राजेन्द्रप्रसाद**

बिहारके प्रलयंकारी भूकम्पमें सहायता-कार्यके लिये श्रीराजेन्द्र प्रसादजीके सभापतित्वमें जो बिहार केन्द्रीय सहायक समिति बनी थी, उसके प्रधान मन्त्री बाबू अनुग्रहनारायण सिंहजी एम० ए० बी० एल०, एम० एल० ए० ने हमारी दवाओंके सम्बन्धमें ता० ३१-३-३४ को जो लिखा था उसका हिन्दी अनुवाद :—

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, कलकत्ताके मालिक पं० रामनारायण शर्मा वैद्यराजको यह प्रमाण पत्र प्रदान किया जाता है कि इन्होंने भूकम्प-पीड़ित जनताके लिये अपने औषधालयसे प्रस्तुत पेटेण्ट दवाइयां बिहार सेण्ट्रल रिलीफ कमिटीकी शाखाओंके प्रबन्धमें बिहारके अनेक जिलोंमें वितरण की। ये औषधियां पीड़ित जनताके लिये बहुत लाभदायक सिद्ध हुई हैं। मैं इनके इस कार्यकी बहुत प्रशंसा करता हूं तथा हम लोगोंके प्रति इन्होंने जो सहायता प्रदान की है, उसके लिये धन्यवाद देता हूं।

हस्ताक्षर—**अनुग्रहनारायण सिंह**

र० वि० धुलेकर एम० ए०, एल० एल० बी०, एम० एल० ए०, प्रेसिडेन्ट और संस्थापक राष्ट्र-सेवा-मण्डल और आयुर्वेदीय युनिवर्सिटी झांसी तथा मेम्बर यू० पी० संस्थापक आयुर्वेद विश्व-विद्यालय मेडिसिन बोर्डकी सम्मति :—

मुझे आयुर्वेदिक औषधियोंका निर्माण इतनी अच्छी और विशुद्ध रीतिपर होते हुए देखकर श्रीबैद्यनाथ आयुर्वेद भवन तथा उसके अध्यक्ष व सञ्चालकोंकी प्रशंसा करते हुए प्रसन्नता होती है। मुझे यह देखकर कि श्रीबैद्यनाथ आयुर्वेद भवनके अध्यक्ष आयुर्वेदके बड़े प्रेमी हैं और केवल व्यापारिक दृष्टि ही अपने सामने नहीं रखते, बड़ा आनन्द होता है। इस भवनकी औषधियाँ उत्तम तथा विश्वसनीय होती हैं।

ता० ५-१-४१ } हस्ताक्षर—र० वि० धुलेकर M. A. M. L. A.

श्रीः

श्री वैष्णव मठाधीश जगद्गुरु महाराज का प्रशंसा-पत्र

भारतकी राजधानी दिल्लीमें आई हुई विपत्तिके शमनके लिए—शतमुख कोटि महायज्ञका वृहद् आयोजन किया गया था। समस्त देशके महान धर्माचार्यों, उद्भट विद्वानों, त्यागी-सन्यासियों, धर्मगुरुओं धर्मात्माओंके अलावा लाखों दर्शकोंका यह मेला भारतका सर्वोत्कृष्ट समारोह था। इस अवसर पर श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवनने वहाँ अपनी शाखा खोल कर आयुर्वेदीय औषधोंका प्रदर्शन किया था, तथा उत्सवमें समबेत लोगोंकी सेवा की थी, हमारे सेवाकार्य तथा औषधोंकी उत्तमता और विशुद्धताको देखकर भारतके धर्मप्राण जगद्गुरु महाराजने हमें प्रशंसा-पत्र प्रदान किया, जिसकी हू-ब-हू नकल हम नीचे दे रहे हैं?

*** श्रीमते रामानुजाय नमः ***

श्री मद्वेद मार्ग प्रतिष्ठापनाचार्योभय बेदान्त प्रवर्तकाचार्य श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्री १००८ श्री मज्जगद्गुरु श्री रामानुजाचार्य संरक्षित विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त संरक्षक अखिल भारतीय वर्णाश्रम स्वराज्य संघके प्रधान नेता उत्तराद्रि श्री वैष्णव मठाधीश तिरुपतिवालाजी बड़गादी बम्बई श्री देवनायकाचार्य्यजी महाराजकी सम्मति :—

"मैंने श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की शतकोटि होमात्मक महायज्ञकी शाखा धर्मनगर, दिल्लीमें दवाओंका निरीक्षण किया तथा उनके द्वारा पीड़ित जनताकी सेवाका प्रबन्ध देखा। इसके द्वारा निर्माण किये गये घृत, तैल, चूर्ण, अवलेह, बटी, रस, भस्म आदि शास्त्रोक्त रीतिसे तैयार होते हैं, यह देखकर बहुत प्रसन्नता हुई! इस संस्थाकी आयका बहुत बड़ा भाग आयुर्वेदकी उन्नति तथा परोपकारार्थ व्यय होता है। मेरा अनुरोध है कि जनता तथा वैद्य समाज इस संस्था द्वारा तैयार की गई औषधियोंका प्रयोगकर लाभउठावें जिससे आयुर्वेदका नाम उज्ज्वल हो तथा देशका हित हो। ईश्वरसे प्रार्थना है, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवनके कार्य्यकी दिन-प्रतिदिन वृद्धि हो।"

ता० २०-२-४४ हस्ताक्षर—श्री देवनायकाचार्य्य

"हिज होलिनेस"

श्री जगद्गुरु श्री शंकराचार्य त्री १००८ स्वामी

श्री योगेश्वरानन्द तीर्थजी महाराज श्री गोवर्धन मठाधीश पुरी।

देहली कम्प, ता० १८-२-४४

श्री शतमुख कोटि होमात्मक महायज्ञ, दिल्लीके शुभ-अवसर पर जनता जनार्दनको सेवा करनेके लिये खुली श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवनकी शाखाका निरीक्षण किया। मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि यहाँपर शुद्ध शास्त्रीय रीतिसे आयुर्वेदीय औषधें तैयार होती हैं और आयुर्वेदके प्रचारके लिये स्वल्प मूल्यमें दवा बिक्री की जाती हैं। इसके अध्यक्ष पं० रामनारायण शर्माजी सरल हृदय और साधु विचारके उच्च व्यक्ति हैं।

इस संस्था द्वारा निर्माण की हुई रस, भस्म, आसव अरिष्ट, घृत, तैल आदि औषधें उत्तम तथा विश्वनीय हैं। आयुर्वेदोन्नति तथा जनताकी सेवाके लिये जो कार्य्य किया जा रहा है, वह प्रशंसनीय है।

श्रीजीकी आज्ञासे—प्रेमानन्द अम्बालाल मन्त्री



गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार

पुस्तक लौटाने की तिथि अन्त में अङ्कित है। इस तिथि को पुस्तक न लौटाने पर छै नये पैसे प्रति पुस्तक अतिरिक्त दिनों का अर्थदण्ड लगेगा।

24 DEC 1960		
18 AUG 1967		
31 DEC 1975		

१००००.६.५६। 23,2-50

